ये

कोठेवालियाँ

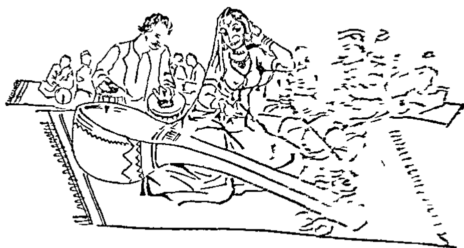






ये कोठेवालियाँ

अमृतलाल नागर



लोकभारती प्रकाशन
१५-ए [illegible]

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

संस्करण १९७६

●

मूल्य १८ ००

●

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

जीवन सगिनी प्रतिभा
को समर्पित

प्रस्तावना

सन् १६५० ई० मे, राष्ट्रपति देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी ने यह इच्छा प्रकट की थी कि वश्याओ से भेंट करके कोई व्यक्ति उनके सुख-दुख का हाल लिखे। वे स्वय ही इनके सम्बन्ध म लिखना चाहते थे, परन्तु अवकाशाभाव के कारण ऐसा न कर सके। मरे मित्र पण्डित रुद्रनारायण शुक्ल उस समय पत्रकार थे, उन्हे लगा कि यह काम किसी हिन्दी-लेखक का ही करना चाहिए और अपने इस तर्क से प्रभावित होकर उन्होने 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इडिया' के सवाददाता को यह सूचना दे दी कि नागर देशरत्न राजेन्द्रबाबू की इच्छापूर्ति के लिए यह काम करेगा। अपनी इस नई जिम्मेदारी की सूचना मुझे भी आम जनता के साथ-ही-साथ दैनिक समाचार-पत्रो से ही प्राप्त हुई।

जब किसी के बाल-बच्चे बडे हो जाते हैं तब वह आमतौर पर भद्र-पुरुषो की श्रेणी मे आ जाता है। अपने सम्बन्ध म भी मरी यही धारणा थी और इसीलिए यह समाचार पढकर मुझे अनख लगी। बन्धुवर रुद्रनारायण न यह समाचार मजाक म नही बल्कि पूरी गम्भीरता के साथ प्रकाशित कराया था। प्रतिदिन शाम को हमारी गोष्ठी जमती है। आदरणीय भाई भगवतीचरणजी वर्मा उसके स्थायी अध्यक्ष हैं। चूकि भगवतीबाबू पेशे से वकील भी रह चुके हैं इसीलिए हम मे से कोई भी मित्र, जिसे अपने किसी गम्भीर अथवा अगम्भीर प्रस्ताव को मित्र-मण्डली से पास कराना होता है, भगवतीबाबू को अपने साथ करने का प्रयत्न करना है, और भगवतीबाबू जिस मुकद्दमे को अपने हाथ मे ले लेते हैं उसे जीते बिना छोडते नही—यदि तर्क से न जीतेंगे तो अपने ज्येष्ठत्व की डिक्टेटरी से तो जीत जाएँगे। इसीलिए हम लोग उन्हे अपना नेता कहा करते हैं। रुद्रनारायण ने नेता को अपने साथ मे कर लिया। शाम की बैठक म मेरे सकोच का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाने लगा। बन्धुवर ज्ञानचन्द जैन, रुद्रनारायण शुक्ल और भगवतीबाबू ने यह तय कर दिया कि मुझे यह काम करना है और पूरी गम्भीरता के साथ करना है। इस पुस्तक मे वर्णित कुछ घटनाएँ मैं प्रसगवश पहले कभी इस नित्य की गोष्ठी म सुना चुका था और यही मेरी इस विषय की योग्यता का प्रमाण माना गया।

इस सूचना के प्रकाशित होने पर हिन्दी के अनेक समाचार-पत्रो ने टिप्प-

णियाँ भी प्रकाशित कीं, हास्य व्यंग्य के कालमों में भी इस समाचार का रसीला स्वागत हुआ, जन-अभिवादन के कुछ पत्र भी इधर-उधर से आए। इस काम के लिए मेरी तैयारी और संकोच दोनों ही साथ साथ चलते रहे। खैर, काम आज पूरा हुआ, इसका मुझे संतोष है। इसकी अच्छाई-बुराई की विवेचना विद्वान् और अनुभवी पाठक ही कर सकेंगे। अपनी ओर से इतना ही कह सकता हूँ कि इस विषय पर क्षेत्रीय खोज-कार्य (फील्ड-वर्क) के रूप में हिन्दी में यह शायद पहली ही पुस्तक है। इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं।

वेश्याओं के सम्बन्ध में उनकी निन्दा के अतिरिक्त और कुछ भी लिखना आमतौर पर निन्दा का विषय माना जाता रहा है। स्काट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए हिस्ट्री आफ प्रॉस्टिच्यूशन फ्राम एन्टिक्विटी टु द प्रेजेंट डे' की भूमिका में इस विषय पर लिखने वालों के संकोच का इतिहास भी दिया है। सन् १६५१ में फ्रेंच विद्वान् लेक्रासे ने दो भागों में वेश्या-जीवन का इतिहास प्रस्तुत तो किया, परन्तु उसने लेखक के रूप में अपना असली नाम देने में वे सकुचा गए। अमरीकी विद्वान् सेंगर महोदय को भी अपनी इस विषय की इतिहास पोथी की भूमिका में बड़ा तकल्लुफ़ बरतना पड़ा। सन् १८५७ ई० में एक्टन नामक एक अंग्रेज विद्वान् को भी अपनी पुस्तक की भूमिका लिखते हुए बड़ी झेंप भरी सफाई देने की आवश्यकता महसूस हुई। डाइसन कार्टर ने अपनी पुस्तक 'सिन एण्ड साइंस' की भूमिका में यह प्रकट किया है कि बहुतों ने उन्हें यह पुस्तक लिखने से रोका था।

वेश्याओं के प्रति आकर्षण और वेश्यागामिता के प्रति संकोच-भाव दोनों साथ-ही साथ मानव-सभ्यता के इतिहास में चलते रहे हैं। मेरा अपना विचार तो यह है कि इस सामाजिक संकोच ने वेश्याओं के प्रति मानव-आकर्षण को बढ़ावा दिया है। जो हो, अब तो दुनिया-भर में करीब-करीब हर जगह सरकारें वेश्यावृत्ति के खिलाफ़ जोरदार जेहाद बोल रही हैं।

सबसे बड़ी समस्या चकलेखाना की है। अगर इन चकलेखानों के खिलाफ सावधानी से पक्की-पोढ़ी छानबीन करके फिर उन पर जगह-जगह मुकद्दमे चलाये जाएँ तो जन-चेतना पर असर पड़ेगा। स्त्रियों को खरीदने-बेचने का धंधा करने वाले स्त्री पुरुषों को आजीवन कारावास की सजाएँ देनी चाहिए। हमारे सरकारी समाज-कल्याण केन्द्रों का मुख्य काम एक तरह से केवल दूध के डिब्बे बाँटना ही रह गया है। स्वतन्त्रीय शासन में ऐसी बहुत गुंजाइश होती है, जिसमें कि जनता और जनता की सरकार साथ-साथ पूरे जोश से कई समाज-व्यापी आन्दो-

लन चलाकर सफलता प्राप्त कर सकती हैं। इस सिद्धान्त-पालन की लकीर ता बराबर पीटी जाती है, मगर बडी बे असर है, वरना मैं सुझाव देता कि यह नैतिक आन्दोलन चलाकर जनता और जनता की सरकारें व्यावहारिक रूप से एक दूसरे के अति निकट आ सकती है। हमारे सरकारी समाज-कल्याण-विभाग यदि सन् '३० के कांग्रेस-संगठन के समान नगरों और ग्रामों के प्रत्येक क्षेत्र को अपने सङ्गठन से बांध ले, अपने क्षेत्र के हर घर से समाज-कल्याण-केन्द्रों का लगाव हो, तो सचमुच बडा काम बन सकता है।

इस पुस्तक को लिखने से पहले इतने वर्षों मे मैं वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध मे धीरे-धीरे करके कई किताबें पढ गया। पहले योजना बनाई थी कि शास्त्रीय ढंग की किताब लिखूंगा, बडे-बडे नोटस बनाए, पर जब लिखने बैठा तो मेरे कलाकार ने मेरे शास्त्री को अपने से आगे न बढने दिया। खैर, यह हुआ तो उचित ही इसलिए अपने से शिकायत नहीं, पर उन लोगों के लिए जो इस विषय के पण्डित बनना चाहते हैं, मैं पुस्तक के अन्त मे उन ग्रन्थों की सूची दे रहा हूँ। शायद किसी के काम आ जाए।

पाण्डुलिपि लवकुश दीक्षित ने लिखी। सहयोग बहुतों का मिला, पर यह सच है कि यह पुस्तक अपनी पत्नी के सहयोग के बिना मैं न लिख पाता। पिछले अक्तूबर मास मे आगरा मे मिलने पर मेरे अनन्य बन्धु डाक्टर रामविलास शर्मा ने इस किताब के लिखे जाने की बात सुनकर मुझसे कहा था, "इसे तुम प्रतिभा जी को ही समर्पित करना।" बात मुझे भी सरस रीति से जँच गई। कोठेवालियों के भेद भला घरवाली को न सौंपू तो किसे सौंपू। परम मित्र की इच्छा को मान देते हुए यह पुस्तक मैंने अपनी जीवन-संगिनी को ही समर्पित की है।

चौक, लखनऊ

—अमृतलाल नागर

अनुक्रम

* बचपन महफिले
* और वेश्या का बेटा

झूठ का रङ्गीनमिज़ाजी और वेश्यागामिता की लत से घना नाता है, इसलिए विषय को छूते हुए उसकी हुचकियाँ आ जाना स्वाभाविक ही है। दर्पण मेरे सामने नहीं, कमरे मे अकेला हूँ दृष्टि काग़ज़ पर है, दृष्टि अक्षरो से शब्द और शब्दो से वाक्य रचती हुई लेखनी के प्रवाह पर है, फिर भी, या शायद इसीलिए, मैं अपने समझदारी जिम्मेदारी-भरे अधेड चेहरे पर बार-बार तीव्र दौरो मे शरम की लाली को आते-जाते देख रहा हूँ, उस लाली को सोखने वाली झूठ की फलौंस भी याद आ रही है, हम सफ़ेदपोशो की सभ्यता का वही तो एक सहारा है।

पर उस बात के लिए झूठ क्या बोलू जिसे मेरे मुँह पर तमाचे मारकर एक से अधिक जन सत्य सिद्ध कर सकते हैं। और अब झूठ की आवश्यकता भी क्या रही, जो बीत गया सो रीत भी गया। विगत क्षणो के रस रीते घटो को बाँधकर उस पर अब मेरे अनुभवो का पुल पैरता है।

मैं आत्मकथा लिखने नही बैठा। मेरे जीवन से वेश्या-प्रसग इतना नही आया कि आत्मकथा द्वारा वेश्या-जीवन का सम्पूर्ण अनुभव बखान कर सकू। जिस लखनऊ मे मेरा होश जागा वह नवाबी जमाने की विलासजन्य प्रवृत्तियो से मुक्त नही हुआ था। आस-पास के वातावरण मे वेश्याओ की चर्चा समायी हुई थी। आरम्भ मे जिस कोठी मे हम रहते थे उसके नीचे बनी हुई दूकानो मे बसी हुई तरकारी वाली कबीडनें आपसी वाक-युद्ध मे कामेन्द्रियो से सम्बद्ध शब्दो का प्रयोग करते हुए एक-दूसरी के परकीय सम्बन्धो का यथार्थ उद्घाटन किया [illegible] थी। उनकी लडाइयो मे चूकि सर्वाधिक ऐसी ही गालियो और [illegible] समावेश होता था, इसलिए वे शब्द और वे बाते बरसो तक मेरे [illegible] कौतूहल बनी रही। घर के सस्कार शुद्ध थे। अभिभावको [illegible] था। मैं अपने बचपन मे कभी गली-सडक पर लड़को के [illegible] पतग, ताश कुछ भी न जाना। घण्टे-सवा घण्टे के लिए [illegible] की आज्ञा कुछ बडे होने पर अवश्य मिल गई थी, [illegible]

आदेश भी था कि 'चिराग घर पर जले।' इतना नियंत्रण होने पर भी बात का ज्ञान अटपट ढग से होने लगा।

मेरे साथ एक हिंदू व्यक्ति के दो लडके पढते थे। उनमे से एक लडका स्कूल के मौलवी साहब के घडे से भी अक्सर पानी पीता था। स्कूल म तो नहीं, परन्तु बाहर मैंने उसे दो तीन बार फैज टोपी लगाए पूरे मुसलमानी लिबास मे भी देखा था। बडा अजब सा लगता था। उसके बारे मे लडका से कुछ विचित्र सी बात भी सुन रखी थी। एक दिन मैं अपना कौतूहल दबा न सका, उस लड़के के दूसरे भाई से मैंने प्रश्न किया कि तुम्हारा भाई हिंदू होकर भी ये हरकतें क्या करता है और क्या वह बात सच है जो कि लडके अक्सर तुम्हारे भाई के सम्बध म कहते हैं। मेरा यह सहपाठी अच्छे लडका मे गिना जाता था। उसने बडे सकोच के साथ मेरी सुनी हुई बात का समर्थन कर दिया। मुसलमानी लिबास पहनने और मौलवी साहब के घडे से पानी पीने वाला उसका भाई वेश्या-पुत्र था। पिता पैसे वाले थे, वे अपनी मुसलमान वेश्या के पुत्र को हिन्दुआने ढग से रखना चाहते थे और इसीलिए उसे अपने घर मे रखते थे। परन्तु बीच-बीच मे वह अपनी मा के घर पर भी जाया करता था और जब वहा जाता था तो मुसलमानी वेश धारण करता था। उसका एक मुसलमानी नाम भी था। बच्चो की बातो से धीरे-धीरे बडा का रहस्य बडे अटपटे ढग से मेरे सम्मुख प्रकट होने लगा। मेरे सहपाठी के पिता या तो अपने व्यावसायिक कामवश प्राय बाहर ही रहते थे, उसकी प्रिय वेश्या वहा भी उनके पास रह आती थी और जब यहाँ रहते थे तो भी वह अधिकतर अपनी वेश्या के घर पर ही रहते थे। वेश्या-पुत्र का लाड-दुलार भी अधिक होता था। वह वेश्या अपने समय मे लखनऊ की सरनाम गायिका थी। अपने घर मे रहते हुए भी मेरे सहपाठी की माता अपने बच्चे से अधिक अपने पति की वेश्या के बच्चे का ध्यान रखने के लिए बाध्य थी। वेश्या-पुत्र के तनिक सी शिकायत कर देने पर मेरे इन दोनो सहपाठियो के पिता अपनी पत्नी को इस बुरी तरह से फटकारते थे कि कोई घर की नौकरानी को भी न फटकारेगा। कभी-कभी वह वेश्या उनकी कोठी मे भी आठ-दस दिन के लिए रह जाया करती थी। यद्यपि वह मर्दाने भाग म ही रहती थी, परन्तु उसका शासन उन दिनो घर के अन्दर तक चलता था। पत्नी अपनी सौत वेश्या की दासी-मात्र रह जाती थी और उससे उत्पन्न दोनो बच्चे भी स्वय अपने ही घर मे गौण हो जाते थ। मुझे आज भी अपने सहपाठी की एक बात ज्यो-की-त्यो याद है। मैंने पूछा, "तुम्हारे पिताजी तुम्हारी माता के साथ ऐसा व्यवहार क्यो करते हैं?"

मेरे मित्र ने उत्तर दिया, "भाई, वो तवायफ़ हैं, मेरी मदर से उनका मुकाबला हो क्या ? सभी लोग अपनी तवायफों की इज्जत करते हैं। घर की औरतों को कौन पूछता है।"

मेरे मन मे इस बात के साथ आज तक वे पुरानी महफिले और उनमे नाचती-गाती, आदाब बजाती-मुस्कराती, कभी किसी बात से महफ़िल को हँसाती लुटाती हुई तवायफें झाँक जाती हैं। ठीक याद है, उस समय भी सहपाठी की वह बात सुनकर मेरे सामने उन अनेक छोटी-बडी महफिलो के चित्र आ गए थे जो उस जमाने मे चौक के बडे-बडे रईसो-साहूकारो की हवेलियो मे विवाहादि शुभ सस्कारो के अवसर पर प्राय हुआ करती थी। बाज महफिलें तो कई रोज तक हुआ करती थीं। हिन्दुस्तान की नामी तवायफे आती थीं। उनके गुणो की धूम मचती थी। इसलिए सहपाठी की बात मन के रहस्य को और भी गहरा कर गई। वेश्या के सम्बन्ध मे दोहरे भाव मेरे कच्चे मन मे समा गए।

बडो के आदेशानुसार चिराग भले ही घर पर जलते रहे हो, मगर आयु बढने के साथ-ही-साथ मेरी स्वतन्त्रता भी डिग्रियो मे बढने लगी। रहस्य यदि सक्रिय रूप में नहीं तो भी बातो मे बहुत-कुछ समझ मे आने लगा था। नई उम्र का रोमान समान वयवालियो के प्रति गुदगुदी उठाने लगा। महफिलो मे सजी बजी नाज नखरे दिखाती, नाचती-गाती वेश्या मेरे भी आकर्षण का केन्द्र बनने लगी। मेरे साथियो मे भी अधिकतर ऐसे ही परिवर्तन होने लगे थे। हम लोग मोहल्ले के बडो मे होने वाली वेश्या-सम्बन्धी बातो की चर्चा करते और प्राय हममे से सभी के मन मे यह बात घर कर गयी कि तवायफे प्रेम करना जानती हैं और घरेलू स्त्रियाँ इस कला से नितान्त अनभिज्ञ होती हैं। प्रेम की महिमा है, इसलिए तवायफ की महिमा है, यह व्यवस्था अजब तरह से मन को बाँध गई।

इन्ही दिनो विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक-लिखित हिन्दी के अमर उपन्यास 'माँ' और रतननाथ दर सरशार-लिखित तथा मुशी प्रेमचन्द द्वारा अनुवादित उर्दू के अमर उपन्यास *'आज़ाद कथा'* मे वेश्याओ की धूर्तता और बनावटी प्रेम के वर्णन भी पढने को मिले। वेश्याओ की चालबाज़ियो पर यो भी अक्सर बातें सुनने को मिला करती थी। नवयुवा-काल की अबूझ यौन पहेली कभी इस पक्ष को लेकर आदर्शवाद के सहारे वेश्या के प्रतीक मे प्रेम देवता की प्राण प्रतिष्ठा करने से हिचक जाती और कभी रस-प्रवाह म बहते हुए, इस दृष्टिकोण पर अविश्वास करते हुए वेश्या द्वारा अपना सुलझाव प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के

रग मन मे भरती थी। मेरे दो-एक सहपाठी वेश्यागामी हो चुके थे। वे शेखी और रगबाजी के साथ अपने अनुभवो का वणन कर बहुत से साथिया की प्यास भडकाया करते थे। तभी पडोस की एक घटना ने मुझे ऐसा प्रभावित किया कि उसके बाद दो-तीन वर्ष तक दृढतापूर्वक मन वेश्याओ की कल्पना तक से विमुख रहा। हमारे पडोस मे एक मत्री सज्जन रहते थे। वे सर्राफे मे दलाली का काम करते थे और खाने-पीते खुश थे। घर मे उनके वृद्ध पिता थे और पत्नी थी। दलाल महोदय और उनकी पत्नी दोनो ही स्वरूपवान और भले थे। दलाल महोदय का किसी वेश्या से प्रेम हो गया। वे प्राय उसी के घर पर रहने लगे। पिता और पत्नी के लिए आर्थिक सकट के दिन आये। पिताजी पहले स्वय भी सराफे की दलाली करते थे, परन्तु पुत्र के सब लायक हो जाने के बाद उन्होंने अवकाश ले लिया था। अब लडके के नालायक हो जाने पर उन्होने फिर काम करने का हौसला दिखलाया। साल-डेढ साल बाद ही वेश्या के जाल मे कोई नया पछी फँस गया। वह पैसेवाला था। वेश्या ने दलाल महोदय को दुतकारना आरम्भ किया, परन्तु ये उनके प्रेम मे ऐसे बावले हो गए थे कि उसे छोडना न चाहे। शायद उनके मन मे यह भी हो कि इतने दिन तक घर से अलग रहने के बाद अब किस मुँह से वहा जाएँ! बहरहाल, एक दिन उनकी वेश्या ने क्रुद्ध होकर उनके ऊपर तेजाब की पूरी बोतल उलट दी। वे दो-तीन दिन मे तडप-तडपकर मर गये। वेश्या पकडी गई।

सौभाग्य से मेरी किशोरावस्था और नवयुवा-काल के दिन राष्ट्रीय आन्दोलन और सामाजिक जागरण के दिन थे। यह बडी लहर मुझे अपने साथ ऊँची कल्पनाओ, विचारो और कामनाओ की मन्दाकिनी मे बहा ले गई। फिर भी इतना तो कहना ही पडेगा कि बडो की दुनिया की हलचल का प्रभाव बच्चो की मानसिक दुनिया पर अवश्य पडता है। जो बाते जम जाती हैं वे कभी न-कभी किसी न-किसी रूप मे फलती-फूलती भी हैं।

●

* लूलू की माँ
* वेश्या-जीवन का आदि

सन् '४० की बात है। बम्बई के शिवाजी पार्क नामक मुहल्ले मे रहता था। वह मोहल्ला तब नया-ही-नया बस रहा था। शिवाजी पार्क के तीन ओर नई इमारते खडी हो चुकी थी और चौथी ओर समुद्र-तट के पास ही कुछ पुराने बगल और नई इमारते भी इधर-उधर दिखलायी पडती थी। मोहल्ला विशेष रूप से सभ्रान्त महाराष्ट्रियो एव कतिपय गुजरातियो का था, फिल्म वाले भी वहाँ बस गए थे। उस जमाने मे कई छोटे-बडे फिल्म स्टार वहाँ रहते थे। संगीत-निर्देशक, लेखक और फिल्मी पत्रकार भी थे। मैं भी कुछ महीने पहले एक फिल्म कम्पनी से नाता जोडकर ही वहाँ रहता था। मेरे साथ आज के ख्यातनामा फिल्म-निर्देशक और निर्माता श्री महश कौल भी रहते थे। नई चार मजिल की इमारत थी, नीचे ईरानी चाय वाले की बडी दूकान थी और उसके ऊपर ही पहली मजिल पर हमारा फ्लैट था। महेशजी नागपुर से आये थ। उस जमाने के एक बड बक के मैनेजर का पद छोडकर फ़िल्म-क्षेत्र के लिए अपनी अटूट लगन और गहन अध्ययन की पृष्ठभूमि लेकर आय थे। हम दोनो एक ही फिल्म कम्पनी से सम्बद्ध थे। मैं उस फिल्म कम्पनी मे थैली-पति की ओर से कम्पनी म एक महीना पहले प्रतिष्ठित हुआ था और वे स्टार प्रोड्यूसर के पुराने मित्र तथा फिल्म गाइड थ। महेशजी बड शौकीन, दिन मे चार पोशाक बदलने वाले, नजाकत-नफ़ासत, खातिर-तवाजह-पसन्द, बातचाल म अंग्रेजी भाषा के लच्छे उछालने वाले, बड साहब-मिज़ाज, नवाब-मिज़ाज आदमी थे। शुरू म दा-तीन रोज़ हमार बाच मद्र मुस्काना या मिठास की कहन-सुनन का ही आदान-प्रदान हाता रहा। इसके बाद एक दिन आउटडोर शूटिंग के लिए पोडबदर जाते हुए बस के ड्राइवर के पास वाली सीट पर हम दोनो का निराल म साथ हा गया। बाते हुइ, दिल खुल, मैंने यह समझा कि महेश कोर साहब ही नही, आदमी भी हैं और मर बार म महेशजी को यह गलतफ़हमी भा दूर हुई कि 'पडितजी' निरत्त हा नही, बालत भी है। मैं उन दिनो आम तौर पर अपना कम कहता और दूसरा की अधिक सुनने का आदी था। नये वातावरण मे यह आदत कुछ और बढ़ गई था। खैर!

शिवाजी पार्क का वह फ्लैट दरअसल महेशजी ने ही लिया था। मैं पहले सुकवि बन्धुवर प्रदीपजी के पडोस में विले पार्ले म रहता था। जब हम दोनों का साथ घनिष्ठ हो गया तो प्राय ऐसा होता कि बातो के फेर म मैं चार-चार छ-छ दिन तक अपने घर न जा पाता था। अन्त मे हमने तय किया कि महेशजी को पूरे फ्लैट की आवश्यकता नही, एक कमरे मे वे रहे और एक कमरे मे मैं। हमने फ्लैट और फर्नीचर का किराया आपस मे बाँट लिया। उस फ्लैट के दोनों कमरो मे स्नान-गृह बने थे। हमारे दिन अच्छे बीतने लगे। महेशजी उन दिनों बडे शाहखर्च आदमी थे। अब भी उनका यह लॉडपन तो नही गया, हाँ उसके अन्दर का बचपन निकल गया है। दिन भर हमारे यहाँ फिल्मी यारों की मजलिस जुडी रहती। ईरानी होटल वाले को महेशजी की नवाबी से अच्छा मुनाफा होता था। हम दोनो ही चूंकि उस फिल्म कम्पनी के बडे देवताओ मे थे, इसलिए काम चाहने वाले छोटे अभिनेता-अभिनेत्रियाँ हमारी खुशामद करने आते थे। एक खबीसनुमा बगाली बाबू भी आया करता था। उससे हम लोग तग आ चुके थे। वह आता तो अकेला था और फिर बाते करते-करते अपने साथ आयी हुई भद्र घर की लडकियो को, जो बेचारियां हम जैसे 'महापुरुषो' के सामने आने में लाज-शील-सकोचवश नीचे होटल मे रुक जाती थी, हमारे ही छज्जे से गुहारकर बुलाता था। हमे उसकी यह आदत अच्छी नही लगती थी। लडकियाँ ऊपर आती, तो उनकी विनम्रता, शील, भद्रता आदि कमरे मे आते हुए कुरसियो पर बैठते और क्षण बीतते ही क्रमश ऐसी अदाओ मे बदलने लगती जो कि भद्रता, शील आदि के विधानानुसार केवल पति-पत्नी के नाते मे ही स्त्री द्वारा प्रदर्शित होती हैं। बगाली बाबू कहता कि ये सब लडकियाँ भले-भले घरो से आयी हैं, इनको खाली 'फिल्म आर्ट' का शौक है और वह बगाली इन सबकी सच्चरित्रता का बीमा लिए हुए है। शुभचिन्तक बगाली उन लडकियो को हर किसी ऐरे गैरे के पास ले भी नही जाता। हम लोगों की बात और थी, हम लोग ऊँचे क्लास के आदमी थे। हमारे पास आर्ट' सीखने के लिए वे भले घर की लडकियां यदि दो-चार घण्टो के लिए अकेली भी रह जाएँ तो भी उसे उनकी सच्चरित्रता और हमारी महापुरुषता पर किसी प्रकार का शक नही होगा। कभी-कभी महेशजी उसे बुरी तरह झिडकते भी थे, परन्तु बगाली बाबू पर उसका कोई असर न होता था।

बानक एस बने कि हमारी फिल्म कम्पनी मे विभ्राट हुआ, प्रबन्ध-परिवर्तन हुआ, अनेक लोगो को नोटिस मिला। सेठ और निर्माता मे फूट पड गई। सुनते

मे आया कि उस समय की एक सुप्रसिद्ध फिल्म स्टार ने सलोने जवान भले-भोले सेठजी पर डोरे डाल रखे हैं। और भनक भी पडी कि एक सीमा तवासी म्यूज़िक डाइरेक्टर साहब ने अपनी नवोदिता फिल्म स्टार पत्नी भी सेठजी को ही सौंप रखी है। सेठजी के पिता, चाचा आदि बडे सस्कारी पुरुष थे, उन्हे इन बातो का पता न था। सीमान्तवासी म्यूज़िक डाइरेक्टर महोदय मामूली नही वरन् सीमान्त व्यभिचारी और गहरे चालबाज भी कहे जाते थे। जिस नवोदिता फ़िल्म स्टार के वे पति कहलाते थे उसकी वेश्या माता के साथ भी किसी समय उनका ऐसा ही सम्बन्ध बतलाया जाता था, फिर उसकी बडी बहन के साथ भी रहा। उस म्यूज़िक डाइरेक्टर को बरसो से जानने वाले लोग शुरू से ही कहा करते थे कि यह सेठ को अपने यहा बहुत बुलाता है किसी समय उन्हे औघट घाट ही जा उतारेगा। यही हुआ भी। कहते हैं कि उसने अपनी तथाकथित पत्नी के साथ युवक सेठजी के अन्तरग नाते के कुछ फोटो चित्र उतार लिए थे और उन्हें सेठ के बाप बडे सेठ को दिखाने तथा परायी पत्नी को अवैधानिक रूप से प्राप्त करने का आरोप लगाकर अदालत मे खुलेआम मुकद्दमा चलाने की धमकियां दे-देकर वही सेठजी से रुपया ऐंठता था। निर्माता और सेठजी के बीच मे फूट भी उसी के कारण पडी, और भी अनेक दन्द-फन्द हुए। कम्पनी आगे चलकर बन्द हो गई।

महेशजी चूकि निर्माता के आदमी थे इसलिए उन्हे नोटिस मिल गया। मुझे सेठजी वेतन दिलाते रहे। वेतन का कुछ भाग मैं अपने पास रखता, बाकी घर भेज देता था। महेशजी के घर से कुछ रुपया आने लगा। थोडे बजट म हम दोनो काम चलाने लगे। नवाबी के दिन हवा हो गए, अब न फिल्मी यार-दोस्त आते थे, न चार मोटरे घर के दरवाजे पर खडी होती थी और न वह फिल्म-कला प्रेमी भद्र युवतियो की सच्चरित्रता का बीमेदार बगाली ही आता था। ज्यो-ज्यो दिन गुजरने लगे हमे खाने के भी लाले पडने लगे। हमारे पास इतना ही बजट था कि सुबह एक कप चाय के साथ चार कच्ची स्लाइसे खा लेते थे और शाम को तीन आने मे आधा प्लेट मराठी 'राणावल' (भोजनालय) का सस्ता भात और पानी के घूटा उतरने वाला चावल। शाम की चाय की तलब हमे अक्सर मारनी ही पडती थी। पान-सिगरेट की आदत भी मजबूरी के आगे बुझ गई। पैसे की आठ बीडियो म छ का तम्बाकू निकालकर बीडी वाले द्वारा दिये गए मुफ्त के चूने या अक्सर दीवार के चूने को खुरचकर हम सुरती चून की चुटकी स पान की तलब मिटाते थे। दिन की दो बीडियो मे महेशजी की पचीसो सिगरेटा

की तलब बुझन लगी । ऐसी दशा मे चालीस रुपये का फ्लैट हम खलने लगा । हमारा मकान-मालिक एक सिंधी मुसलमान था, शायद तबीयत आदमी था, हम दोनों के ही प्रति उसकी श्रद्धा थी । महेशजी ने जब उसस घर छोड़ने का प्रस्ताव किया तो वह बोला कि आप लोग न जाएँ । एक कमरे की माँग करने वाला कोई किरायेदार जब आएगा तो आपका आधा फ्लैट उसे उठा दिया जाएगा । इतना ही नही, उस भलेमानस ने उसी दिन से हमारा किराया आधा कर दिया । बडी बचत हो गई । पद्रह बीस दिन के बाद ही तीन प्राणियो का एक परिवार महेशजी वाले कमरे म आकर आबाद हो गया । एक गोआ निवासी हिन्दू युवक, उनकी पत्नी और तीन-चार बरस का लडका उसम रहन लग । हम अटपटा तो अवश्य लगता था, पर क्या करत ! गनीमत इतनी ही थी कि वह कमरा पीछे की ओर पडता था और प्राय बन्द ही रहता था । उस फ्लैट का रसोईघर न हमार समय मे आबाद हुआ और न इस नवागन्तुक परिवार ने ही उसका उपयाग किया । हम पड़ोस से मिर्च-मसाला की गन्ध अब आने, अब आने का कल्पना करते ही रह गए । प्रायः किवाड बन्द कर बैठने वाले इन पडोसियो के प्रति हमारे मन मे सहज कौतूहल हुआ करता था । तीन-चार रोज़ तक तो पतिदेव और पत्नीदेवी की सूरत भी हम लोग न देख पाए । खाली छोटा बच्चा दिन मे कभी एक आध बार हमार दरवाज़े पर मुँह म उँगली दबाए आकर खडा हो जाता था । माँ पुकारती 'लूलू', बच्चा चला जाता ।

दस पद्रह दिन बाद एक दिन उस कमरे से पति-पत्नी की तीखी कहा-सुनी के बोल सहसा फूट पडे । हम दोनो के कान खडे हो गए । भाषा हमारी समझ मे आती न थी । उस विस्फोट मे पत्नी का रुदन-भरा तीखा स्वर अधिक सुनायी पडता था, पति का स्वर उसके आगे दब जाता था । ऐसे दो-तीन छोटे-छोटे तीखे हल्ले आए, फिर दरवाज़े की सिटकनी खटकी, दरवाज़े भडाभड हुए और पतिदेव बाहर निकल गए । हमारे दरवाज़े लगभग बारह-एक बजे तक खुले ही रहते थे और फ्लैट के मुख्य द्वार पर चूंकि अब हमारा अकेला अधिकार नही रहा था इसलिए उसे बन्द करने की चिता भी हम लोग न करते थे । रात मे काफ़ी देर बाद लूलू की माँ हमारे दरवाज़े पर आयी । इतने दिना म पहली ही बार वह इस प्रकार आयी थी, बोली, "आगे का दरवाजा बन्द नइ करना हमेरा हस्बेंड अबी नइ आया ।" कहकर जैसे ही वह महिला आयी थी चली भी गई ।

पतिदेव चार-पाँच रोज़ तक नही आये । रात म ग्यारह-बारह एक-डेढ बजे तक जब नीद आने लगती तभी हम अपने दरवाज़े बन्द करते थ । सुबह मेरी

नीद जल्दी खुलती। महेशजी दस-ग्यारह बजे तक उठते थे। जब द्वार खोलता तब अपनी नई पडोसिन को फ्लैट के मुख्य द्वार के किवाड मे आगन्तुको का देखने के लिये जडे नन्हे-से झरोखे म आँख गडाए खडे हुए ही पाता। मेरे द्वार खोलने की आहट से वह इधर देखती। पति के घर से जाने के बाद उसका यही क्रम रहा। मुझे लगता कि वह वहाँ घण्टा से खडी खडी पथरा गई है। मैं पूछता, "आपके हस्बैंड आये ?" "नइ," छोटा सा उत्तर तीनो दिन मिला।

हम तीना दिन घण्टो आपस म इस बात पर बहस करते ही रह गए कि पडोसिन से पति के चले जान का कारण पूछा जाए या नही। हमे सकोच तो होता ही था, साथ ही भय भी लगता था। बम्बई रहस्या की नगरी है, होम करत हाथ जलने का वहाँ प्राय सम्भावना रहती है। पडोसिन दिन म कई बार द्वार तक आती, हमारे कमरे के दरवाजे तक आते-जात उसके पैर पत्थर हो जाते। दूसर दिन दोपहर म मैं ईरानी के होटल से एक डबल रोटी की स्लाइसे कटवाकर लाया, अपने कमरे म घुसा। पडोसिन आहट पा कमरे से निकली, हमारे द्वार तक आयी, बाहर झांका, हमारी तरफ दखा। मैंने कहा कि अगर आप बम्बई मे कही अपने पति के आने-जाने के ठिकाने, कोई अता-पता जानती हा तो हम उन्हें खाजने जाएँ।

उत्तर न मिला। खोयी-पथरायी आखो से पडासिन ने दखा और अपने कमरे मे चली गई। अपने दुख से दुखी तो हम थे ही, पराया दुख उससे भी अधिक लगा। बम्बई जैसी महानगरी मे किसी जवान स्त्री का पति और तीन वर्ष के शिशु का पिता उन्हे छोडकर चला जाए तो फिर उनका क्या होगा ? हम अखबार के टुकडे पर नमक-कालीमिर्च की पुडिया खोल स्लाइसा को अपने हाथ मे उठाकर कौर तोडने ही जा रहे थे कि लूलू दरवाजे पर दिखलायी दिया। मुझे लगा कि उसे पीछे से किसी हाथ ने हमारे द्वार पर ठेलकर बढाया था। वह 'काई' हाथ माँ का हाथ ही होगा इसम मुझे तनिक भी नही सन्देह हुआ।

"आओ लूलू," हम दोना ने ही उसे प्यार से बुलाया। स्लाइस का एक टुकडा महेशजी न उसे दिखलाया। वह आ गया, टुकडा लेकर जल्दी-जल्दी मुह मे ठूस गया, फिर हाथ बढाया। धीरे-धीरे करके साढे-तीन स्लाइस बच्चा खा गया। हम समझ गए बच्चा भूखा था, तब मा भा अवश्य भूखी होगी। पर उससे कैसे पूछा जाए ? हम तो आप ही मिया मँगत हो रहे थे, बाहर दरवेश भी खडे हो गए। अपने अल्पाहार म भी एक शिशु का भाग हमने खुशी से ही बाँटा। शाम को हम बाहर खात थे। लौटे तो लूलू हमारी राह देख रहा था—"अक्ल,

ब्रेड (रोटी)।"

लूलू की माँ बाहर निकली। पुकारकर लूलू को पुकारा और हाथ पकड़कर पीटती-घसीटती हुई अन्दर ले गई।

हम परिस्थिति की करुणा से रोम-रोम बिंध गए, तुरत विचार हुआ, नीचे गये, ईरानी से एक डबल रोटी और 'सिंगल कप' (आधा कप) चाय लेकर आये। हम दोनों ही पड़ोसिन के द्वार पर गये, बड़ी विनय से पड़ोसिया की छोटी-सी सेवा स्वीकारने को कहा। पड़ोसिन ने बड़ी दयनीय कृतज्ञता-भरी दृष्टि से हमारी ओर देखा, कमजोर हाथों से रोटी ले ली, फिर प्याला भी ले गई। हम लौट आए।

उस रात मुझे ज्वर चढ़ आया। सुबह बड़ी देर से उठा। महेशजी के टाइप-राइटर की खटखट कानों में पड़ी। मैंने सिर उठाकर उसी ओर देखा। महेशजी बोले, "पंडितजी, लूलू के फादर लौट आए।"

"कब?"

"आज सबेरे।"

"कहाँ गया था? तुमसे उसकी भेंट हुई थी?"

"हाँ। यों ही, कहता था पूना चला गया था, नौकरी करने। उसकी बातें कुछ जँची नहीं यार, वह आदमी किसी फ्राड में फँसा है," महेशजी ने कहा। 'फ्राड' शब्द उन दिनों उनका तकियाकलाम था।

"होगा। तुम नीचे से चाय और एस्प्रो ले आओ मित्र, मुझे बुखार है।" इतना सुनते ही महेशजी चिंतित और व्यस्त हो गए। छज्जे से होटल के 'छोकरा' को आवाज दी।

महेशजी ने पड़ोसिन के पति से यह भी जान लिया था कि वह बम्बई की एक प्रसिद्ध जर्मन फर्म में क्लर्क था। दूसरी लड़ाई छिड़ने पर जब कि हिन्दुस्तान में जर्मन कारखानों और दफ्तरों पर ब्रिटिश ताले पड़ गए तो बहुतों के लिए बेकारी की समस्या सामने आ गई। हमारे पड़ोसी को बेकार हुए लगभग दस-ग्यारह महीने बीत चुके थे। नौकरी की तलाश में बम्बई की खाक छान डाली, मगर भाग्य ने अब तक कहीं साथ नहीं दिया था हमारा गोवानी पड़ोसी देखने में बहुत ही सरल और भला आदमी लगता था। खुलता गेहुँआ रंग, लम्बा-छरहरा बदन, क्लीनशेव्ड पड़ोसी जब सामने पड़ता तो सबसे पहले उसकी दयनीय खिसियायी हुई मुस्कान और दोनों आँखों के किनारे वैसी बारीक झुर्रियाँ ही दृष्टिगोचर होतीं जैसी कि बुढ़ापा आने पर अथवा गहन चिन्ता की प्रक्रियावश

मुख पर स्थायी प्रभाव बनकर दिखलायी देती हैं। आँखों में दम नहीं था, दद था। हमारी पड़ोसिन अपने पति से आगे साँवली थी। चौड़ा-चकला होने पर भी मुखमण्डल सलोना था, देह दुहरी और बदन दमका था। पड़ोसिन के चेहरे पर पथरायापन अपने पति के चेहरे से अधिक और स्पष्ट नजर आता था। इस साल-भर की बेकारी में पड़ोसी महाशय निश्चय ही अपनी जमा-पूँजी खो चुके होंगे, मकान भी किराये का भार कम करने के लिए बदला होगा। 'घायल की गति घायल जाने' वाले सिद्धान्त के अनुसार हमने पड़ोसी की यथार्थ परिस्थिति का अनुमान कर लिया, जो आगे चलकर सत्य भी सिद्ध हो गया।

महेशजी बेकार थे। मैं वेतन पाते हुए भी बेकार ही था, क्योंकि वेतन तो सेठजी की कृपावश ही मिल रहा था। महीने में एक-आध दिन जब मेरे ग्रह-नक्षत्रानुसार उत्तम भोजन करने का योग आ जाता तभी सेठजी की गाड़ी मुझे बुलाने आ जाती थी। वे बड़े ही भले, साहित्य-रसिक और उसके अच्छे मर्मज्ञ भी थे। दो चार घंटे उनके यहाँ साहित्यिक गपशड़ाके लगा आता, भोजन कर आता, फिर उनकी गाड़ी पर लौट भी आता था। वेतन कभी कोई मुनीम कारिन्दा दे जाता या सेठजी भोजन के लिए बुलाकर दक्षिणा के रूप में नोटों का लिफाफा मेरे हाथ में रख देते थे। मैं हरदम सहमा रहता कि दया-दान की नौकरी का कोई भरोसा नहीं, इसलिए कोई स्थायी काम मुझे ढूँढ लेना चाहिए। भाग्य न तो मेरा ही साथ दे रहा था, न महेशजी का ही। हमारी मनोदशा किसी भी दुख के मारे की मनःस्थिति के साथ ही मिल जाती थी। करुणा और पीड़ा का असीम सागर उसी प्रकार हमारे मनों में निरंतर लहराया करता था जिस प्रकार हमारे मकान के सामने का अरब सागर। हर दुखी अपना सगा लगता था। उन्हीं दिनों बम्बई के अखबारों में एक गोरखा जवान के आत्म-हत्या प्रयत्न की बड़ी करुण कहानी छपी थी। गोरखा अपने देश से बम्बई के सम्बन्ध में जाने क्या-क्या सुनकर आया था कि वहाँ की सड़कों पर सोना बिखरा है, बटन दबाते रोशनी होती है और बटन दबाते ही कमरे मंजिलों ऊपर-नीचे चढ़ उतर आते हैं। यहाँ आकर उसका भौंचक्का हो जाना स्वाभाविक ही था। विशाल जन-समूह में वह खो गया, पेट के लिए दर-दर की ठोकरें खाइ, पर कोई काम न मिला। तीन-चार दिन की भूख से बावला होकर उसने आत्महत्या का अनोखा उपाय रच डाला। रानीबाग के जिंदा अजायबघर में किसी तरकीब से वह शेर के कटघरे में कूद पड़ा, परन्तु शेर अब जंगल का नहीं वरन् कठघरे का था। धमाके के साथ कूदने वाली इस नई विपत्ति से वह डर गया। गोरखा जवान भी

मृत्यु को प्रत्यक्ष देखकर डर गया। डर के कारण रानीबाग के सारे दर्शक शेर के कठघरे पर जुटा लिए। गोरखा किसी प्रकार बाहर निकाला गया। गोरखे का यह दुःसाहस ही उसका सौभाग्य बन गया। शिवाजी पार्क में रहने वाले एक फिल्मी पत्रकार ने उसे अपने यहाँ नौकरी दे दी।

गोरखे की घटना तो प्रतीक रूप में ही सामने आई थी, मगर बम्बई में उस समय ऐसे हजारों नसीब के मारे पड़े थे। इनका क्या होगा सोचने की आड़ में हम दोनों ही मित्र दरअसल अपनी दुर्दिन की करुणा को ही कुरेदा करते थे। हम दोनों ही सौभाग्य से दुख और सुख को गम्भीरतापूर्वक अंगीकार करते थे। यह विशेषता किसी के लिए भी सुफलवती सिद्ध हो सकती है। चिंता और निराशा के दिनों में हम दोनों मित्रों की अध्ययन, मनन और चिंतन की प्रवृत्ति खूब बढ़ी। किसी निष्कर्ष, सिद्धांत अथवा तर्क को हम व्यावहारिक कसौटी पर भी कसकर देखा करते थे। मनबहलाव और आस्था पाने के लिए भी हम न जाने कितनी बातों की वास्तविकता-अवास्तविकता की कसौटी की होड़ लिया करते थे। पड़ोसी की बेकारी और उसके भविष्य की चिन्ता और कल्पना भी हम लोग की थी। मुझे भय था कि पड़ोसी ने निश्चित रूप से आत्म-हत्या की होगी। जब वह लौट आया तब भी मेरा यही विश्वास बना रहा कि तब न सही तो अब सही, एक-न-एक दिन वह यही करेगा। महेशजी इसे न मानते थे। मैंने कहा, "तुम उसके चेहरे की मुर्दनी नहीं देखते, महेश! उसमें जीवन से लड़ने के लिए क्या स्पिरिट बाकी बची दिखलायी देती है तुम्हें?"

महेशजी अंग्रेजी में बोले, "सब-कुछ देख लिया। मैं तुम्हारी इस बात से तो सहमत हूँ कि वह आत्म हत्या करेगा या कर सकता है, मगर आज के बाद अब यह कहने को तैयार नहीं हूं कि वह अपनी शारीरिक हत्या करेगा।"

"क्या, आज ऐसी कौन सी खास बात हो गई?"

"वह लौट आया, इसलिए।"

'शारीरिक रूप से नहीं मरेगा तो कैसी आत्म-हत्या करेगा?,"

"वह अपराधी बन जाएगा, देखना। मैं निराशा में गहरे फँस जाने वाले सीधे-भाले व्यक्तियों को अपराधी बनते देख चुका हूँ। तुम जानते हो, मेरे पिता डी० एस० पी० थे।"

मैं महेशजी के तर्क से प्रभावित तो अवश्य हुआ, फिर भी मन में अपना यह विश्वास ही प्रबल रहा कि यह व्यक्ति दैहिक रूप से आत्म-हत्या के सिवा

और कोई जुम नही कर सकता। मगर उसी दिन लगभग तीसरे पहर हमने देखा कि हमारा पुराना परिचित मद्र लडकियों की सच्चरित्रता का बीमेदार बगाली बाबू हमारे पडोसी के साथ साथ उसके फ्लैट म गया। थोडी देर बाद पडोसी और बगाली बाबू बाहर चले गए, फिर घटे-डेढ़ घंटे बाद वे दोना एक और व्यक्ति को साथ लेकर आये और एक-दो मिनट के बाद ही पडोसी, बगाली बाबू और लूलू हमे बाहर जाते दिखलायी दिए।

मदूशजी ने फीकी मुस्कान के साथ कहा, "मैं इसी आत्म हत्या की कल्पना कर रहा था, पण्डित जी।"

वह शाम और रात हम दोनो के बीच ऐसी बीती मानो घर म कोई गमी हो गई हो। उस दिन भी चार बार वह बगाली दो व्यक्तियो को लेकर आया और गया, हम दोना को हर बार मुस्कराकर प्रणाम कर गया। मैंने सदा खुले रहने वाले अपने द्वार उढका लिए। रात तक मेरा शारीरिक ज्वर तो कम हो गया, पर मानसिक ज्वर हम दोना को ही बुरी तरह से तपाता रहा। उस दिन आपस म भी बोलने-बतियाने की इच्छा बहुत कम हुई।

दूसरे दिन से हमारे पडोस का वेश्या-व्यापार विधिवत् आरम्भ हो गया। हमने देखा कि दो दिन बाद ही रसोई मे खटर पटर भी आरम्भ हो गई और माँस मछली मसालो की गध भी आने लगी। दोपहर में दो-ढाई बजे से हमारे पडोस मे लोगो का आना जाना आरम्भ हो जाता। हमारे दरवाज़े अब चूकि भिडे रहते थे, इसलिए आने जाने वालो को हम न देख पाते थे, देखना चाहते भी नही थे। पैरो की आहट, पडोसी के दरवाजो का खुलना और बन्द होना तथा लूलू का कमरे से बाहर निकाल दिया जाना ही हमारे अनुभव मे आता था। लूलू निकाला जाता तो धीमे धीमे हमारा दरवाजा खटखटाता। हम दोनो मे कोई खोलकर देखता तो लूलू महाशय मुँह म उगली दबाए खडे दिखलायी पडते। लूलू अपनी भाषा में हमसे बाते करता था, उसका उत्तर हम 'हूँ-हा' मे दिया करते थे। लूलू आता, हमारे कलेजे पर धक्का-सा लगता, गूगी चिंता मन को आलोडित कर देती थी। थोडी देर बाद पडोसी के दरवाजे की सिटकनी खटकती, बाहर जाते पैरो की आहट मिलती और उसके दो-चार मिनट बाद ही हमारे कमरे के दरवाजे पर पडोसिन की धीमी आवाज आती, "लूलू!" लूलू चटपट हम से 'बाई-बाई' करके चला जाता। प्रतिदिन दोपहर से लेकर रात के साढे नौ बजे तक लूलू तीन-चार बार हमारे यहाँ आता और उतनी ही बार उसकी मा दरवाजे पर पुकारने भी आती। शाम को हम बाहर चले जाते थे।

लौटने पर अक्सर हम लूलू को अपने दरवाजे पर सोता हुआ पाते थे। पड़ोस का कमरा उस समय बन्द होता था। हम उसे उठाकर अपने कमरे मे ले जाते, उसकी मा जब खाली होती तब उठा ले जाती। हमारी तरफ से उसकी शरम पत्थर हो चुकी थी। पति को हमने कई रोज तक न देखा था। वह शायद हमसे कतराता था और सच तो यह है कि हम ही कतराते थे, दरवाजा इसीलिए बन्द किया था।

एक दिन फिर पडोसी के कमरे मे हगामा मचा। इस हगाम मे बगाली बाबू का स्वर सबसे ऊँचा था। वह हमारे पडोसी की इज्जत धूल मे मिलाने की धमकी दे रहा था, अपने उपकारो के दमामे पीट रहा था, स्त्री का रुदन-क्रोध-भरा अनजानी भाषा का स्वर सुनायी दिया, पडोसी का कमजोर स्वर भी सुना। फिर सन्नाटा हो गया। मैं और महेशजी दोनो ही अपने दरवाजे पर कान लगाए खडे थे। उस कमरे की सिटकनी खटकी, हम शीघ्रता से हट आए, दरवाजा अधखुला ही रह गया।

बगाली बाबू बाहर निकला। महेशजी सामने बैठे थे, उनसे उसकी दृष्टि मिली। वह कमरे मे आ गया और आते ही जोर-जोर से कहना आरम्भ किया, "अपने पडोस का लीला देखा बाबू अरे हम तो उपकार किया। भूखा मरता था शाला, हम दाया किया, सोचा भद्र लोक है, अपना हिन्दू भाई है, कष्ट मे है ।'

उसकी शेखी और जोर-जोर से बोलना मेरे लिए असह्य हो गया। मैंने डाँटकर उसे बाहर निकाल दिया और द्वार बन्द कर लिए।

कम-से-कम अपने लिए तो मैं यह कदापि नही कह सकता कि उस समय तक मैं परम सच्चरित्र दूध का धोया ही था। अपने समाज के मन के समान ही मुझ व्यक्ति का मन भी 'वेश्या' शब्द के प्रति रस-अनुराग-पूर्ण था। यही नही, उन दिनो मैं यह भी मानता था कि सद्गृहस्थो की लडकियो, स्त्रियो को अपनी कामेच्छा की वेदी पर बलि करना नैतिक दृष्टि से अन्याय है। वेश्या पुरुष के चुलबुले मन के लिए सामाजिक पिंजरा थी। उसके कारण वह प्राय कुलललनाओ को नष्ट करने की स्फूर्ति नही पाता था।

यह सब होते हुए भी हम दो भद्र जन आर्थिक कारणो से एक भद्र महिला को भद्र कुल के पुरुष पति के आदेश से वेश्या बनते देखकर मन ही-मन गूगे-बावले हो गए थे। आस्था के जिस शैल-शिखर पर आम तौर पर भद्र कुलीन समाज के पाँव टिके रहते है मेरे लिए वह बालू का ढूह हो गया।

●

* बद्रेमुनीर[1]

वेश्या-जीवन का अन्त

'चाँद' और चन्द्रलोक प्रकाशन के सामाजिक आन्दोलनों मे वेश्याओं के प्रति सहानुभूति जगाने वाली, उन्हे नारकीय जीवन मे डालने वाले कुचक्रियो, गुण्डो, व्यभिचारियो के प्रति घृणा जगाने वाली सामाजिक कहानियाँ, 'उग्र' जी की अलबेली किताबें जमाने के साथ साथ मैंने भी पढी थी। एक समय बनारस मे प्रेमचन्दजी के दर्शन करने जाकर उनसे रूसी उपन्यास कुप्रिनकृत 'यामा' की प्रशंसा सुनकर उसे भी पढ चुका था। 'टु बेग आई एम एशेम्ड' नामक अंग्रेजी मे लिखी वेश्या बनने वाली एक पढी-लिखी भारतीय तरुणी की कहानी भी पढ चुका था। किसी फिल्म-स्टार वेश्या ने अपनी करुण कहानी सुनाकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को द्रवीभूत कर दिया था, उसकी अखबारी हलचल से हम भी द्रवीभूत हुए थे। चेचक होने पर कुचक्रियो द्वारा त्यागी हुई एक पद-भ्रष्टा भयकर सिफलिसग्रस्त परिचित वेश्या के अंतिम काल का प्रत्यक्ष गवाह भी रह चुका था, तब भी मेरी चेतना के लिए भयानक भूडोल आया था। एक वेश्या के अन्त से अब वेश्या का आदि रूप देखते समय कडुवे-मीठे अनुभव-भरे जीवन के तीन वर्ष और बीत चुके थे। बद्रेमुनीर का अन्त देखकर भाव अपनी-अपनी भरपूर शक्ति लेकर उमडे तो थे पर उस समय वे गूंगे, अनबूझे ही रह गए थे। आज लूलू की माँ के सम्बन्ध मे वे भाव प्रश्न बाण बनकर मन के कोने-कोने को बेध रहे थे—दोषी कौन है ? वह रडी-दलाल, वह बेकार पति, जीविका के लिए विवश होकर वेश्या बनने वाली वह सद्गृहस्था—कौन दोषी है ? भयकर रोग से मरने वाली वेश्या बद्रेमुनीर भी मूलत वेश्याकुल मे नही जन्मी थी। रफ़ीक नाम का एक गुण्डा दलाल था। वह उसे लखीमपुर के आस-पास किसी गाँव से उसके बाप को सवा सौ रुपये देकर बाकायदा निकाह पढाकर लखनऊ लाया, अनवरी नाम की

---

१ इस कथा के पात्र पात्रियो के नाम मैंने बदलकर काल्पनिक कर दिए हैं। इसका कारण यह है कि जिस नारी की यह कथा है उसकी स्मृति का मैं आदर करता हूँ।

किसी वेश्या के यहाँ रखा। उसके यहाँ तीन लड़कियाँ और रहती थीं। एक बहुत ज़िद्दी थी, उसे बहुत मारा-पीटा जाता था। रफ़ीक और अनवरी दोनों ही बड़े सख़्त थे जूतो लात-घूसा से लड़कियों की पीटने में ही उनकी सख्ती की इति न थी, वे गरम चीमटे या सलाख से ज़िद्दी लड़की की पीठ, पसलियों के आस-पास, जाँघो पर, छातियो के निचले हिस्सों को दागत भी थे। बद्रेमुनीर यह सब देखकर इतनी सहम गई कि जैसा कहा जाता वैसा ही करती थी। उस। अपनी आज्ञाकारिता और सेवा से रफ़ीक और अनवरी दोनों को प्रसन्न कर रखा था, इसलिए करीब वर्ष डेढ़ वर्ष तक उससे पेशा न कराया गया। हर लड़की का काम लायक नाच और गाने की तालीम दी जाती थी। बद्रेमुनीर का गला मीठा और कुदरती तौर पर सुरीला था। उसन सीखने मे हौसला भी अच्छा दिखलाया। लिखा-पढने का शौक भी लगाया, हर काम म होशियारी दिखलायी। रफ़ीक को सूझ आई कि उसे अच्छी तालीम देकर बड़ी महफिलों में नाम कमाये योग्य बनाया जाए। अनवरी इतने दिन तक इस के पक्ष मे न थी। दोना म साझे की खेती थी, कहा-सुनी हो गई। अनवरी ने कह दिया कि अगर तुम्हे मनमानी करनी है तो इसका कही और इन्तजाम करो। रफ़ीक ने उसे चौक म कोठा दिला दिया, मुलम्मे के गहना से सजा दिया, सगीत की अच्छी तालीम का प्रबध भी कर दिया। तिकड़मी था ही, बद्रेमुनीर का नाम फैलाया। शाम को सगीत की एक-दो बैठका मे पाँच-छ रुपये तक कमा लेती थी। यह सन् '३५-३६ की बात है। इन्ही दिनो मित्र-मण्डली के साथ गाना सुनन के लिए मैं भी उसके यहा गया। दो-तीन बार मित्र-मण्डली के साथ और चार-छ बार अकेला गाना सुनने के लिए गया। तब तक मुझे उसका कोई इतिहास नही मालूम था, हाँ यह जानता था कि उसके यहाँ केवल सगीत-रसिका का ही स्वागत होता है। वह प्रेमिया को प्रोत्साहन नही देती। वह अपने ही वग मे किसी की परिणीता है, खानदानी है, इस बात से मेरे मन मे बद्रेमुनीर के लिए इज्जत हो गई थी।

इसके बाद जीवन बदला। हास्य-रस के साप्ताहिक पत्र 'चकल्लस' का प्रकाशन आरम्भ किया। उसके कारण शाम को भी नित्य प्रति साहित्यिक बन्धुओ की बैठक मेरे यहाँ जमने लगी। सत्सग के प्रभाव से क्रमश पुराने सग साथ छूटने लगे। एक बार यो ही चलती रङ्ग-रौ मे उसका ध्यान आया तो बाजार मे एक मित्र से मालूम हुआ कि बद्रेमुनीर को भयकर चेचक निकली थी, बड़ी बदसूरत हो गई है उसके आदमी। उसे निकाल दिया है, कही और कोठा लेकर रहने

लगी है। खैर मैं भूल गया।

सन् '३७ की सरदियों की बात है। सन्ध्या-समय एक मैला-कुचैला आवारा किस्म का मुसलमान लडका मेरे यहा आया, कहा कि बद्रेमुनीर बहुत बीमार है, आपको बुलाया है। मैंने पूछा कि वह कहा रहती है। उसने अकबरी दरवाजे के बाहर जो जगह बतलायी वहा उस समय जाने में मुझे सकोच हुआ। पर मन का दया-भाव भी प्रबल था। मैंने कहा कि नौ बजे आऊँगा, तुम मुझे कहाँ मिलोगे। उसने स्थान बतला दिया।

उस समय मेरे पास रुपये नही थे, एक मित्र से पचास रुपये उधार लेकर यथासमय पहुँच गया। जिस गली, जिस घर मे वह लडका मुझे ले गया उसमे कभी स्वप्न मे भी रूपजीवाओ के बसने की कल्पना नही कर सकता था। सच तो यह है कि वेश्या-जीवन के नरक को उस रात पहली बार देखा। वेश्या शब्द के साथ उस समय तक मैं सगीत-नृत्य-कुशल, सभाचतुर, वाक्पटु, सुन्दर रमणी की ही आम तौर पर कल्पना करता था। पुरुषो की पाशविकता बुझाने वाली इतने निम्न स्तर की, रूप-गुण-कला-विहीन हाड-मास की जर्जर मशीनो के सम्बन्ध मे पढ सुनकर भी मैंने उन्हे देखा या जाना नही था।

सरदी की रात थी, सडको-गलियो मे सन्नाटा होने लगा था। वह लडका मुझे दो छोटी-छोटी गलिया घुमाकर एक पुराने मकान म ले गया। बाहर चार दरवाजे थे, तीन बाहरी कमरे के थे, एक घर के अन्दर का प्रवेश-मार्ग था। बीच म खडी लखोरिया-जडा आगन, दो तरफ दालान, उनमे दो कमरे, एक कोठरी थी। दो दीवारो के सहारे छप्पर बासो पर खडा था, उनमे दो ओर टाट के परदे लटकाकर एक कमरा-सा बना लिया गया था। दोनो दालानो के दो दरो मे भी टाट के फटे, झीने परदे और उसके अन्दर ढिबरिया का प्रकाश दिखायी पड रहा था। निकट दूरागत, सहज और नशे के घोडे पर सवार बहकी हुई शेखी और कलह गालियो-भरी आवाजे दालानों के टाट-पडे आवासो से आ रही थी। एक दालान के खुले भाग मे एक स्त्री चूल्हे के पास बैठी खाना पका रही थी।

लडके की 'आ जाइए-चले आइए' की गुहारो ने उस छोटे-से घर में रहने वाले अनेक घरों के निवासियो को चौंका दिया। आज सोचता हूँ शायद इतनी सभ्य भाषा मे वहाँ किसी का स्वागत न होता होगा, इसलिए लोग-लुगाइयाँ चौंके होंगे। मैं टाट और छप्पर के बने कमरे मे गया। सिरहाने और बगल की ओर दो दीवारो से सटी हुई चारपाई पर बद्रेमुनीर पडी थी, पायतान की ओर दीवार मे बने एक आले में ढिबरी जल रही थी। एक कमजोर-सा मूढा लडके ने

चारपाई के पास रख दिया और मुझसे बैठने को कहा। मैं नई उमर, नये वातावरण और करुण भावावेश में खड़ा ही रहा। उजाला कम होने से मैं उसे ठीक तरह देख नहीं पा रहा था।

बद्रेमुनीर ने ज्वर-ग्रस्त स्वर में धीमे से कहा, "आपको बड़ी तकलीफ़ हुई। यह जगह आपके लायक न थी।

मैंने रोशनी माँगी, लड़का ढिबरी उठा लाया। मैं एकाएक पहचान नहीं सका कि वही बद्रेमुनीर थी। मेरे सामने फटे लिहाफ़ में लिपटी नारी का कंकाल-सा चेहरा और एक हाथ था, चेहरा बड़े-बड़े लाल दानों से भरा हुआ था, आँखें और खुलते दांतों की पंक्ति भयानक लगती थी। रोशनी के सामने मेरे आश्चर्य-स्तब्ध मुख को देखकर वह हँसी थी। मेरी ओर देखकर भी न देखती हुई उसकी फटी-सी डगर-डगर आँखें मुझसे देखी न गई। मैंने पास ही खड़े हुए लड़के की तरफ़ ढिबरी बढ़ा दी। उसे आले में रखकर लड़का बोला, "महबूबन, अब हम जाते हैं।"

"अच्छा।" बद्रेमुनीर का धीमा स्वर फूटा। मैं चारपाई से ज़रा हटकर कमजोर मूढ़े पर सँभलकर पीछे दीवार का टेका लेकर बैठ गया। 'महबूबन' नाम मन में अटका। तब तक लड़का फिर बोला, "तुमने कहा था, पैसे दिलाएँगे।"

"हाँ, यह लो।" मैंने जेब से शायद अठन्नी या रुपया निकालकर दे दिया। लड़का चला गया।

उसका जीवन-वृत्तान्त मैंने उसी दिन सुना था। चेचक निकलने के बाद रफ़ीक के जी से वह बिलकुल उतर गई। एक रोज़ उस कोठे में एक नई लड़की बसाने के लिए ले आया और बद्रेमुनीर को मार-पीटकर कोठे की सीढ़ियों पर ढकेल दिया। बेसहारा होकर वह अनवरी के पास गयी। उसने पास रखने से तो इंकार कर दिया पर हमदर्दी से पेश आई। उसने इस चकलेघर की बड़ी-बूढ़ी को बुलाकर आमना-सामना करा दिया। यहाँ कमरा नहीं था, छप्पर डलवाने, चारपाई आदि खरीदने के लिए प्रोनोट लिखकर पच्चीस रुपये दिये। वह ब्याज दुहने वाले पच्चीस रुपये पिछले आठ महीने में भी अदा न हो सके। दैहिक व्यापार के लिए एक पुरुष से चवन्नी अठन्नी से अधिक नहीं मिलता था। इस घर में सभी गत-हृतयौवनाएं ही थीं। यह वेश्या समाज का हीनतम वर्ग था।

लड़के के बाहर जाने के थोड़ी देर बाद ही तीन स्त्रियाँ लालटेन लिये बद्रेमुनीर की मिज़ाजपुरसी के बहाने मुझे देखने आयी थीं। इस वातावरण में मेरे जैसे किसी भद्र सफ़ेदपोश का आना रात में सूर्य उदय होने के समान ही असम्भव सी

अनदेखी-अनसुनी बात थी। मैं स्वय अपने अदर एक विचित्र सकोच मे बँधा हुआ था। लगभग एक-डेढ घण्टे तक वहा रहा। बद्रेमुनीर कहने के जोश मे थी। कहते-कहते हाँफ जाती थी, रुक जाती थी।

इस चकलेखाने की सचालिका और उसका यार पैसे के मामले मे बडे सख्त थे। अनवरी के पच्चीस रुपये कभी अदा न होते। ग्राहको से पैसे वसूल करने का अधिकार चकला-सचालिका और उसके यार का ही था। अत उधार भी चढा रहा और रोज के खर्च के नाम पर बद्रेमुनीर की रोज की कमाई मे भी उसका हिस्सा न रहा। इस चकलेखाने मे बद्रेमुनीर (इस चकलेखाने का नाम महबूबन) की कमाई सबसे अधिक थी। इसका कारण यह था कि यह अड्डा उन वेश्याओ का था जिनकी कही भी पूछ नही हो सकता था, रूप-यौवन-स्वास्थ्य सब का नाश हो जाने के बाद वे यहाँ आती थी, इन गत-यौवनाओ के बीच बद्रेमुनीर अपनी भरी जवानी लेकर आयी थी। चकला-सचालिका उसे ग्राहको से अवकाश न लेने देती थी। आठ-दस महीनो के बीच मे वह तीसरी बार बीमार पडी थी। पहली बार दो महीने तक तिजारी का ज्वर चढता रहा। इसमे बडे कष्ट भोगे। जब बुखार के कारण काम न कर पाती तो 'बैठे-बैठे खा रही है हरामजादी, यहा क्या तेरा बाप बैठा है'—जैसी तीखी बातें सुनती और बुखार उतरते ही उधार पाटने के लिए फिर ग्राहको की सेवा मे जुट जाती। दो महीने पहले किसी से 'सिफलिस' रोग मिला। बहुत हल्का प्रभाव था, फिर भी पन्द्रह-बीस दिन किसी काम की न रही। नया उधार फिर चढ गया। इधर एक सप्ताह पूर्व एक ही दिन मे दो व्यक्तियो से यह रोग पाया और देखते ही-देखते इतनी तेजी से बढा कि चार दिन मे सारे बदन मे दाने भर गए। कमर से लेकर नाभी के ऊपर तक तो पकी फुसियो और उनके घावो के छत्ते-के छत्ते दिखलायी देते थे। बद्रेमुनीर अपने रोग से जो कष्ट पा रही थी वह तो था ही, उधार के ताना, गालियो और निकाल देने की धमकियो से उसे घनघोर कष्ट हो रहा था। बद्रेमुनीर को अपने कष्ट मे जाने कैसे मेरा नाम याद आया। मैंने उससे घनिष्ठता का नाता कभी स्थापित नही किया था, उसके भद्र व्यवहार, सिधाई और संगीत-कला के कारण उसको समुचित आदर अवश्य दिया था। शायद किसी समय बातो के प्रसग मे उसे अपना पता-ठिकाना भी बतलाया ही होगा तभी तो वह लडके को मेरे पास भेज सकी। जो हो, वे सारी बाते तो अब रहस्य ही हैं। उस समय बद्रेमुनीर की जैसी दशा थी उसमे मैंने विशेष कुछ नही पूछा था। वह जो कुछ कहती रही, सुनता रहा। वह लगभग सत्तर रुपये की कर्जदार थी। वह कर्ज से मुक्ति चाहती

थी, रोगमुक्त होने की उसे लालसा नही थी, क्योंकि वह अपने अन्तर्मन से मृत्यु का आभास पा चुकी थी। मैंने उसे पचास रुपये देने के लिए निकाले। उसने कहा, "यह रुपया मेरे पास रखना बेकार है। आपके आने से वे यह समझ गए होंगे कि मुझे आपसे मदद मिलेगी। वे छीन ले जाएँगे और मुझे आपको बार-बार तकलीफ देने के लिए मजबूर करेंगे। आप उन्ही को दे दें।"

जब चलने लगा तो बद्रेमुनीर ने एक वाक्य कहा जो अब तक चुभ रहा है—"मैं कहती थी, खुदा नही है—खुदा है—खुदा है।"

जब बाहर आया तो बैठक वाले कमरे से एक अधेड औरत ने कहा, "जा रहे हैं बाबूजी ?"

वह और उसका दढियल यार बाहर आ गए। औरत ने और उसके यार ने कुछ बातें कीं, बद्रेमुनीर के प्रति सहानुभूति के नकली बोल बोले। मैंने उस पर ध्यान न देकर कहा कि अगले दिन अनवरी से प्रोनोट लेकर कोई चला आये, मैं भुगतान कर दूंगा, बीस रुपये औरत के हाथ मे रखे कि इसकी दवा-दारू कराओ।

दूसरे दिन दोपहर में वह दाढी वाला स्वय मेरे यहाँ आया। मैंने बद्रेमुनीर का ऋण चुका दिया। दवा-दारू और इंजेक्शन के लिए उसने पच्चीस रुपये और माँगे। मानवता से प्रेरित होकर दे तो दिये पर मेरी जेब पर मार पडा। खैर, फिर कोई न आया। दो दिन बीत गए। मेरा मन किसी काम में न लगता था, जो देख आया था वह दृष्टि से, मन से हटता न था। बद्रेमुनीर का हाल जानने की बडी इच्छा होती थी, पर फिर वहाँ जाने का साहस न होता था। मैं अपने को धिक्कार-धिक्कारकर ही रह जाता था, पर जाने का साहस न बटोर पाया। तीसरे दिन मैं अपने को रोक भी न पाया, जैसे-तैसे दिन बीता। रात के सन्नाटे में पहुँचा, अन्दर से वही गाली-गलौज, मार-पीट और कोसने की आवाजें आ रही थीं। दरवाजे पर पहुँचकर फिर अन्दर जाने का जोश ठंडा हो गया। पर अब यहाँ तक आकर लौटने को जी भी न होता था, मैं अन्दर चला ही गया। संचालिका का दढियल यार इस घर में रहने वाली दालान मे गिरी रोती हुई एक स्त्री पर लात-प्रहार कर रहा था, और बाकी सब तरफ सन्नाटा था। मुझे देखते ही दाढ़ीवाला आँगन में आया—"कौन ? आइए बाबू साहब! मद्दूबन तो मर गई, अभी कोई घण्टा सवा घण्टा हुआ।"

संचालिका अपने कमरे से बाहर निकल आई। जिस दालान में एक स्त्री पिट रही थी उसी में का टाट के कमरे से एक स्त्री-पुरुष भी निकलकर बाहर आ खड़े हुए। संचालिका कफ़न-मुर्दे इमाज करवाने की बातें बना रही थी। दूसरी

स्त्री और उसका प्रेमी भी स्वर्गीया की प्रशसा करने लगे। मैंने एक बार लाश देखनी चाही। अपने टाट-छप्पर के रगमहल मे जमीन पर बद्रेमुनीर की लाश ढकी रखी थी। चारपाई वहाँ से हटायी जा चुकी थी। कफन हटाकर दढियल ने मुँह दिखलाया। मेरे मुँह से बेसाख्ता चीख निकल गई। चार रोज पहले देखा हुआ चेहरा भी अब पहचान न पडता था—आधा दाहिना गाल, नीचे का आधा होठ, ऊपर का पूरा होठ, नाक के नक्सोरो तक तीन दिन मे ही सडकर गायब हो चुका था। अन्दर के भूत-जैसे दात और भयानक मुखाकृति देखकर मुझे चक्कर आने लगा, पाँव लडखडाने लगे। उसके बाद चाहने पर भी महीनो तक वह चेहरा न भूल सका। आज भी प्रसगवश स्मृति का वह चित्र उभरकर अब मन को अस्त-व्यस्त कर रहा है। मैंने अपने जीवन मे इससे अधिक भयकर और कुछ नही देखा।



★ 'अबी से
★ लूलू का क्या होगा''' ?'

अधोगति के लिए बाध्य होने वाली पडोसिन लूलू की माँ की विपदा देख मुझे रह-रहकर बद्रेमुनीर की लाश याद आती थी। दोषी चाहे व्यक्ति हो या समाज, पर उसका अन्तिम परिणाम लूलू की माँ अथवा बद्रेमुनीर को ही देखना पडता है। यह सोचकर, पडोसिन के बुरे अंत को न देखने की छटपटाहट लिए हम दोनो ही मित्र उस घर को शीघ्र से-शीघ्र त्यागने के लिए एकमत हो गए। पर गों का घर कहीं मिल नही रहा था। उन दिनों यद्यपि बम्बई मे आसानी से घर मिल जाते थे, पर एक तो हम सस्ते किराये का मकान चाहते थे, दूसरे रोजी-रोजगार की तलाश में घर की तलाश भी ठीक तौर पर न कर पाते थे। प्रति-दिन हम दोनो ही अपने फिल्मी मित्रो से मिलने के बहाने कभी इस ओर कभी उस फिल्म-स्टूडियो में जाकर अपने सोते नसीब को जगाने के सीमित उपाय रचने लगे। हम दोनो ही अपने-अपने पालिश्ड ढग से लफ्फाजी कर लेते थे। उन दिनो बम्बई की फिल्मी दुनिया मे 'साइकॉलोजी' शब्द नया-नया आया था, सो उसका बडा भाव था। हम साइकालोजी को तरह-तरह से बखान कर लोगो को प्रभावित तो कर लेते थे, पर बिकती थी पडित शिक्वा या मुशी लकवा की 'सिण्टीमिण्टल सैकालजी' ही।

दिन-भर अपनी आकाक्षाओ को व्यथ दौडा-थका घर लौटने तो पडोस का चकलाखाना हमें चिडचिडाहट से भर देता था। होटलवाला ईरानी अक्सर हमसे छेड मे कहा करता कि आजकल आप लोगो की चाँदी कटती होगी। मुझे भी बुरा लगता और महेशजी को भी, पर वह अपनी छेड से बाज नहीं आता था। एक दिन हँसकर उसने कहा, 'आज तो सेष तुमेरा परोसी हमको बी लालच दिया। रोज उसका कष्टमर आता है उसका वास्ते चाय जाती है। उसका आदमी बोला पैसा आज देंगा पैसा कल देंगा—आथ रोज हो गया पैसा नइ आया। हम कल साम को ऊपर पउँचा। आप लोग बाहेर गयेला था। हम आदमी का हाथ पकरा, बोला हमसे दगलबाजी नई चलेंगा, साला पाँ छूने लगा, बोला

हमेरा इज्जत मत लो। हम बोला साला तुमारी इज्जत क्या, बीबी का कमाई खाता है साला चुपचाप से पैसे गिन हमारे, हम बोला। उसका बीबी साली रडी हमरा हाथ पकर के ललचाता था। हम बाला हमको तुमेरा दरकार नइ, पैसा माँगता है। उसका हाथ मे एक छोटी उँगली मे रिंग परा था। हम देखा साला पित्तल है। क्या करता सेथ ? हम वी साली का छारेगा नइँ, हम साली के पास गरमी-सूजाक वाला कप्तमर भजेगा। साली का जिन्दगी बरबाद कर देगा।"

"अरे नही सेठ, किसी मुसीवतजदा को समझने की भी कोशिश करो, यार !" हमने ईरानी की बडी चिरौरी की। वह हँसा, बोला, "सेथ, या तो आप दोना बहुत भ.ला-भाला है या आप दोनो का अपने परोस से आराम होगा, तबी ऐसा बालता है।"

हम दोनो ही अब उस घर मे रहने से डरने लगे थे, डर इसी बात का था कि किसी दिन यहा गुडागर्दी होगी और हम उस दृश्य को देराकर सहन नही कर पाएँगे। इसके विपरीत मामले मे दखल दकर हम लोग होम करते हाथ जलाने के अलावा कुछ हासिल भी नही कर पाएगे। हम दोनो का ही मन अपने-अपने बुरे दिनो की चिताओ से कही बुरी तरह थका हुआ भी था। मेरी कम्पनी के मालिक, जो मुझे मुफ्त की तनख्वाह दिलाया करते थे, अपने 'देस' गये थे, इसलिए हमारी कम्पनी वालो को वेतन नही मिला था। यो भी हमारे वेतन-वितरण का दिन महीने को पन्द्रह तारीख हुआ करता था, मगर उसके बाद भी पन्द्रह-बीस रोज और बीत गए थे। हम बडी ही चिन्ता मे थे, हमारी चार स्लाइसो और शाम के अक्षरशः मुट्ठा-भर मोटे, एक प्रकार के बदबूदार भात का राशन भी खतरे मे पड गया था। महेशजी के घर से जो थोडी-बहुत सहायता आती थी वही हमारा एकमात्र सहारा थी। उस रकम मे एक आदमी तो किसी प्रकार खीचकर गुजारा कर भी सकता था, मगर दो आदमियो के लिए निभाव करना कठिन था। चिन्ता हमे खडे सिर डुबा रही थी। शाम की आधी राइस प्लेट का भोजन भी हमारे लिए चौथे-पाचवे दिन का पकवान हो गया था। सुबह की चार चार स्लाइसे दो-दा के हिसाब से सुबह और शाम का भोजन बन गई। लेकिन समस्या हमारे सामने यह थी कि शाम को, दो स्लाइस खाकर पानी पीने से हमारी भूख थाडी ही देर बाद और बढ जाती थी। उसे रोकने का सरल उपाय यही था कि चाहे सिंगल कप ही हा मगर चाय का घूट बहुत आवश्यक था। चाय के साथ दो स्लाइसें नाश्ता बनकर हमारी भूख को बहला देती थी। मगर शाम की सिंगल कप चाय न हमारी पैसे की आठ बीडियो म पान सिगरेट की तलब बुझाने

वाला नुस्खा बड़ी गड़बड़ में डाल दिया था। प्रतिदिन एक पैसा भी बढ़ाना हमारे लिए अत्यन्त कठिन हो गया था। त्याग-तपस्या के मूड में एक-दो दिन तो हम सुरती-चूने के बिना खींच ले गए, मगर फिर इस तलब के सम्बन्ध में हमारा योग भ्रष्ट हो गया। पैसे की आठ बीड़ियों की तम्बाकू एक के बजाय अब दो दिन का सहारा बन गई। गरीबी का यह अनुभव महेशजी के लिए तो जीवन में पहला ही था और मेरे जीवन में पिछले पाँच-छः वर्ष के आर्थिक संघर्ष के अनुभवों में ये दिन विषमतम थे। हम लोग ज्ञान विज्ञान-चर्चा, फिल्म-चर्चा, सुकरात, अरस्तू, नीत्शे, ह्यूम, बर्ट्रेंड रसल से पतंजलि और सांख्य तक के चर्चे चलाकर अपने को बहलाते तो बहुत थे, मगर चिन्ता घनघोर रूप से व्याप रही थी। अपनी पीड़ा के साथ हम अपने ही फ्लैट के आधे भाग के साझीदार परिवार की पीड़ा को जोड़ने के लिए अपने मनों से बाध्य थे। यह स्थिति हमारे लिए असहनीय हो उठी थी।

मैं मन की एक चोरी भी कह दूँ। पड़ोसी काण्ड से उपजी हुई मानवता जब अपनी ही चिन्ता के भँवर में फँस गई तो उधर के ध्यान मात्र से मेरे मन में स्त्री की भूख जाग उठती थी। पतंजलि और सांख्य के अध्ययन-क्रम में रमा हुआ मेरा मन इस भूख के पाप से और भी परेशान रहता था।

एक दिन की बात है, मैं सुबह अपने दफ्तर गया और करीब-करीब इस विश्वास के साथ गया कि लौटते समय मेरी जेब में वेतन के रुपये होंगे। दफ्तर पहुँचने पर निराशा ही हाथ लगी। मैं फोर्ट से शिवाजी पार्क के लिए पैदल ही चला। दिन के चार स्लाइसों और दो सिंगल कप चाय पर हफ्तों से पलने वाला शरीर छः-सात मील का मार्ग चलने लायक न था, यह मैं चलते हुए बराबर अनुभव कर रहा था। प्राण मन और शरीर दोनों ही को खींच-खींचकर आगे बढ़ा रहे थे। सच तो यह है कि इंसान को घर की छाँव चाहिए वरना वही कहीं फुटपाथ पर बसेरा कर लेता। अलावा इसके आकाश पर बादल घिर आए थे, वर्षा के डर ने पैरों को गति प्रदान कर दी। फिर भी मामखला स्टेशन के पीछे वाली सड़क तक पहुँचते-पहुँचते पानी आ ही गया। घर अब भी तीन-साढ़े तीन मील दूर था। पानी जोर से आया और अधिकाधिक जोर पकड़ता गया। लगभग दो घण्टे एक मकान के बरामदे में भीड़ के साथ बिताए। पानी जब न रुका तो कुछ लोग ऊबकर साहसी बने। मैंने भी साहस का मार्ग अपनाया, मूसलाधार बरसात को फूलों की वर्षा मानकर बड़े मज़े मज़े की कल्पनाएँ करता हुआ मगन-मन बढ़ चला। भगवान् ने जाने मन किस तरह का ढाला है कि मुसीबत आने को होती है या अपने पहले-दूसरे दौर में होती है तब तो उसकी पीड़ा से मैं छट-

पटाता भी हूँ और गभीर भी हो जाता हूँ, परन्तु कष्ट जब अपना एवरेस्ट छू लेता है तब मुझे मसखरापन सूझता है। मैं अपने साथ ही भीगते कुछ राहगीरों का तमाशा, पेडो और मकानो के नीचे आड मे सिकुड-सिमटकर खडे ऊबते राहगीरो का तमाशा, जाती हुई कारो पर बैठे निश्चिन्त चेहरे देखता हुआ बढता गया। लोअर परेल स्टेशन से आगे चलकर ढाल वाली सडक पर घुटना-घुटनो पानी भर गया था। लाँघते-फलागते ऊबते-हौसला देते कदम बढाते आखिरकार घर पहुँच ही गया, कपडे बदले, बैठा, बाते होने लगी। गरमागरम चाय के प्याले की कल्पना से ही अपने को गरम कर सा गया।

दूसरे दिन प्राय सात-सवा सात बजे हमारे कमरे के दरवाजे भडाभड बजने लगे। मेरी नीद टूटी, देखा, महेशजी अभी सो रहे थे। सामने वाली खिडकी के दो शीशे टूटे पडे थे, कुछ किरचे मेरे पलग तक पर थी। पायताने की तरफ वाला आधा बिछौना, मेरे घुटने तक पैर पायजामे के दोनों पायचो सहित भीगे हुए थे, पैर के पजा मे सफेदी आ गई थी तथा हमारे कमरे मे पानी भरा हुआ था। जूट के बने लाल फश का रग हमारे कमरे के दरवाज़े के बाहर तक बहता जा रहा था। दरवाज़े इतनी ज़ोर से भडभडाए जा रहे थे, पडोसी-पडोसिन और लूलू की घबराहट-भरी आवाजें 'मिस्टर नागर, मिस्टर कौल' को पुकार रही थी। मेरे पैर इतने ठिठुर गए थे कि पजे ठीक तरह जमीन पर पड न पाते थे। निचली टाँग मुरदा हो गई थी। तूफानी बरसात के तेज स्वर और किवाडो को ज़ोर-ज़ोर की खडखडाहट के कारण मेरा 'आ रहा हूँ' कहना उन्हे शायद सुनायी नही पड रहा था। खैर, किसी तरह द्वार खोले, पडोसिन आर पीछे-पीछे उसके पति ने प्रचण्ड आँधी के झोके की तरह कमरे मे प्रवेश किया। दोना ने मेरी ओर आपादमस्तक देखा, फिर सोते हुए महेशजी की तरफ देखने लगे।

पडोसी ने आगे बढ महेशजी को गौर से देखा, पडोसिन भी वैसी ही खोज और उत्सुकता-भरी दृष्टि से उन्हे देखने लगी। मुझे आश्चर्य हुआ, पूछा, "क्या बात है? जगा दूँ?" कहकर मैं महेशजी को हल्के-हल्के झिझोडकर जगाने लगा। महेशजी का जागना भी आज के किसी मिनिस्टर द्वारा होने वाले नई इमारत के उद्घाटन-समारोह से कम हलचल और प्रबन्ध-भरा नही होता था। पैरो पर मुक्कियाँ लगें, तलवे सहलाए जाएँ, कनपटी और सिर पर तेल की मालिश की जाए, तब कही मिश्रवर पडित महेश्वरनाथ भोलानाथ कौल जी जागते थे। सहसा जगा दिए जाने पर उनके सिर मे ऐसा दर्द होता था कि पूरा दिन खराब हो जाता

था । बम्बई में चूंकि उन्हें तब तक सौभाग्य ने ऐसी सुविधाएँ प्रदान नहीं की थीं इसलिए उनके जागने की क्रिया लम्बी होती थी, सुबह नौ-साढ़े नौ बजे तक एक बार उनकी आँख खुलती, 'पण्डितजी गुड मॉनिंग' करते और करवट बदलकर सो जाते। घण्टे-डेढ़ घण्टे के बाद फिर आँख खुलती, 'पण्डितजी गुड मॉनिंग, क्या बजा है' पूछते। सामने वाली इमारत के एक हिस्से तक धूप चढ़ आने पर ग्यारह का समय होता था, उसी की घट-बढ़ के हिसाब से मैं समय बतला देता। कभी वे उठ पड़ते, कभी समय सुनने के बाद फिर आध-पौन घण्टे के लिए लम्बी तान लेते थे। मेरे जगाने पर वे झुंझलाए, ''ओफ्फ, कौन सी आफ्त आ गई ?'' पूछते हुए उन्होंने आँखें खोलीं। पड़ोसिन और पड़ोसी को देखा तो चटपट उठ बैठे। मैंने देखा कि पति-पत्नी के चेहरे पर सन्तोष की आभा आ गई। पड़ोसी ने फिर कमरे के बाहर तक बहते हुए लाल पानी की ओर देखकर कहा, ''ओ-हो, यह कार्पेट का रंग है !''

इतनी देर तक पति पत्नी के घबराहट-भरे हाव-भाव अब इस वाक्य के साथ पूरी तौर पर मेरी समझ में आ गए। मैं बड़ी जोर से हँस पड़ा। फिर कहा, 'अब समझा, कमरे के बाहर लाल पानी बहता हुआ देखकर आपने समझा कि हम दोनों में से किसी ने एक का खून कर डाला है।'' वे लोग भी बड़ी जोर से हँस पड़े।

ऐसी तूफानी वर्षा बम्बई वालों की पिछले साठ-सत्तर वर्षों तक की स्मृति में नहीं हुई थी। हमारे मकान के सामने वाली सड़क पर नारियल के दो वृक्ष लेटे पड़े थे। दाहिने हाथ समुद्र की ओर देखने पर अजब दृश्य दिखलायी पड़ता था। समुद्र की बड़ी ऊँची-ऊँची लहरें थपेड़े ले-लेकर सड़क पर आकर गिरती थीं। यों सागर अपनी मर्यादा तोड़कर बस्ती की सीमा में प्रवेश कर रहा था। सड़कें सूनी थीं, सरकारी बसें तक नहीं दिखलायी पड़ती थीं। वर्षा और तूफान ने सब के घरों की चौखटों को लक्ष्मण लीक बना दिया था।

पड़ोसी चले गए। हम दोनों पड़ोसियों की घबराहट का मजा अपनी बातों में लेने लगे। आज तो चाय तक के लाले पड़े हुए थे, क्योंकि बरसात इतनी तीखी थी कि नीचे पहुँचने की भी हिम्मत न होती थी। थोड़ी देर बाद ही हमने आश्चर्य से देखा कि पड़ोसिन चाय के दो प्याले लिये हुए हमारे दरवाज़े पर खड़ी है। चाय की प्राप्ति हमारे लिए मोक्ष-प्राप्ति से कम न थी। हमने बड़ा उपकार माना। पड़ोसिन का व्यवहार उस दिन से बदल गया। उसमें आत्मीयता अधिक आ गई थी। हम दोनों को ही यह आत्मीयता कुछ कुछ सहमाती अवश्य थी यद्यपि हम

दोना ही इस बात को मानने थे कि उसके किसी हाव-भाव मे हमारे प्रति तनिक-सा भी सस्तापन या बुरापन नही आया था। बम्बई का तूफान ता निकल गया लकिन हमारे मन का तूफान बढ गया। दो-तीन रात मे ही हम इस निश्चय पर पहुँच गए कि अब इस मकान म नही रहेग। सौभाग्यवश सेठजी न मेरा रुपया भज दिया था। दो महीने का वेतन एक साथ आया था, इसलिए पैस की ओर से मन मे तात्कालिक निश्चिन्तता-भरी स्फूर्ति आ गई थी। खोज-बीन करने से शिवाजी पाक के दूसरे सिरे पर मरघट के पास ही एक बँगले का निचला भाग खाली मिला। उसम सात-आठ कमरे थे और किराया कुल जमा पैंतीस रुपये था। यद्यपि उन दिनो बम्बई मे मकानो के किराये आम तौर पर सस्त थे, मगर उसमे भी इतन कमरो वाला यह मकान और भी सस्ता था। महेशजी के पुराने और मेर नये मित्र नागपुर निवासी मराठी के सुकवि श्री राजाबढे और उनके छोटे भाई बकुल भी हमारे साथ रहने का राजी हो गए। हमे यह पता चला कि उस मकान मे भूत का बासा है। हम कुछ सहमे तो अवश्य, पर इस बात का अधिक प्रभाव न पडा। न दखे हुए भूत से पडोस म रहने वाला शराफत का भूत हमारे लिए अधिक भयानक था। जिस दिन सामान उठाकर चलने लगे, पडोसिन हमारे दरवाजे पर आयी और चौखट पर हाथ रखकर बुत-सी खडी हो गई। हमने विदाई की शराफत-भरी कुछ बातें की। वह चुप रही। लूलू हमारे पास आ गया। विदा होने से पहले उसे देने के लिए मैं टॉफियाँ लाया था। उसे दी, सिर पर हाथ फेरा। लूलू की माँ यथावत् खडी रही। जब चलने लगे तो उसकी आखो म सहसा आसू उमड आये, "अबी से लूलू को कौन देखेगा?" कहा और सूनी आखो से कमरे के बाहर देखने लगी। यह वाक्य आज तक मन को सालता है। आज स्पष्ट देख पा रहा हूँ कि उसकी बढती हुई आत्मीयता को हम लोग गलत रग म देखने लगे थे। पडोसिन की आत्मीयता का आधार लूलू था। उसके पास आने वाले पुरुषा को उसके पुत्र की चिन्ता नही थी। उन पुरुषा को एकान्त सुविधा देने के लिए लूलू बाहर निकाला जाता, हम उसकी रक्षा करत थ। लूलू का पिता प्राय घर से बाहर ही रहता था। ऐसी दशा मे मजबूर मा की आत्मीयता यदि हमारे प्रति बढ गई तो उसमे आश्चर्य की कोई बात न थी, प्रेम-वासना का कोई दाँव पेंच भी न था। तूफान के दिन लाल रग से हमारी हत्या क अदेशे से डबरकर जब वह आत्मीयता ऊपर उठी तो अपनी ओर से सहज हा उठी, पर हमने अपने मन के डर के कारण उसे कुछ और समझा। स्त्री का आधार पति, नैतिक तन्तु टूटते ही, स्त्री के लिए मानसिक रूप स टूट चुका था। नई

वेश्या बनने वाली माँ के बच्चे का क्या होगा—'अबी से लूलू को कौन देखेगा ?' इस वाक्य मे बहुत बडा प्रश्न तडप रहा था। हम कायर की तरह उसका उत्तर दिये बिना ही चले आए।



* प्रेमी या कामाचारी ?

इस बात को बीते भी अब अठारह वर्ष बीत चुके। प्रश्न की तड़प आज भी उतनी ही है, परन्तु उसका उत्तर न दे पाने की कायरता अब मुझे व्यक्ति-गत रूप में नहीं कचोटती। सीधी बात है, हम कर ही क्या सकते थे। इलाज एक ही था, पड़ोसिन के पति को नौकरी मिल जाती तो सारी समस्या सुलझ जाती। वह परिस्थिति पति के लिए भी निश्चित रूप से असह्य थी। उसने चारों ओर निराशा और घुटन का कठिन अनुभव करने के बाद ही सुरक्षा के अंतिम उपाय के रूप में ही अपनी पत्नी के सामने यह घृणित प्रस्ताव रखा होगा। परन्तु इससे पत्नी के प्रति होने वाले अन्याय का समाधान नहीं होता। कुलीन स्त्री भरण-पोषण के लिए अपना शरीर बेचने की बात एकाएक सोच भी नहीं सकती, ऐसे कर्म के ध्यान-मात्र से ही वह सिहर उठेगी। एक पुरुष—पति—को छोड़कर वह अन्य पुरुष का छाया-स्पर्श करना भी पसन्द नहीं कर सकती। यह बात उसके आत्म-सम्मान से जुड़ी होती है और सदियों के संस्कार, पतिव्रत की भावना से उसका पोषण होता है। ऐसी स्त्री यदि स्वयं अपने पति से ही वेश्या बनने का प्रस्ताव सुने तो फिर उसका आत्मविश्वास चूर-चूर हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में वह दो ही काम करेगी—या तो आत्म-सम्मान की रक्षा में अपने प्राण होम देगी अथवा पति का कहना मानकर भी वह उससे घृणा करने लगेगी और केवल उससे ही नहीं पुरुष-मात्र से घृणा करने लगेगी। ये दोनों ही प्रकार की घटनाएँ मेरे देखने-सुनने में आई हैं।

पड़ोस के एक नगर में एक बड़े पसारी रहते थे। दूसरी लड़ाई के पहले उनकी चार-पाँच लाख की हैसियत मानी जाती थी। पसारीजी को सट्टा फाटका, रेस, जुआ, सभी में रस आता था, भगवान् की दया थी कि जवानी में कभी दाँव नहीं हारे थे। पर लड़ाई छिड़ने के दो वर्ष बाद बुढ़ापे में उनका दुर्भाग्य उदय हुआ। सट्टे में दो बार ऐसी करारी मात खाई कि सारी हैसियत बिक गई। वह समय ऐसा था जबकि व्यापार-क्षेत्र में दूसरे लोग आम तौर पर खुशहाल हो रहे थे। पसारीजी को अपना आर्थिक अध पतन इसीलिए बेहद सताता था। वे जुए के सहारे फिर से भाग्योन्नति करने के लिए हठपूर्वक संलग्न हुए। और होते-

करते एक दिन यह नौबत आ गई कि कुटिलो द्वारा चग पर चढाए जाने के कारण उन्होने अपनी दहाज़ू नवयुवती पत्नी का दाव पर चढा दिया और हार गए। जीतने वाले ने जोते हुए माल पर अपना अधिकार माँगा और हारने वाले ने भी अपने वचन से टलना उचित न समझा। वे दोनो घर आये। प्रौढ मतिभ्रष्ट पति ने अपनी पत्नी से कहा। वह बोली कि उन्ह कमरे मे बिठलाइये मैं आती हूँ। पति को उधर भेज आप छत चढ गई और कुण्डी चढा ली, छत पर बने चौबारे के ऊपर घर की सबसे ऊँची छत पर चढ गई और पिछवाडे की सूनी गली मे अपना शरीर झाक दिया। विजेता जुआरी सुन्दर स्त्री पाने का लोभ लिये प्रतीक्षा मे बैठा ही रहा कि तब तक पब्लिक की हाँव-गुहार पड गई, तोबातिल्ला मच गया। पति के आत्म-गौरव खो देने पर पत्नी ने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राण त्याग दिये, शरीर के लोथडे को पतिदेव किसी को भी सौंप सकते थे।

यह नारी की विवशता का चित्र है, पर तु इसके साथ ही एक दूसरी कथा भी चित्र के दूसरे पहलू की तरह मेरी स्मृति पर आ रही है। मैं नगर या उस प्रदेश का नाम न लूगा जहाँ वह घटना घटी क्योकि नायक नायिका जीवित हैं, केवल एक व्यक्ति पाकिस्तान चला गया है। घटना अग्रेज़ी जमाने की है। जो व्यक्ति पाकिस्तान चला गया वह एक सरकारी दफ्तर का सर्वोच्च भारतीय अफ़-सर था, इसलिए दूसरे छोटे-बडे भारतीय अफसरो, मातहतो पर उसका बडा दबदबा था। उन हज़रत को औरतबाज़ी की हेकडी भरी आदत थी। अपने मातहत अफसरा की वे अक्सर सपत्नीक बुलाया करते थे। जो बुलावे पर न जाए वह उनसे दुश्मनी मोल ले और जो जाये वह मानो अपनी छाया अपनी पत्नी का पातिव्रत धर्म खण्डित कराने के लिए ही ले जाए। अफसर महोदय को दूसरे धर्मावलम्बी मातहत अफसरो की पत्नियो का शयनसुख प्राप्त करने का जोश धर्म की अटारी पर चढकर आता था, वैसे वे स्वधर्मावलम्बिनियो को भी स्वस्नेह धर्म की वेदी पर बलि देने से चूकते न थे। खैर, ऐसे अफ़सरो के ऐसे खुशामदी मातहत भी होते हैं जो अपनी पदोन्नति के स्वार्थ मे अपनी पत्नियो, बहनो और बेटियो को 'अफसराय स्वाहा इदम् अफसराय इद न मम' कहकर आहुति चढा देते हैं। इन हज़रत के एक मातहत अफसर थे। उनका विवाह हुआ, पत्नी बडी ही सुन्दर, पढी लिखी मॉडन आयी। मातहत अफसर यो तो पूरे चापलूस थे, अपनी तरक्की के लिए अपनी अभी कुँआरी बहन का धरम बिगडवा चुके थे, पर पत्नी को हर बदनज़र से बचाने के लिए वे बडे सतर्क रहते थे। फिर भी होनी होकर रही। उस नगर के एक रईस के यहाँ पार्टी थी। वहाँ बडे अफसर भी पहुँचे थे और

मातहत महोदय भी सपत्नीक उपस्थित थे। अफसर महोदय ने अपने मातहत को ऐसी सुन्दर पत्नी पाने के लिए बधाई दी। पत्नी की बातचीत से भी वे बड़े खुश हुए और उन्होंने दूसरे दिन रात के भोजन पर दोनों को आमन्त्रित किया। मातहत महोदय ने कुछ हीला-बहाना भी किया, परन्तु भाली पत्नी बड़े अफसर के व्यवहार से इतनी प्रभावित और प्रसन्न थी कि उसने बिना समझे ही पति के बहाने को निस्सार सिद्ध कर निमन्त्रण को सादर स्वीकार कर लिया। घर आकर पति ने पत्नी को अपने अफसर की आदत सुनायी। पत्नी ने कहा कि तब तो मैं न जाऊँगी। पति बोले कि अब तो तुम यदि मेरा सर्वनाश ही देखना चाहो तो न जाओ, वरना और कोई चारा ही नहीं। उन्होंने शरम के साथ अपनी बहन का किस्सा भी सुना दिया। पत्नी ने कहा कि चाहे कुछ भी हो, मैं न जाऊँगी। पति बोले कि तब तो मेरे लिए आत्महत्या के सिवा और उपाय नहीं। उसके बाद फिर पति पत्नी में कोई बात ही न हुई, सुबह भी अबोला ही रहा। दिन में पति महोदय दफ्तर चले गए। इधर पत्नी ने टेलीफोन डायरेक्टरी द्वारा विभाग के अंग्रेज आई० सी० एस० सेक्रेटरी के बंगले का पता जाना और अपनी ननद को साथ ले तांगे पर बैठकर वहाँ गयी मेम साहब से मिली, सारा हाल कहा, अपनी ननद का बयान भी दिलवा दिया। मेम साहब सुनकर बेहद क्षुब्ध और क्रुद्ध हुई। उन्होंने दोनों को रोक लिया और साहब जब लंच के समय बंगले पर आये तो सारा हाल कहा और इन लड़कियों की भेंट भी उनसे करा दी। सेक्रेटरी भला अंग्रेज था। उसने उस लड़की की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि तुम अवश्य वहाँ भोजन करने जाओ, बाकी सब मैं देख लूंगा।

रात में पति-पत्नी दोनों भोजन करने गये। अफसर ने पहले तो पीने के लिए बड़ा आग्रह किया। पत्नी महोदया को शायद हल्के मादक पेय लेने की आदत थी, इसलिए दोनों ओर के आग्रहों में समझौता हो गया। डिनर के कुछ पहले ही टेलीफोन की घण्टी बजी। अफसर महोदय की किसी से कुछ बातें हुई और उसके बाद ही उन्होंने अपने मातहत अफसर से कहा कि अमुक-अमुक अफसर का फोन आया था, एक फाइल इसी दम हाथों-हाथ पहुँचानी है, इसलिए तुम खाना खाकर फौरन चले जाओ, केस तुम्हारा समझा हुआ भी है इसलिए जो वह पूछें उसका जवाब दे देना। तुम्हारी वाइफ को मैं अपनी कार में तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा। यह अफसर महोदय की पुरानी चाल थी जिसे बेचारा मातहत भली भाँति समझता था, पर विवश था। भोजन के उपरान्त उसे अपनी पत्नी को वहीं छोड़कर जाना पड़ा। जैसे ही उनके बँगले से उसकी कार बाहर निकली कि

उसे सेक्रेटरी साहब को मार खड़ी दिखलायी दी। साहब ने उसे रोककर पूछा, कि तुम्हारी पत्नी कहाँ है ? वह इस प्रश्न से घबरा गया, पर उत्तर दिया। साहब ने पूछा, तुम कहाँ जा रहे थे ? उसने यह भी बतला दिया। साहब उसे लिये हुए बंगले में घुसा। अन्दर पहुँचकर उसने अफ़सर—घर-मालिक—के सम्बन्ध में नौकरों से प्रश्न किये। नौकर भी सकपका गए, क्योंकि उस समय अफसर महोदय के बन्द कमरे से उनकी और मातहत पत्नी की गरमा-गरम बातें आ रही थीं। साहब ने उस कमरे तक जाने का मार्ग पूछा और वहाँ पहुँचकर अफ़सर को पुकारा। इस प्रकार एक स्वाभिमानिनी वधू की कृपा से एक आततायी का अन्त हुआ।

यह घटना मैंने स्वयं इसकी नायिका के मुख से ही सुनी थी। इस घटना के तुरन्त बाद ही उसने अपने पति का साथ छोड़ दिया। मुझसे कहती थी, "मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती थी कि उस आदमी को अपना तन-मन मैं सौंपूँ जो उसकी रक्षा नहीं कर सकता।" वह अपने मैके चली गई। उसने अपने पति से कहा कि तुम दूसरा विवाह कर लो, मैं तुम्हारे विवाह में बाधा नहीं डालूँगी। वह महिला इस समय एक बड़े नगर में 'डिपार्टमेंटल स्टोर्स' चलाती हैं। बातचीत में तेज़तर्रार, प्रबन्ध-कार्य से अत्यन्त पटु, प्रसंग आने पर सदा सच बोलने वाली, साहित्य-रसिक यह महिला अपने नगर में सबका आदर पाती है। वह खुले आम अपने स्टोस के मैनेजर के साथ रहती है। चूँकि हिन्दू होने के कारण एक पति के जीते-जी उनका विवाह दूसरा नहीं हो सका, इसीलिए वे अपने प्रेमी की परिणीता न हो सकीं। उनके भूतपूर्व पतिदेव इस समय एक प्रतिष्ठित अफ़सर हैं और अब दोनों के बीच मेल-मिलाप का समझौता भी है। फिर भी उक्त महिला अब तक उन्हें दिल से क्षमा नहीं कर पाइं। जब प्रसंगवश उन्होंने अपनी यह कथा सुनायी थी तभी यह भी कहा था "आप यह न भूलें मिस्टर नागर, कि औरत जिस तरह दूसरी औरतों का प्रेम-व्यवहार अपने पति के साथ नहीं देख सकती, उसी तरह अपने पति के सामने वह किसी पर-पुरुष को बदनज़र से अपनी ओर देखते हुए नहीं बरदाश्त कर सकती और इससे ज्यादा वह यह नहीं बरदाश्त कर पाती कि उसका पति यह देखकर भी खामोश बैठा रह जाए। ऐसे व्यक्ति से स्त्री फिर प्रेम नहीं कर सकती। अक्सर आप यह तो देख सकते हैं कि स्त्री अपने पुरुष के साथ दूसरी स्त्रियों का रिश्ता भी किसी हद तक बरदाश्त कर जाती है, पर वह नहीं बरदाश्त कर सकती कि अन्य पुरुष से उसका सम्बन्ध पति को मालूम हो और तब भी पति बरदाश्त कर जाए। ऐसा होने पर वह अपने पति अथवा प्रेमी

से जबरदस्त घृणा करने लगती है।"

उन महिला की बात इस समय सादर याद आ रही है। कल एक सम्भ्रान्त विदुषी महिला ने मुझसे यह भी कहा कि जो स्त्री किसी पुरुष से सचमुच प्रेम करती है वह उससे सन्तान पाने की कामना भी करती है। जहा यह भावना न हो वहाँ प्रेम भी नहीं होता।

दोनो ही महिलाओ की बातें एक ऐसे वस्तु-सत्य का दर्शन कराती हैं जिसे हम प्राय आज के रोमास की शेखी-भरी हवा मे भूल जाते है। मैं पुरुष की दृष्टि से इन दोनो ही महिलाओ की बातो का पूर्ण समर्थन करता हूँ। स्त्री और पुरुष के बीच मे घने नाते या गहरी फूट की जड यही है, इससे बचकर दोनो के बीच जो सम्बन्ध होता है वह विशुद्ध कामाचार है। बात यह है कि जीवन कोरा खेल नही और यदि है भी तो खेल के नियमो को पूरी गम्भीरता के साथ।

कुछ दिन हुए, एक सज्जन ने तर्क देते हुए यह कहा कि प्रेम का अर्थ काम के सिवा और कुछ नही। जैसे भूख, नींद, प्यास आदि प्राकृतिक आवश्यकताएँ हैं, वैसे ही काम सम्भोग भी मनुष्य के कायिक, मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

पुराने लोग अक्सर एक बात कहा करते हैं कि प्रेम पहले कभी नही होता। स्त्री यदि पुरुष से पूर्ण काम-सन्तोष पा लेती है तो उसे चाहने भी लगती है और यदि नही पाती तो बुझ जाती है। यह बात केवल स्त्री-पक्ष का ही सीमित सत्य नही, पुरुषो पर भी लागू होती है। मेरे एक जमीदार मित्र है, उन्हे 'हिरनियाँ' पालने का शौक था। वे जाति के ब्राह्मण हैं और उनकी प्रजा निम्न वर्ग की है। लडकी की कच्ची आयु से ही जमीदार महोदय उसके ऊपर लागत लगाना आरम्भ करते और पूर्ण आयु आने पर पहले वे ही उसका रस-भोग करते थे। जमीदार महोदय तबीअत के भौरे रहे हैं, एक स्त्री से बँधना उनके वश की बात नही, फिर भी पिछले आठ-नौ वर्ष से वे क्रमश एक ही स्त्री के आकर्षण-पाश मे बँधते चले गए हैं। उनका हिरनी शिकार भी अब प्राय बन्द हो चुका है। इस स्वभाव परिवर्तन का कारण उन्होंने यह बतलाया कि जैसा सुख उन्हें उस स्त्री से प्राप्त होता है वैसा अन्य किसी से नही। वह स्त्री भी इनके लिए जान देती है।

इसके विपरीत यह भी अनेक बार देखने-सुनने मे आया है कि अत्यधिक तडप-भरा प्रेम होने पर भी परस्पर देह-भोग करने के बाद उनका आकर्षण क्रमशः समाप्त हो जाता है और इस प्रकार प्रेम शब्द को हम एक अजब उलझन में बँधा हुआ पाते हैं। वह सकाम भी नजर आता है और निष्काम भी बसाना

३

जाता है। प्रेम एक ओर देवता माना जाता है, दूसरी ओर पाप।

एक मज़े की बात यह है कि आम तौर पर पति-पत्नी के प्रेम की महिमा नहीं बखानी जाती। हम अपने ही देश में देखें कि दिन-रात सीता-राम, सीता-राम करते हुए भी हमारा देश सीता-राम की कथा को प्रेमगाथा के रूप में नहीं गाता। भगवान् कृष्ण भी अपनी विवाहिता पत्नियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि—के साथ नाम नहीं पाते, परकीया प्रेमी राधारमण, गोपीरमण होने के कारण ही उनकी लोक में अद्भुत ख्याति है। प्रेम का माहात्म्य स्त्री-पुरुष के परकीय नाता में ही प्राय पब्लिसिटी पाकर व्याप्त होता है। हमारे धर्म में यहाँ तक कहा जाता है कि भक्त और भगवान् का प्रेम उसी जोश और तड़प के साथ होना चाहिए जो परकीय भाव में होती है। इस प्रकार परकीय प्रेम हमारा आदर्श भी है और गाली भी।

अब तनिक उस प्रेम की गति को भी देखिए जो हीर राँझा, सोहनी महीवाल लैला मजनूँ, शीरीं फरहाद या रोमियो जूलिएट के अमर नामों के साथ हमारे मन में प्रकट होता है। उनके आत्म-बलिदान ने मनुष्य जाति को झिझोड़कर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है जिससे जाति, राष्ट्र, वर्ण आदि के भेद नये प्रेमियों के लिए आम तौर पर सामाजिक रूप से अब कुछ कम अड़चनें डाल पाते हैं। हमारे देश में भी प्रेम-विवाह अब अपेक्षाकृत काफी होने लगे हैं। पुरानी मान्यताओं के समाज में जहाँ ये अड़चन अब भी अक्सर आ जाती हैं, वहाँ नये लैला मजनूँ प्रतिवर्ष रेल के नीचे कटकर अथवा ज़हर खाकर अपनी जानें गवाते हैं। नये ज़माने के माँ-बापों के मन में इसकी दहलन बढ़ती ही जाती है और वे अपने बच्चों के प्रेम-सम्बन्धों को प्राय स्वीकार कर उसे वैवाहिक मन्त्रों से वैधानिक बना देते हैं। इस प्रकार प्रेम जहाँ हमें उदात्त बनाता है वहाँ वह देवता है। इस प्रेम-देवता को ही ज्ञान, काव्य और ललित-कलाओं की दिव्य मालाएँ पहनायी जाती हैं।

अब दूसरी परिस्थिति आती है। अक्सर पर-पुरुष अथवा पर-स्त्री से भी 'प्रेम' हो जाता है। जहाँ तलाक की प्रथा है वहाँ तो किसी सीमा तक ऐसी प्रेम-समस्या सुलझ भी जाती है, पर हमारे देश के बहुत बड़े समाज को यह सुविधा नहीं मिली। महाकवि देव 'जोग हूँ ते कठिन है सँजोग परनारी को' लिखकर परकीया प्रेमियों की विपत्ति बखान गए हैं। परकीया प्रेम, जैसाकि मैं पहले लिख चुका हूँ, भक्त और भगवान् के प्रेम-सम्बन्ध के लिए आदर्श माना गया है। ऐसी गाँठ पड़ जाने पर मैंने स्त्री-पुरुष को उदास होते हुए देखा है, घोखा-घड़ी करते

हुए भी देखा है और जानें लेने-देने के किस्से भी सुने हैं। मेरे पास घरेलू स्त्रियो द्वारा गाए जाने वाले गीतो का मजेदार सग्रह है। उसमे दो-तीन गीत इस रग के भी लिखे हैं। पहले ऐसी कोई घटना हुात ही मौजी लुगाइया चट-से गीत जोड लेती थी। एक गीत है।

मत मारो समवा हवेली में।
सोने की थाली मे भोजन परोसा
है खाने वाला बरेली में॥

इस गीत की शेष पक्तियो मे सोने की शीशी, सोने का प्याला, तोशक, तकिया, इत्र, गुलाब आदि बखाने गये हैं जिन्हे भोगने वाला बरेली मे है। इस गीत की प्रेम-कहानी आज के अति प्रसिद्ध प्रेम आहूजा हत्याकाण्ड उर्फ नानावती-सिल्विया आहूजा-केस की तरह सनसनीखेज है।

लगभग चालीस-पैंतालीस वर्ष पहले उत्तर प्रदेश के एक प्रसिद्ध नगर मे एक बडी हवेली वाले सेठ रहते थे। सेठजी जवान और बडे छैलचिकनियाँ थे। उनका मन घर से अधिक घर के बाहर रमता था। रडी भडुवा का ले सेठजी पटाते ही थे, मगर उनका घना लगाव अपने एक निकट सम्बन्धी की पत्नी से था। सम्बन्धी महोदय अपने रोजी-रोजगार से लगे कलकत्ते मे रहते थे। उन्हे अपनी पत्नी और सेठ का रिश्ता मालूम था। वे यह भी जानते थे कि ज्येष्ठ पुत्र को छोडकर वे अपनी पत्नी की किसी भी सन्तान के पिता नही, फिर भी उन्हे इसकी परवाह न थी। उन्होंने अपनी लोक लाज की लोई उतारकर फेक दी थी। अपनी पत्नी के द्वारा हवेली वाले सेठ का बडा माल सूतकर उन्होंने कलकत्ते मे धधा बडाया था। खैर, सेठजी तो उधर फँसे रहे, इधर उनकी सेठानी पर भी जवानी गदरायी हुई थी, नख-शिख सुन्दर और दिल अरमानो भरा था। सेठानी की नजरें अपने बरेली वाले ननदोई से लड गई। वे सेठ से भी बडे रईस और रसियाविहारी थे, किसी कारणवश अपनी ससुराल आये होंगे। सलहज ननदोई का मन मिल गया। इस प्रकार हवेली मे भी एक परकीया प्रेमालय स्थापित हो गया। फिर तो बरेली वाले सेठ अक्सर अपनी ससुराल मे ही दिखायी पडने लगे। सेठानी को अपने प्रेमी से मूल्यवान आभूषण भी उपहार मे मिले। बात नौकरो से बाहर भी फैलने लगी। एक मजे की बात यह थी कि दोनो साले-बहनोई रागरग की प्रवृत्ति को लेकर आपस मे गहरे मित्र भी थे। साले साहब अपनी प्रेमिका की बातें बतलाते, बहनोई साहब अपनी प्रेमिका का गुणगान

करते। साले साहब को तब तक यह नहीं मालूम था कि स्वयं उनकी ही पत्नी बहनोई साहब की प्रेमिका है। सेठानी साहिबा अपने ननदोईजी के पीछे सब सुध-बुध बिसारकर प्रेम मतवाली हो गई। यह कहा जाता है कि उनके साथ वे पीना भी सीख गई थीं, प्रेम की तड़प ने उन्हें अपने प्राणवल्लभ को प्रेमपाती लिखना भी सिखा दिया था।

सेठानी की सौत को घर के किसी नौकर-नौकरानी की कृपा से बरेली वाले सेठ का एक प्रेम-पत्र मिल गया, जिसमें सेठानी के विरह-तप्त हृदय को सान्त्वना देते हुए उन्होंने अपने आने की सूचना दी थी। सौत ने उस पत्र को सहेजकर अपने पास रख लिया। जब पत्र में अपनी प्रिया को दिये हुए वचनानुसार बरेली वाले पधारे, हवेली में गुप्त प्रेम की दीवाली जगमगाई, तो सौत ने अपने जार को उनकी पत्नी के जार का प्रेम पत्र सौंप दिया। हवेली वाले सेठ गरमा उठे। उसी दिन या दूसरे दिन रात में नौकरानी के षड्यन्त्र से वे अपनी पत्नी के पलग के नीचे छिप गए। सन्नाटा होने पर उनकी पत्नी और बहनोई ने कमरे में आकर अपना प्रेम-योग साधा। बतलाया जाता है कि जब सेठानी अपने प्रेमी के लिए प्याला भर रही थी तभी पतिदेव एकाएक पलग के नीचे से निकलकर खड़े हो गए। उन्होंने अपनी पत्नी और उसके प्रेमी पर गोलियाँ चलाई और अंत में आत्म-हत्या कर ली।

एक दूसरे गीत के बोल हैं

अब तो जानी से दो दुपट्टा कासी देस का।
सोने की थाली में भोजन परोसा।
खावे डाक्टरनी खिलावे बाबू रेल का॥

इस गीत की पूरी कथा मुझे सुनने को नहीं मिली, परन्तु डाक्टरनी (यानी डाक्टर पत्नी) और रेल का बाबू (गार्ड) मिलकर एक प्रेम-कहानी का स्पष्ट संकेत देते हैं। एक तीसरा गीत-भजन एक विधवा और उसके प्रेमी रामगोपाल को अमर कर गया है

आ जइयो रामगुपाल नगर में आ जइयो।
जब से गयो तेरे पाती न भेजी,
घरे मैं तो रो-रो मरूँ दिन रात नगर में आ जइयो।
जेठ मेरो सोच ससुर मेरो सोच,
घरे मैं तो कैसे आऊँ तेरे पास नगर में आ जइयो॥

इस गीत की नायिक विधवा थी, भरे-पूरे घर में रहती थी। उसके तीन वर्ष की एक लडकी भी थी। कोई रामगोपाल महोदय सगे सम्बन्धी थे, किसी ब्याह-बरात मे इसके यहाँ आये थे, आँख लड गई। रामगोपाल सम्भवत कुमार या विधुर थे। उनके चले जाने के बाद उनकी प्रेमिका विरह-व्याकुल रहने लगी और एक रात अपनी पुत्री और घर वाला को सोते छोड अपने गहनो की सदूकची लेकर वह अपने मनभावते के साथ भाग गई।

इन गीतो के नायक-नायिकाओ को पहचानने वाले लोग अब प्राय धरती से उठ गए हैं। हा, ये गीत जब कभी किसी के यहा शुभ काज के अवसर पर ढोलक ठनकती है, अब भी कभी-कभी सुनायी पड जाते हैं।

अनेक वष पहले अखबारा मे छपा था कि एक वृद्ध की विवाहिता तरुणी स्त्री का अपने पडोसी तरुण से प्रेम हो गया। इतने पास रहते हुए भी उनके मिलन-क्षण बडी देर से आया करते थे। प्रेमी-प्रेमिका के जी की तडप ने उन्ह लम्बी सूझ दी, जब घर मे सन्नाटा होता तो प्रेमिका अपने घर के निचले भाग की कोठरी से अपने प्रेमी के घर तक सुरग खोदती। धीरे-धीरे उसने अपने और अपने प्रेमी के घरो के बीच की दीवार के नीचे-नीचे सुरग खोद डाली। उसका प्रेमी भी अपने घर की कोठरी मे जोश के साथ मिलन-माग खोदता था। सुरग तैयार कर प्रेमी-प्रेमिका को कितना आनन्द हुआ होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है, परन्तु यह आनन्द क्षण-मात्र का ही रहा। प्रेमिका और प्रेमी जोश और प्रसन्नता के साथ सुरग मे मिलने के लिए आगे बढे होंगे तभी सुरग के ऊपर बनी हुई दो घरा के बीच की दीवार नीचे धरती का आधार न रहने के कारण अपना बोझ लिये-दिये गिर पडी और दो प्रेमियो की समाधि वही बन गई।

मध्य प्रदेश के एक प्रमुख नगर के दो प्रेमियो की कथा सुनी थी। नायक पजाबी और नायिका पारसी थी। दोनो ही सम्भ्रान्त कुल के थे। दोना का प्रेम ऐसी सीमा पर पहुँच गया था जहा से वे जुदा न हो सकते थे। उनके विवाह मे माता-पिताओ की ओर से सामाजिक अडचनें थी। पता लग जाने पर दोनो के मिलन मे भी बाधा पड गई। किसी प्रकार चोरी-छिपे पत्र-व्यवहार चलता रहा। अपनी इस विरह-स्थिति से दोना को अपना जीवन भार लगने लगा। दोना ने योजना बनायी, रात के सन्नाटे मे नगर के बाहर एक झील के किनारे मिले, जीवन मे मिलन का अन्तिम सुख भोगा और एक-दूसरे को आलिंगन मे कसकर एक रस्सी अपने चारो ओर लपेटकर वे झील मे डूब गए। प्रेमियो के शव आलिंगनबद्ध अवस्था में ही पाये गए। उनके शवो को देखकर नगर के पत्थर-से-पत्थर

दिल भी पानी हो गए। बड़ा हाहाकार मचा। सामाजिक अड़चनें डालने वाले भी कहने लगे कि हाय, इनका ब्याह हो जाता तो यों न मरते।

इन कहानियों के साथ-ही-साथ यह विचार भी उठता है कि इन सब कथाओं के नायक-नायिकाओं को प्रेमी माना जाय या कामाचारी!



* सीता-सावित्री के देश का दूसरा पहलू

कामाचार की उग्र परम्पराएँ हमे अपने देश के पौराणिक इतिहास मे खूब मिलती हैं। वैसे तो काम-अपराध की आदत मनुष्य-समाज म आदिकाल से सर्वत्र व्याप्त है, पर अपनी स्थिति को पहचानने के लिए मैं स्वदेश की ही इन विकृति परम्पराओ पर पहले विचार करूँगा। एक तो यह होता है कि स्त्री-पुरुष अपनी प्राकृतिक काम-तृष्णा से पीडित होकर नीति-अनीति का विचार किये बिना पारस्परिक इच्छा अथवा बलात्कार से सम्भोग-रत हो जाते हैं। यह तो दुनिया-भर मे कही भी हो जाता है। देश-काल से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं। परन्तु हमारा देश नाना जातियो का सास्कृतिक संगम स्थल होने के कारण नानाजातीय सस्कृतिया की कामाचार सम्बन्धी ढीली नीति के कारण इस सम्बन्ध मे मानसिक रूप से एक चुनौति का शिकार हो गया। ऋग्वेद मे शैलूषो अर्थात् नटों का वर्णन आता है। अमरकोश म इन शैलूषा को 'जायाजीवी' अर्थात् औरतो की कमाई खाने वाला बतलाया गया है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' मे कतिपय जातियो की स्त्रियो को रसिको की भोग-सामग्री बतलाया गया है। भाटो की स्त्रियाँ पुरुष का मन अवैध रूप से बहलाने के लिए आसानी म हाथ लग जाती थी। इनके अतिरिक्त मणिकारिका अर्थात् नगीने-साज की स्त्री तथा शिल्पकारिका अर्थात् शिल्पी की स्त्री भी इस काम के लिए आसानी से उपलब्ध होती थी। इसलिए ऐसी स्त्रियाँ, जिन्हे अपने पति अथवा समाज से अन्य पुरुष के भजने के कारण दण्ड नही मिलता था, व्यभिचार के लिए बुरा आदर्श बन गइ। इस देश मे कही-कही पर गाँव-समाज मे ब्याहकर आने वाली किसी भी जाति की वधू के साथ पहली रात बिताने का अधिकार मुखिया, राजा अथवा पुरोहित का होता था। सामन्ती परम्परा के कारण अब तक कुछ हीन मानी जाने वाली जातियो की स्त्रियो का भोग करना ऊँची जाति के पुरुषो के लिए एक प्रकार का नैतिक अधिकार ही माना जाता रहा है। मैं किसी भी छोटी-बडी जाति को लाछन लगाने की नीयत से नही कहता, फिर भी वस्तु-स्थिति को पहचानने की क्रिया मे यह देखा जा सकता है कि इस

देश के गावो म कुछ जातियो की स्त्रियो पर बलात्कार करना ऊँची जातियो के पुरुषो का धर्म-सा ही हो गया है। मैं अपने अवध प्रदेश की बात जानता हूँ। गाँवो में चमारिने प्राय काम-भोग के लिए व्यवहार मे लायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त गाव की रखैलो में बारिन, अहीरिन आदि का नाम भी मैंने अक्सर सुना है। नगरो म कहारिन, मालिन, नाइन, मेहतरानी आदि स्त्रियो के साथ भद्रजनो का काम-व्यवहार चलता रहा है। मैं पहले ही कह चुका कि किसी भी जाति को यहा कलकित करने की मेरी नीयत नही, केवल वस्तु-स्थिति की दृष्टि से कतिपय जातियो के नाम लिये गए हैं। शहरो में अनेक भद्र घरो की काम-अतृप्त स्त्रियाँ एसी जातियो के सेवक पुरुष से अपना नाता जोडती हैं। प्रत्येक क्षेत्र में कुछ जातियों की स्त्रियाँ सामन्ती दुराचार का आम शिकार बना और अब बीती अनेक सदियो मे जैसे उनकी परम्परा ही स्थापित हो गई है। पितृ-सत्तावादी, आर्य सामन्त पराजित जातियो की स्त्रिया का बलात् भोग करते हुए क्रमश स्त्री-जाति का आदर करना भूल गए। 'कामसूत्र' एक ऐसी कुजी है, जिसके द्वारा हम अपने सामन्ती दुराचार के तिलस्म का उद्घाटन कर सकते हैं। विलासी पुरुषा की सहायतार्थ 'कामसूत्र' ग्रन्थ सलाह देता है कि जो स्त्री अपनी सौत के कारण पति की अधिक प्यारी नही होती उसका पातिव्रत आसानी से भग किया जा सकता है, जिनके पति परदेश गये हा उन पत्निया को अपने मतलब के लिए विलासी जन आसानी से ललचा सकत है, रोगी और कुरूपवान पुरुष की सुन्दर पत्नियाँ भी आसानी स विलासिया के हत्थे चढ़ जाती हैं। उजडड गँवार पति की सुघड, सलोनी पत्नी का पातिव्रत स्वय अपने ही मन से कच्चा होता है, बडे शक्की और ईर्ष्यालु पति की पत्नी भी अपने मानसिक विद्रोह के कारण कच्ची पतिव्रता होती है। इसलिए उनका भी रसस्वार्थी आसानी से फँसा सकते हैं।

तीज-त्यौहार के दिन राजमहला म नगर-भर की स्त्रियाँ आती थी और प्राय दिन-भर वहाँ रहा करती थीं। 'काम-सूत्र' म लिखा है कि राजा इन औरतो को ताकता था, जिस पर मन आ जाता उसके पास कुशल दूती भेजता था। स्त्री अगर रसिया हुई तो कलात्मक बातो की लपेट मे स्वय ही खिची चली आती थी और यदि वृद्ध अथवा धर्मभीरु हुई तो मीठी-मीठी बातो से बहलाकर महल, उद्यान अथवा पालतू जानवरो के खेल दिखलाने के बहाने दूती उसे निमत स्थान पर ले जाती थी। वहाँ उसे बतला दिया जाता था कि राजा उसका भोग करना चाहता है। उसे अपने सौभाग्य पर गुप्त गौरव-बोध करने की प्रेरणा दी जाती

थी, तरह-तरह से ललचाया जाता था। यदि राजी हो गई तो ठीक, वरना राजा वहाँ स्वय उपस्थित होकर उसका बलात् भोग कर लेता था। जब स्वय राजा ही ऐसा गन्दा काम करेगा तब उसके मन्त्री, आमात्य और छोटे कमचारी भला क्यो चूकेंगे ? राजा की गोशाला का अधीक्षक अपने मातहत रहने वाली गोप-स्त्रिया का नैतिक आचरण बिगाडने का अधिकारी भी होता था। राज्य की ओर से नियुक्त कपडा बुनने वालियाँ चरखा कातने वालिया अपने विभाग के अधीक्षक की भोग-सामग्री हुआ करती थी। इस प्रकार अफसरी-मातहती मे औरता का सामाजिक आचरण बिगडता ही रहता था।

एक ओर समाज मे पातिव्रत की महिमा कठोर विधानो द्वारा समर्थित होकर बढती थी और दूसरी ओर सामन्ती जोम उस महिमा का अपने रस-स्वार्थ के लिए रोज मखौल उडाता था। मजे की बात यह थी कि दूसरो की लडकियो-बहुओ को अपने मजे के लिए उडाने वाला सामन्त स्वय अपनी लडकिया-पत्निया को दूसरो के चगुल मे फँसे देखकर आदर्शोन्मत्त हो कठोर वैधानिक और क्रूर पति बन जाता था। सामन्ती सदाचार और दुराचार का यह ,दोहरा न्याय मानव-सभ्यता को खा गया।

इन सामन्तो के कामाचार को उनके दरबारी कवियों ने प्रेम की सज्ञा द दी। 'कथा-सरित्सागर' मे पाण्डव-वशी महाराज उदयन और उनके पुत्र महाराज नरवाहनदत्त के प्रति कामाचार को प्रेमाचार मानकर उनकी प्रेम-कहानिया लिखी गई हैं। सामन्ती की बहु-विवाह प्रथा ने यहाँ के लोगो को स्त्री का आदर-मण्डित निरादर करना सिखला दिया।

अब बहाने-सिर कन-कन करते मन जुड गया है, अनुभव, अध्ययन, देशाटन से अपने समाज के ऐतिहासिक सामाजिक सास्कृतिक विकास का एक मानस-चित्र बन गया है। पुरुष अपनी मानसिक और बौद्धिक अ-गति का दूर करने की जिस प्रकार भीतरी झुँझलाहट से उद्दाम काममार्गी होता है उसी प्रकार स्त्री के भी अपने कारण होते हैं। ऐतिहासिक कारणा से हमारे देश म स्त्रिया की सामाजिक स्थिति पुरुषा से भिन्न रही है। अब आजादी के बाद यद्यपि वैधानिक रूप से हमारा भारतीय समाज भी अर्द्धनारीश्वर के समादर्श पर स्थापित हो चुका है, पर अवैधानिक रूप से भी वह वही पुराने स्तरो पर ही स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को अधिकाश में निभाये जा रहा है।

अपने स्मृतिकारो और पौराणिक मे विचारा का विरोधाभास देखकर एका-एक यह समझ म नही आता कि हम अपने समाज मे नारी की किस स्थिति को

सही मानें। नारी की पूजा से लेकर नारी की ताडना तक का विधान एक साथ मिलता है। मनुस्मृति मे ही एक ओर तो स्त्री और पुरुष एक ईश्वर के अंग होकर अभिन्न और समस्थिति पर है तथा दूसरी ओर उसमे पत्नियो के लिए कठोर दण्ड-विधान हैं जब कि उन्ही परिस्थितियो मे पुरुषो के साथ सहानुभूतिपूर्वक दण्ड-विधान रचा गया है। राजसिंहासन पर स्त्री-पुरुष दोनो ही एक साथ प्रतिष्ठित करने की प्रथा थी, पर जो स्त्री पट्टमहिषी बनकर अपने समाज की नारियो का प्रतिनिधित्व करती, स्वय उसे ही अपने पुरुष से अक्सर अच्छा व्यवहार नही मिलता था। राम-माता देवी कौशल्या को ही देखिए। उनका सुहाग अन्य दो स्त्रियो के साथ बँटा था। बडी थी, सिंहासन पर पति के साथ बैठती थी, पर रुआब कैकेयी देवी का ही था। सैंयाजी को प्यारी वही सुहागन। कैकेयी मँझली होते हुए भी पट्टमहादेवी को नाको चने चबवा सकती थी, अपनी-सी पर आकर बडी रानी के बेटे का अधिकार भी छीनकर अपने बेटे को दिलवा सकती थी। इसी प्रकार स्त्री की स्थिति सदा डावाडोल रहती थी। भगवान् राम यदि किसी त्रिया-राज्य मे कैद रहकर लौटते तो उनके ब्रह्मचय की अग्नि-परीक्षा न होती, परन्तु भगवती सीता के लिए रावण के यहा से मुक्त होने के उपरान्त अग्नि-परीक्षा देना अनिवार्य था। इतने पर भी किसी उद्धत प्रजाजन के सन्देह प्रकट कर देने पर वे निकाली गइ। राम अपने मन से सीता देवी के प्रति आश्वस्त थे, पर उन्हें भी समाज का भय था।

इससे पहले और इस समय भारत देश में ऐसी अनेक जातियाँ भी रहती थी, जिसमे सास्कृतिक एव वैधानिक रूप से एक-पतिव्रत का नियम न था। यहाँ मातृ-सत्तात्मक काल की, उसके तथा पितृसत्तात्मक काल के मध्यम युग की बहुजातीय नाना संस्कृतियो का जाल फैला था।

उत्तर-प्रदेश के कुमाऊँ-गढवाल क्षेत्र म नायक जाति के लोग अपनी लडकियो से पेशा कराते थे, छिपे-ढके शायद अब भी कराते हैं। नायक लोग खस-राजपूतो की लडकियाँ खरीदकर उनसे विवाह करते हैं, अपनी बहुओ को परदे मे रखते हैं, किन्तु उनसे उत्पन्न लडकियो को कमाई का साधन बनाते हैं। सन् १८५७ से लेकर सन् १६२६ तक नायक कन्याओ की बिक्री को रोकने के लिए सरकार ने कड़े कानून बनाए। उस क्षेत्र के पढ़े-लिखे लोगो ने भी नायको मे नई चेतना और सुधार लाने के लिए अनेक सस्थाएँ स्थापित की, आर्य-समाजी सुधारको ने भी अच्छी सेवा की परन्तु सदियो के सस्कार आसानी से नही मिटते। नायक लोग

अक्सर मौका पाते ही अपनी लड़कियों को लेकर बाहर निकल जाते हैं और उन्हें बेच आते हैं।

हिमालय की कतिपय जातियों में पतिगण अपनी पत्नियों को खरीदते-बेचते हैं। साल-छः महीने एक पत्नी को रखा, जब जी भर गया तो उसे बेचकर नई मोल ले ली। इस प्रकार एक स्त्री अनेक पतियों के हाथों बिकते-बिकते प्रायः वेश्या ही हो जाती है। मेरे लिपिक चि० लवकुश दीक्षित ने इस सम्बन्ध में अपना एक अनुभव बतलाया। उसे लगभग नौ-दस महीने तराई के इलाके में जीविका-वश सन् १९५३ में रहने का अवसर मिला था। जिस स्थान पर वह था वह नेपाल के चितौन क्षेत्र में हिथौड़ा से पश्चिम, नारायणी नदी के किनारे बसा था। उस गाँव का नाम शिलिंगी है। वहाँ एक फारेस्ट रेंजर साहब रहते थे। वे पहाड़ी थे। उनके ग्यारह पत्नियाँ थीं। लवकुश के निवास-काल में ही रेंजर साहब की दो पुरानी पत्नियाँ मेला में बेची गईं तथा दो ही नई खरीदकर लायी गईं। रेंजर साहब की जो दो पत्नियाँ बिकीं उनमें एक ज़रा बड़ी उमर की थी और दूसरी बिलकुल कमसिन ही थी, परन्तु उनकी सब पत्नियों में अपेक्षाकृत कुरूप थी। सब-की-सब स्त्रियाँ बहुत ही भली और सीधी थीं। रेंजर साहब अपनी पत्नियों को जेठी, सायली, मायली, लावरी अर्थात् बड़ी-सँझला-मँझली-छोटी आदि कहकर पुकारते थे। रेंजर साहब की आयु पैंतीस-चालीस की थी। उनकी जेठी लगभग तीस वर्ष की थी, सँझली पद में बड़ी होते हुए भी मँझली से उम्र में छोटी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि पुरानी सँझली निकालकर उसकी जगह नई को भरती किया। पुरानी मँझली अपनी जगह पर ही कायम रही, उसकी पद-वृद्धि न की गई। लावरी पत्नी सबसे छोटी लगभग चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी। जो नई खरीद कर लाई वे सोलह-सत्रह के लगभग रही होंगी। जेठी के हाथ में गृहस्थी की बागडोर थी। ग्यारहों पत्नियाँ एक कमरे में रहती थीं। रेंजर साहब की दो माताएँ अलग कमरे में रहती थीं। पत्नियों को बार-बार बेचे जाने का भय रहता था, इसलिए हिल-मिलकर रहती थीं। इतनी पत्नियाँ होते हुए भी संतानें केवल दो ही थीं, एक तीसरी से और एक शायद छठी या सातवीं से थी। लवकुश का एक जमींदार के यहाँ भी कुछ समय के लिए रहने का अवसर मिला, उसकी भी तीनों पत्नियाँ एक ही कमरे में रहती थीं। वह एक निर्धन व्यक्ति 'ऐतू' को भी जानता था। उसके पास ही लकड़ी का बड़ा-सा कमरा था जिसमें वह, उसका विवाहित पुत्र और विवाहिता पुत्री तथा उनके बच्चे-बच्चे, सब एक साथ रहते थे।

उसने वहा का एक मेला भी देखा था जो नारायणी नदी के किनारे ही कपिलास डाँडा नामक एक पहाडी स्थान पर लगता है। यहाँ कगार मे ही लगे पत्थर को काटकर शिवजी की एक मूर्ति प्राचीन काल से स्थापित है। इस मेले मे कौडी, मगे, चादी की भारतीय चवन्नियो के कण्ठे, बटन आदि के अलावा हाथ की बनी 'रक्सी' अर्थात् जौ की शराब बिकती है। लडकियाँ यहा के बाज़ार में छिपे तौर पर बिकती हैं तथा दूसरे बाजारा मे बेची जाने के लिए यहाँ से उठायी भी जाती हैं। ये लडकिया थारू एव अन्य गरीब जातिया की होती हैं। थारू जाति के दलाल लडकियाँ बेचने और खरीदने वालो से सम्पर्क स्थापित करते हैं। सौदा पट जाने पर उन्ह दोनो ओर से दलाली मिलती है। यहाँ की ज़मीन पर केवल ज़मीदार का ही अधिकार होता है। थारू आदि गरीब जातियो के लोग उनके नौकर मात्र होते हैं, उन्हे ज़मीदार की ओर से भाजन मिलता है। कपडा वे स्वय बुन लेते हैं। पहनावा एक धोती का ही होता है। शराब स्वय बनाते हैं और रात मे छुट्टी के समय खूब पीकर और अलाव जलाकर स्त्री-पुरुष उसके चारा ओर नाचत हैं। नाच मे स्त्री-पुरुष अपनी-पराई का मान नही रखते। खूब मस्त होकर नाचते-गाते है, किन्तु अनाचार की सीमा पर कभी नही पहुँचते। इन गरीबा मे किसी की भी एक से अधिक पत्नी नही होती। कोई-कोई अभागा तो एक भी नही खरीद पाता। ज़मीदार अपनी ही प्रजा की सुन्दर कन्याओ का अपहरण करवाते हैं, परन्तु उन्हें अपने यहा नही रखते, वे दलालो के द्वारा उन्हें दूर के बाज़ारो मे बिकवाते हैं और मुनाफा कमाते हैं।

मलबार के नायरों की कन्याएँ वहा के नम्बूद्री ब्राह्मणा की भोग-सम्पत्ति होती हैं। प्रथम बार रजस्वला होने पर इनकी कन्याएँ धूम-धाम से पवित्र तीर्थ-कुण्डा मे स्नान करने के लिए भेजी जाती हैं। इसीसे नम्बूद्रियो को पता लग जाता है। नम्बूद्री ब्राह्मणो मे केवल ज्येष्ठ पुत्र का ही विवाह होता है, अन्य पुत्रो का नही। अन्य पुत्र किसी नायर कन्या के साथ रात बिताते है। जिस नायर के यहाँ नम्बूद्री ब्राह्मण रात मे जाता है वह उसका श्रद्धा-भक्ति से स्वागत करता है। एक मजे की बात यह है कि नम्बूद्री न तो अपनी प्रेयसी नायर कन्याओ से विवाह करते हैं और न उनसे उत्पन्न अपनी सतानो को ही छूते हैं।

सन् '५२ मे दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए मैं, डाक्टर रामविलास शर्मा और प्रिय राजेन्द्र यादव त्रिवेन्द्रम मे एक ऐसे ही मलयालम भाषा के लेखक और पत्रकार-बन्धु के अतिथि हुए थे जिनकी माता नायर और पिता नम्बूद्री ब्राह्मण थे। माता और पुत्र सदा दरिद्रता से लडते ही रह जब कि नम्बूद्री पिता

के घर दूधा कुल्ले किये जाते थे। उक्त लेखक-बन्धु में अपनी माता के लिए अनन्त श्रद्धा और पिता के लिए तीव्र घृणा थी। उन्हीं से मालूम हुआ कि शिक्षा-प्रसार होने के साथ-साथ नायरों ने अपनी कन्याओं को परम्परा की दासता से मुक्त कर दिया है।

दक्षिण की अनेक जातियों में अपनी कन्याओं को देवदासी बनाने का नियम भी अब से कुछ वर्षों पहले तक सरकारी कानून होने के बावजूद चोरी-छिपे प्रचलित था, इक्का-दुक्का केस तो शायद अब भी होते ही रहते हैं। इन विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण इस देश के काम-जीवन में उच्छृङ्खलता अनिवार्य रूप से आ गई। गणिका अथवा वेश्या इन्हीं काम-परिस्थितियों की कलात्मक सृष्टि हैं।



* सुआ पढावत
* गणिका तरि गई

वेश्या या गणिका का अर्थ स्पष्ट है। जन और गण की पत्नी केवल इस देश के प्राचीन इतिहास से ही नही वरन् सारी दुनिया मे मानव-सभ्यता के पितृसत्तात्मक युग मे एक आवश्यक और महत्वपूर्ण संस्था बन गई। बाइबिल म केडेशाथ (Kede shoth) वेश्याओ का वर्णन आता है। ये लोग (Canaanite) मन्दिरो से सम्बद्ध थी, मोआबाइट और असीरियन मन्दिरो मे भी इनका बडा आदर होता था। आर्मीनिया देश मे पुराने समय मे यह आम प्रथा थी कि लोग अपनी बेटियो को देवदासी बना देते थे। प्राचीन बेबिलानिया म इन देवदासियो का बडा रुतबा था। प्राचीन एथेंस और रोम म भी वेश्याओ को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ये सूचनाएँ जॉर्ज रैले स्काट की प्रसिद्ध पुस्तक 'वेश्या जीवन का इतिहास' से प्राप्त है।

हमारे देश म सालवती, मथुरा की वसत सेना तथा वैशाली की नगरवधू अम्बपाली के वृत्तात अब तक भारतीय साहित्य मे अनेक काव्य, नाटक और कहानी-उपन्यासो की विषय-वस्तु बनकर लोक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

पितृसत्तात्मक सभ्यता के विकास के साथ साथ पुरुष समाज ने स्त्री समाज को खाने और दिखाने के दातो की तरह दो वर्गों मे बाट दिया था। पितृसत्तात्मक सभ्यता के विकास में पुरुष के उत्तराधिकार की समस्या ही प्रमुखतम थी। अपने उत्तराधिकारी को पाने के लिए वह अपने अधीन स्त्रियो को अन्य पुरुषो का सग करने से रोकने लगा। पतिव्रत धर्म की महिमा हुई। इससे एक नई समस्या सामने आई, क्योंकि तब तक स्त्रियो और पुरुषो को परस्पर इच्छामत मिलने में किसी प्रकार की सामाजिक बाधा नही थी। स्त्रियो पर व्यक्ति का पूरा अधिकार हो जाने से व्यक्ति-व्यक्ति मे फूट पड जाना स्वाभाविक ही था। मान लीजिए एक बडी सुन्दर स्त्री है, उसे सब चाहते हैं, परन्तु उस पर अधिकार केवल एक ही व्यक्ति का है, तो स्वाभाविक रूप से सिर-फुटव्वल हो जाएगी। इस तरह जातीय संगठनों के बधन शिथिल पड जाने की सम्भावना होती थी। आत्म-रक्षा के लिए कोई भी जाति अपने हेतु यह स्थिति पसन्द नही कर सकती थी। समझौते ने

लिए एक ही माग था। जाति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियां जाति के सभी पुरुषों की वधुएँ मान ली गईं।

'सालवती' प्रसंग पर प्रसादजी एक बड़ी अनूठी कहानी हमें दे गए हैं। एक राष्ट्रीयता के नागरिक दूसरी राष्ट्रीयता के एक बड़े नगर में जाते हैं। वहाँ उन्हें कला निपुण, सुन्दर, वाक्‌चतुर नगर-वधुओं के दर्शन होते हैं। उन्होंने वहाँ यह भी देखा कि नगर वधुएँ बनाने के लिए वहाँ सौन्दर्य प्रतियोगिता भी होती है। उन नागरिकों ने अपने यहाँ आकर उसी प्रकार का सामाजिक नियम बनाने और सौन्दर्य प्रतियोगिता आरम्भ करने की माँग अपनी राष्ट्रीय संसद से की। नगर वधुओं की निर्धारित फीस देकर कोई भी उन्हें पा सके अर्थात् वे पण्य विलासिनी, पण्य वधू, पण्यांगना हों। अनेक असफल और ईर्ष्यालु प्रेमियों की लारें चू पड़ीं। इस प्रस्ताव का जवानों में इतना समर्थन हुआ कि पुरानों को अपनी-अपनी पगड़ियों की लाज सम्हालने ही बनी। राष्ट्र में फूट पड़ने के भय से उस राष्ट्र की देखादेखी इस राष्ट्र में भी सौन्दर्य प्रतियोगिता हुई। एक व्यक्ति की प्रेमिका जीती और जबरन सार्वजनिक पण्य-प्रेमिका बना दी गई। यों समाज में वेश्या का उदय हुआ।

मोहनजोदड़ो से एक नर्तकी की नग्न मूर्ति भी प्राप्त हुई है। रामायण महाभारत के युग में भी नाचने गाने वालियों के प्रमाण मिलते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र द्वारा मौर्यकाल और उसके आसपास युग में राजदरबार एवं सम्पन्न प्रजाजनों के लिए गणिका की अनिवार्यता का पता भी चल जाता है। आज से लगभग दो हज़ार दो सौ बयासी वर्ष पहले का वह ज़माना और था। जहाँ तक मानव की वेश्या सम्बन्धी मान्यताओं की बात है, आज की दृष्टि से ठीक उलटी राह पर चल रहा था। आज वेश्या संस्था को समाप्त किया जा रहा है और उस काल में सरकार द्वारा ही वेश्याओं की प्रतिष्ठापना होती थी, उनके लिए एक अलग सरकारी विभाग खुला था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सरकारी गणिकाध्यक्ष के लिए यह आदेश है कि वह सुन्दर, जवान और कला-निपुण युवतियों को एक हज़ार 'पणम' (तत्कालीन सिक्का) के वार्षिक वेतन पर गणिका की हैसियत से नियुक्त करे। यही नहीं, बल्कि गणिकाओं में प्रतिस्पर्धा जगाने के लिए कौटिल्य महाराज यह आदेश भी देते हैं कि रूप गुण कला में उसकी प्रतिद्वन्द्विनी गणिका को उससे आधे वेतन अर्थात् पाँच सौ पणम वार्षिक आय पर नियुक्त किया जाए। वेश्या यदि कभी बीमार पड़े, विदेश में हो अथवा मर जाए तो उसकी बहन या पुत्री को उसका वेतन और जायदाद मिले। सुन्दर नर्तकियों को

भरती भी की जाती थी राज्य चिह्न, चँवर, छत्र आदि की सेवा का उत्तरदायित्व नर्तकियों का ही लिया जाता था। गणिका मंगलामुखी थी। प्रातःकाल उसका मुख देखना शुभ शकुन माना जाता था।

जब एक माल की इतनी आवश्यकता हो तो उसके सौदागर भी बाजार में अपने आप ही आ जाते हैं। आज जो बुर्दाफरोश और उनके गुण्डों, कुटनियों तथा दलालों को अपना काम करते हुए पग-पग पर कानून का भय और बाधा सताती है वह उस काल में कदापि नहीं थी। ऐसे पेशेवर 'स्त्री व्यवहारिण्य' कहलाते थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में देवदासियों का जिक्र तो अवश्य आता है, परन्तु नर्तकियों, गणिकाओं के रूप में नहीं, इसलिए यह अनुमान होता है कि तब तक देवदासियों की मर्यादा इस हद तक नीचे नहीं उतरी थी। मेरा अनुमान है कि मन्दिरों में मूर्तियों के रूप में प्रतिष्ठित भगवान् का जब से राजसी ठाट बाट दिया जाने लगा तब से ही देवदासियों में गायिकाओं, नर्तकियों की भरती भी की जाने लगी। पद्मपुराण एवं भविष्यपुराण में मन्दिरों में पुण्यार्थ समर्पित करने के लिए देवदासियाँ खरीदने की बात के प्रमाण मिलते भी हैं।

ई० थर्स्टन-लिखित 'कास्ट्स एण्ड ट्राइब्ज आफ़ सदर्न इण्डिया' पुस्तक के दूसरे भाग में देवदासियों का विशद वर्णन है। उक्त पुस्तक के अनुसार दक्षिण की प्राचीन प्रथा में सात प्रकार की देवदासियों का उल्लेख मिलता है—(१) दत्ता वह स्त्री कहलाती जो अपने आपको मन्दिर की सेवा के लिए किसी प्रकार के मूल्य की चाहना के बिना अर्पित करती थी, (२) विक्रीता अपने-आपको इसी काम के लिए बेचती, (३) भृत्या, वह स्त्री कहलाती जो अपने पारिवारिक मंगल हेतु मन्दिर की सेविका बनती, (४) भक्त देवदासी अपनी भक्ति-भावना के कारण मन्दिरों में भरती होती थी, (५) हृता उन देवदासियों को कहते थे जिन्हें कहीं से भगा लाकर मन्दिरों में अर्पित किया जाता था, (६) अलंकार वर्ग की देवदासियाँ वे कहलाती थी जो नृत्य-संगीत आदि ललित-कलाओं में दक्ष होकर किसी राजा या रईस द्वारा मन्दिरों की भेंट चढ़ायी जाती थी, और (७) रुद्र गणिका या गोपिका वर्ग की देवदासियों को अपने नृत्य संगीत की सेवा के लिए मन्दिरों से वेतन दिया जाता था।

सन् १६०१ ई० की मद्रास सेन्सस रिपोर्ट में देवदासियों के सम्बन्ध में यथेष्ट सूचनाएँ दी गई हैं। उक्त रिपोर्ट के लेखक ने इस पेशे का भविष्य दो जातियों के अवैध नाते से माना है। ऐसे नाता की अवैध सन्तानें सभ्यता के

आदिम विकास में ललित-कलाओं से सम्बद्ध होकर इस पेशे में आई। उक्त सेंसस रिपोर्ट में लिखा है, "हिन्दू धर्म की अनेक असंगत बातों में एक यह भी है कि यद्यपि इनका (देवदासियों का) पेशा उनके शास्त्रों द्वारा बार बार हीन दृष्टि से देखा और धिक्कारा जाता रहा है, तथापि दूसरी ओर उनके देव-मन्दिरों ने सदा इसे प्रोत्साहन दिया है।" इस जाति का संगठन उक्त लेखक के अनुसार ईसा की नवीं-दसवीं शताब्दियों में हुआ था। वेश्याओं का मंगल-मयी नाम 'देवदासी' भी सम्भवतः इसी काल में दिया गया। उन दिनों दक्षिण भारत में अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ था।

उक्त लेखक की बात में कुछ भ्रम अवश्य दिखलायी देता है, क्योंकि तंजावूर के बृहदीश्वर मंदिर के एक शिलालेखानुसार सन् १००४ ई० में चोल महाराज राजराज द्वारा उक्त मन्दिर की सेवा के लिए चार सौ देवदासियाँ अर्पित की गई थीं। उन्हें मन्दिर की चारदीवारी के अन्दर ही रहने को स्थान भी दिया गया था। इससे अनुमान होता है कि देवदासियों का संगठन ईसवी शताब्दियों के पूर्व ही हो चुका था। ईसा की तीसरी शताब्दी में उज्जयिनी के महाकालेश्वर के मंदिर में देवदासियाँ प्रतिष्ठित थीं। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में हिन्दू राजाओं, सामन्तों और धनिकों की कृपा से यह संगठन अधिकाधिक फलता-फूलता रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी में दक्षिण के विजयनगर दरबार में तुर्किस्तान का अब्दुरज्जाक नामक राजदूत आया था। उसके अनुसार वेश्या-वृत्ति राजकीय नियन्त्रण में होती थी तथा उसकी आय से पुलिस को वेतन मिलता था। इस प्रकार अपने सदियों के अस्तित्व को लेकर देवदासियों की एक जाति ही अलग बन गई। जाति के चौधरी-चौधराइन नियुक्त हुए, लड़के लड़कियों द्वारा उत्तराधिकार प्राप्त करने के लिए सामाजिक नियम भी बने। वेश्याओं की यह पंचायत-व्यवस्था विश्व में अपने ढंग की एक ही है। देवदासियों की लड़कियाँ पेशा करती थीं और उनके लड़कों की पत्नियाँ कुलवधुओं के समान ही गृहस्थी की मर्यादा में रहती थीं। जो लड़कियाँ सुन्दर और गुणवती होती थीं उन्हें देवदासी बनने की शिक्षा दी जाती थी और जो कुरूप या बुद्धू होती थीं उन्हें अपनी ही बिरादरी के युवकों से ब्याह दिया जाता था। इनके लड़कों में से कुछ तो इनके साजिन्दे बन जाते थे और कुछ संगीत-नृत्य के शिक्षक हो जाते थे। इन्हें नट्टुवन कहा जाता था। देवदासियों के कुछ लड़के अपना विवाह कर दूसरे रोजगार-धंधों में भी निकल जाते थे। वे अपने को 'पिल्लै' अथवा 'मुदलि' कहकर प्रतिष्ठित करते थे। ये पदवियाँ वेल्लाल और कैकोल जातियों की होती थीं

और आम तौर पर इन्हीं दो जातियों से देवदासियों की भरती भी होती थी।

देवदासी बनाने के लिए लड़की को धूमधाम से मंदिर में ले जाया जाता था, तलवार अथवा देवमूर्ति के साथ उसका विवाह सम्पन्न होता था और इस विवाह के प्रमाणस्वरूप देवदासी की स्वजाति का कोई पुरुष देवमूर्ति की ओर से उसके गले में 'ताली' बांधता था। इनकी जो लड़कियां देव-मन्दिरों में भरती नहीं होती थीं वे इस धन्धे के सब गुण सीखकर साधारण गणिका अथवा तमिल भाषानुसार 'मलवारत्त' बन जाती थीं। इन स्त्रियों को साहित्य, संगीत, नृत्य-कला, व्यवहार-वाक्चातुरी, पांसे आदि के खेल और काम कला की उत्तम शिक्षा दी जाती थी। भारतीय गृहिणियों के तीरथ-व्रत, नोन-तेल, लकड़ी और नाते-गोत की चर्चा भरे व्यवहार के विपरीत यह अलबेली गणिका पुरुषों पर जादू-बान चलाकर, उसके दिन-भर के काम काज गृह-काज अर्थात् जीवन के गम्भीर पक्ष की थकन से उबारकर एक ललित लोक में ले जाती थी। यही वेश्या का महत्व था और किसी हद तक अब भी है। हमारे पुरखे बड़े नम्बरी रसिया थे, यहां तक भी कहें-आपड़ा भारतरत्न बनाकर गुरु भी थी गए और आने वाली सदियों को भी गिना गए। साहित्य संगीत, नृत्य, सभी दिशाओं में उन्होंने अभूतपूर्व मानसिक गति पायी थी, फिर काम कला को ही क्यों न ब्रह्मानन्द सहोदर माना जावे! मानव-सभ्यता के इतिहास में वात्स्यायन का 'कामसूत्र' अपने रचे जाने के बाद सदियों तक इस विषय का विश्व साहित्य में एकमात्र शास्त्र-ग्रंथ रहा है, आज तो सारा विश्व उस ग्रंथ की प्रामाणिकता का आदर करता है।

एक बात कई बरस से मेरे मन में अटकती है, आज प्रसंगवश उसे कह ही डालूं। भारतीय शिल्प में खजुराहो, जगन्नाथ आदि कौलतंत्रमार्गी मंदिरों के चौरासी काम आसनों वाली मूर्तियों की बात तनिक देर के भूल भी जाइए तो भी यह ध्यान में अटकता है कि भारतीय शिल्पकारों ने, या उन्हें प्रेरणा और पैसा देने वालों ने कुछ पूजनीय पात्रों को छोड़कर नारी मूर्तियां प्रायः सर्वांग नग्न ही बनायीं। मोहनजोदड़ो की नग्न नर्तकी मूर्ति से लेकर मौर्य गुप्तकाल के वैभव तक यह परम्परा बड़े ठाठ से चलती चली आई है। अगर आज के मानस में रहें तो समझ में नहीं आता कि किस प्रकार माता पिता, बेटी बेटे, नाती-पोते, सब मिलकर उन मंदिरों में जाते होंगे या उन महल-हवेलियों में रहते होंगे, जिनकी चारदीवारियों में तथा जगह जगह सजावट में औरतों की नंगी और मादक आकृतियां अंकित होती थीं। शायद उस समय सेक्स के मामले में हमारी दृष्टि यह न रही हो। वाल्मीकि जिस ठाठ से भगवती सीता का शारीरिक सौंदर्य

बखान गए वह तुलसीदास की सास्कृतिक चेतना के लिए घृणापूर्ण अकल्पनीय था। जिन खुले शब्दो मे वाल्मीकि के राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के सामने सीता के विरह मे विलाप कर सकते थे वे तुलसी के राम की मर्यादा से बाहर के हैं।

खैर यह तो चलते की बात हो गई, मगर भारतीय गणिकाओ की अन्य कलाओ के अतिरिक्त काम-कला-प्रवीणता पर एक सर्टीफिकेट चौदहवी शताब्दी मे यहा आने वाला अरब यात्री इब्नेबत्तूता भी दे गया है। डाक्टर अतहर अब्बास रिजवी द्वारा अनुवादित 'तुग़लककालीन भारत' मे इब्नेबत्तूता का कलाम है "दौलताबाद के निवासी मरहठे हैं। ईश्वर ने उनकी स्त्रिया को विशेष रूप से सुन्दरता प्रदान की है। उनकी नाके तथा भृकुटिया बडी ही सुन्दर होती है। उनसे समोग मे विशेष आनन्द प्राप्त होता है। उन्हे अन्य स्त्रियो की अपेक्षा प्रेम सम्बन्धी बाता का अधिक ज्ञान होता है। दौलताबाद में गायकों तथा गायिकाओ का अत्यन्त सुन्दर तथा बडा बाजार है जो तरबाबाद कहलाता है। इसमे बहुत सी दूकानें हैं। प्रत्येक का एक द्वार दूकान के स्वामी के घर मे खुलता है। प्रत्येक घर मे एक अन्य द्वार भी होता है। दूकानें कालीनो से सजी रहती हैं। इसके मध्य मे एक बडा-सा झूला होता है जिसमे कोई गायिका बैठी अथवा लेटी रहती है। वह नाना प्रकार के आभूषणो से शृगार किये रहती है। उसकी दासियाँ झूला झुलाया करती हैं। बाजार के मध्य मे कालीनो तथा फर्शों से सुसज्जित एक बहुत बडा गुम्बद है। इससे बृहस्पतिवार को (अमीरुल मुतरि-बीन) गायको का सरदार अस्र की नमाज के पश्चात् बैठता है। उसके सेवक तथा दास भी उसके साथ रहते हैं। गायिकाएँ बारी-बारी से आकर उसके समक्ष सायकाल की नमाज के समय तक गायन तथा नृत्य करती है। तत्पश्चात् वे चली जाती हैं। उसी बाजार मे नमाज के लिए मस्जिदे हैं। उनमे रमजान के महीनो मे इमाम 'तरावीह' पढाता है। हिन्दुस्तान के कुछ हिन्दू राजा जब इस बाजार मे से गुजरते तो वह गुम्बद मे रुककर गायिकाओ का गायन सुना करते थे। कुछ मुसलमान बादशाह भी ऐसा ही करते हैं।"

हुमायू बादशाह के साथी बैरमखा फरमाया करते थे कि अमीर के लिए चार बीबिया चाहिए, मुसीबत और बातचीत के लिए ईरानी, खाना पकाने के लिए खुरासानी, सेज के लिए हिन्दुस्तानी और चौथी तुरकानी हो जिसे हर वक्त मारते-डांटते रहे कि और बीवियाँ डरती रहे।

ये सर्वकला-निपुण सुन्दर गणिकाएँ और नर्तकिया तथा उनके धन्धे की सह-

गामिनी देवन्मो पुत्री 'मेलक्कारा'—मद्रास सेंसस रिपोर्ट (सन् १६०१) के लेखक के शब्दों में—'उस भारतीय संगीत पद्धति की आज प्राय एकमात्र कोषाधिकारिणी हैं, जो विश्व की प्राचीनतम पद्धतियों में से एक है। इनके और ब्राह्मणों के सिवा अन्य लोग इस विद्या का विधिवत् अध्ययन प्राय कम ही करते हैं।'' उक्त सेंसस रिपोर्ट के अनुसार ही इन देवदासियों के दो वर्ग होते हैं—एक वलङ्गापि (दक्षिण पक्ष) और इलङ्गापि (वाम पक्ष)। इन दोनों पक्षों में खास अन्तर यह है कि जो दासियाँ शिल्पकार या साधारण कर्मकारों, तमिल भाषानुसार 'कम्मालों', के यहाँ नाचने-गाने जाती थीं वे इलङ्गापि कहलाती थीं। इन्हें कम्माल दासी भी कहा जाता था।

ई० थर्स्टन महोदय ने अपनी 'दक्षिण भारतीय जातियों और कबीलों के इतिहास' नामक पुस्तक में एबेडुबाय नामक एक पादरी का यह मन्तव्य नोट किया है कि भारतीय नारियों में गणिकाएँ ही श्रेष्ठ रूप से सुसज्जित होती हैं।' घरेलू औरतों को पुरुष माल की तरह धानियों पर रखता और अनुभव ने वेश्याओं को सजावट का यह गुर सिखलाया कि अपनी सारी सुन्दरता को उघाड़कर रख देने से सौन्दर्य-बोध की काम-सुगंध फीकी पड़ जाती है, पुरुष की उत्तेजना नारी के अधढलके सौन्दर्य के रहस्य में होता है। भारतीय गणिकाएँ ऐसा साज सँवारना जानती थीं जो पुरुष की नज़रों को भी बाँधे और कल्पना को भी। उपर्युक्त पुस्तक में एक अंग्रेज की डायरी का हवाला देते हुए लिखा है कि यहाँ की नर्तकियाँ ऐसा कमाल दिखलाती हैं कि उनके नृत्य की तीव्रता, चंचलता और मादकता से पुरुष का पौरुष रंगीन हो उठता है। मैं भी इस बात की दाद दे सकता हूँ। नर्तकी जब महफ़िल को बाँधने वाला नाच नाचती है तो हरएक को ऐसा लगता है कि वह उसे ही रिझा रही है, उसके पास अब आयी, वो दुपट्टे के पल्लू से छू गई या कि आयी और अब गोद में गिरी। इस तरह वह अपने जादू से बाँध लेती है। अंग्रेजों ने भारतीय 'नाच-गर्ल' की बड़ी चर्चा की है, कहीं रंगीन, कहीं पुरमज़ाक। लखनऊ की नवाबों में भी अधिकतर या तो बटेरों की हुकूमत रही या फिर तवायफ़ों की, जम्मन और अमामन-जैसी कुटनियों-दल्लालों की, उनके भाड़ भगतुओं की। वाजिद अली शाह के काल में अवध के अंग्रेज रेजिडेण्ट मेजर जनरल सर डब्ल्यू० एच० स्लीमन ने अपनी प्रसिद्ध डायरी 'ए जर्नी थ्रू द किंगडम आफ अवध' में दरबारी वेश्या विलासिता का राजनीतिक रूप वर्णन किया है।

जे० टालबॉय ह्वीलर की 'हिस्ट्री आफ इंडिया' में एक शाहंशाह की वेश्या

प्रेमिका और उसकी सखी के साथ दिल्ली के अमीर सरदारा की नाक-झाक का रोचक वणन है। मुगल शासन के पराभव काल म जहाँदारशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। वह लाल कुँवर नामक एक तवायफ के वस मे था। लाल कुँवर ने अपना अच्छा समय देखकर बडे अच्छे-अच्छा को उँगलिया पर नचा दिया, उसके जितने भाई भतीजे, भाड-भगतुए थे, सब नवाब हो गए, सब बडे-बडे सरकारी ओहदा पर बैठा दिये गए। वश परम्परागत दरबारियो, मनसबदारो को इससे बडे अपमान का बोध होता था, पर कर कुछ भी न पाते थे। किसी लुगाई के सैंया कोतवाल हो गए तो उसकी हकडी पर कहावत बन गई, और यहाँ तो मुसम्मात लाल कुँवर ने शाहशाह ए-हिन्दोस्तान को अपने तलवे सहलाने वाला बना रखा था। शाहशाह जहादारशाह दिल्ली के तख्त पर यो नवाब जुल्फिकार खा वजीर ए-हिंद के द्वारा मिट्टी के माधो से ही बिठाये गए थे, फिर भी तख्त पर तो बैठे ही थे। वजीर और दरबारियो को लाल बुरा लगे, मगर तख्तोताज के आगे उन्हे सिर तो झुकाना ही पडता था। लाल कुँवर बँदरिया के हाथ मे सामन्तो रूपी शानदार मणिधर नागो के फन पड गए थे। उनकी मणि-सी जगमगाती आबरू का छीनकर, उसे ओछे और कमीने समझे जाने वाले आदमिया का सौंपकर, नागा का फन अपने हठ के पत्थर पर रगड-रगडकर वह उन्हे मार डालती थी। जैसे बन्दर बार-बार सूघकर देखता है कि साप मरा या नही, उसी तरह अपनी एक एक फरमायश आगे रखकर लाल कुँवर भी आजमाती जाती थी। एक बार उसने बडी बात उठाई, यानी कि अपने भाई को आगरे का सूबेदार बनाना चाहा। जहाँदारशाह राजी हो गया। लेकिन एक मजबूरी थी, शाही मुहर वजीर जुल्फिकार खाँ के पास रहती थी। वजीर अड गया। लाल कुँवर तडपने लगी। जहाँदारशाह दो चक्की के पाटो म पिसने लगे। आखिरकार लाल कुँवर के मारे-फटकारे बेचारे बादशाह ने वजीर को बुलवाकर अपना तहा दिखलाया। लाल कुँवर पास ही बैठी थी। वजीर के लिए कठिन अवसर था, लेकिन वह भी मौका न चूका, बोला कि जहाँपनाह के हुक्म को टाल सकू इतनी मेरी मजाल कहाँ, मगर हक नजराना तो मुझे मिलना ही चाहिए। नजराने की फीस के तौर पर वजीर ने बादशाह से एक हजार तानपूरे माँगे। उसने कहा कि अब से जिन सरदारा को अपनी पदोन्नति की चाह होगी उन्हे तानपूरा बजाने की प्रेक्टिस भी लाजिमी तौर पर करनी ही पडेगी। सुनार की सौ ठक-ठक पर लुहार के एक घन हथौडे की चोट पड बैठी। लाल कुँवर बडी लाल-पीली हुई, क्योंकि उसका भाई पहले महफिलो मे तानपूरे की सगत ही किया करता था। मगर इसके बाद

जहाँदारशाह फिर अपनी माशूका के भाई को आगरा का सूबेदार न बना सके।

लाल कुंवर का प्रताप यही अन्त न हो गया, बल्कि उसने आगे भी सामतो से करारी मात खाई। लाल कुँवर की एक सहेली थी, उसका नाम जोहरा था। जोहरा कुँजडिन थी, दिल्ली के किसी बाजार मे उसकी तरकारिया की दूकान थी। जब लाल कुवर लाल किले की मालकिन बनी तो उसकी बचपन की सहेली जोहरा कुँजडिन का सितारा भी बुलन्द हो गया। बडे-बडे दरबारी और नवाब, जो बादशाह से अपना काम करवाना चाहते थे, जोहरा को और उसकी मारफत लाल कुवर को भी लाखो की रिश्वतें चटाया करते थे। शाही महला में जोहरा कुजडिन शाहजादियो की-सी शान-शौकत से जाया-आया करती थी। बादशाह लाल कुँवर और जोहरा के साथ नशे मे धुत्त होकर भद्रता की सारी सीमाएँ तोडा करता था। जोहरा और लाल कुँवर के हालीमवाली स्वभावतया सब लोगों से बडी बदतमीजी से पश आया करते थे।

एक दिन निजाम-उल मुल्क की सवारी बाजार से गुजर रही थी। निजाम औरगजेब के जमाने के ओहदेदार थे और उनकी बहुत बडी प्रतिष्ठा थी। आगे चलकर उन्होंने ही हैदराबाद दक्षिण का निजाम राज्य स्थापित किया। ऐसे बडे पदाधिकारी से जोहरा की सरे-बाजार मुठभेड हो गई। एक तरफ से निजाम की सवारी आ रही थी और दूसरी तरफ से जोहरा कुँजडिन की सवारी आ रही थी। माग सकरा था जब तक एक की सवारी रुककर और सडक-किनारे हटकर दूसरी का आगे जाने की सुविधा न दे तब तक दानो का निकलना असमव था। पुराने समय म इन छोटी-छोटी बातो के लिए रईसो का आपसी मन-मुटाव और युद्ध तक हो जाता था, फिर यहा तो निजाम और कुँजडिन के बीच की बात थी। कुजडिन बादशाह की मुँहलगी होने के कारण अपने-आपको बहुत बडा मानती थी, इसलिए उसके आदमिया न निजाम के आदमियो को रास्ता देने के लिए कडककर हुक्म दिया। अपने स्वामी का सकेत पाकर निजाम के आदमियो ने कह दिया कि कुँजडिनो-पवासिनो के लिए अमीरो की सवारियाँ नही रुका करती। जोहरा उस समय हाथी के हौदे पर सवार थी, परदे म थी, परन्तु यह सुनते ही अपनी सी पर आ गई। परदा हटा और हाथ बढा-बढाकर उसने निजाम की शान म मल्लाही गालियाँ बकनी आरम्भ कर दी। निजाम यह सहन न कर सके। उन्हाने अपने आदमियो को सकेत दिया, जिसके परिणामस्वरूप जोहरा हाथी के हौदे से घसीटकर उतारी गई और उसे जूतियो ही-जूतियो पीटा गया।

इसके बाद निजाम को चिन्ता भी पडी। जोहरा या कोई भी हो, पर उस

समय तो लाल कुवर, बादशाह की चहेती की चहेती थी और बादशाह यो चाहे कुछ भी हो परन्तु अपने दरबार के किसी भी रईस का मान-मदन तो कर ही सकता था। यो तो निज़ाम-उल-मुल्क तथा वज़ीर-उल-मुल्क म आपसी मन-मुटाव था, पर इस बात मे दोना ही सहमत थे कि इस घटना के लिए बादशाह लाल कुँवर के आग्रह पर ज़ोहरा का पक्ष-समथन कदापि न कर पाए। ये दोनो स्त्रिया यदि निज़ाम को दण्ड दिलवाने मे सफल हो जाएँगी तो नगर मे फिर किसी भी रईस की अबारू न बचने पाएगी। वज़ीर ने तुरन्त ही बादशाह को पूरा विवरण लिखकर अन्त मे यह सूचना भी दे दी कि यदि बादशाह निज़ाम को दण्डित करेंगे तो वज़ीर निज़ाम का साथ देगा। वज़ीर का पत्र बादशाह की सेवा मे ठीक समय पर पहुँचा। उसी समय ज़ोहरा सिर के बाल खोले उन पर राख, धूल डालकर दोनो हाथो से छाती कूटती हुई महलो मे पहुँची। लाल कुँवर ने अपनी सहेली का जब यह हाल देखा और बाते सुनी तो आगबबूला हो उठी। दोना मिलकर बादशाह के पास पहुँची। ज़ोहरा ने बडे-बडे टेसुवे बहाए, लाल कुवर ने बादशाह को तरह-तरह से उभारने का जतन किया, पर वज़ीर की धमकी के आगे उन दाना का काम न बन सका।

अग्रेज़ो राज की भारतीय रियासतो मे रडियो और रखैला ने अपने पिया के ज़ोम मे बडे-बडे उत्पात किये भी है और भोगे भी हैं। महर्षि दयानन्द को काच का चूरा पिलाकर मारन वाली भी एक रियासती वेश्या ही थी। श्री के० एल० गॉबा की दो पुस्तको 'हिज़ हाईनेस' और 'फेमस ट्रायल्स' मे उनके अनक किस्से लिखे हैं। उत्सुक पाठक चाह तो उन्हे पढ सकते हैं। दुर्भाग्यवश इस समय मेरे पास व पुस्तकें नही, फिर भी एक मुमताज़ बेगम का किस्सा कुछ कुछ याद आ रहा है। मुमताज़ बेगम शायद लाहौर की एक नाचन वाली थी। अपनी उठती उमर के साथ ही उसने न जाने कितने अमीरो के दिल उजाडे और होते-करते किसी हिज़ हाइनेस महाराजा की प्राण-प्रिया बन गई। मुमताज़ बेगम की उँगलिया के इशारे पर महाराज नाचते थे। महाराज ने उसे लाखा रुपये के हीरे-जवाहरात दिये। शायद मुमताज बेगम के अद्वितीय प्रभाव के कारण ही रियासत मे उससे जलने वाले भी पैदा हो गए थे। महलो की चाल-ढाल देखते हुए अपनी कमाई और जान बचाने लिए वह और उसके साथी किसी तरकीब से रातो-रात उस रियासत से भाग निकले। इससे महाराजा साहब का बडी बेचैनी हुई। अवसर देखकर मुमताज़ बेगम के विरोधियो ने कान भरे। महाराजा साहब का हुक्म हुआ कि मुमताज़ बेगम को पकडकर फिर रियासत मे लाने के लिए कोई कीमत और कोई

उपाय न उठा रखा जाए। बम्बई मे मुमताज़ बेगम का पता मिला। और एक दिन, दिन-दहाड़ ही बम्बई की एक मोड-भरी सडक पर महाराजा साहब के गुण्डा ने मुमताज बेगम की गाडी घेर ली, कहा-सुनी, छीना-झपटी, चीख-पुकार मची और मुमताज़ बेगम की हत्या हो गई। महाराजा साहब को अपने तख्त से भी हाथ धोना पडा।

शाही नवाबी के पतन काल से होने चले आते विलासिता के ताण्डव के कारण गदर के बाद वाले नई चेतना के भारत ने वेश्याओ के विरुद्ध आवाज उठायी। प्रतिक्रिया म वेश्या-जीवन की करुणा भी आगे चलकर उभरी। भारतेन्दु से लेकर सरशार, कौशिक और उग्र तक ने सुधारक के रूप मे वेश्यागामिता के विरुद्ध आवाज़ उठायी है। उन्नीसवी शताब्दी क अतिम और बीसवी के प्रथम तीन दशका मे *नया सत्ताधारी अग्रेज़ी पढ़ा-लिखा मिडल क्लास बाबू अपनी* घर-घुस्सू फूहड औरत से ऊबकर मेमो जैसी विलायती सगिनियो के अभाव मे वेश्यागामी बना। शादी ब्याह के अवसरो पर घरेलू औरता द्वारा गाए जाने वाले ढोलक-गीतो म सैयाँ से रडी नटिनी के यहाँ न जाने की वडी-बडी प्रार्थनाएँ की गई हैं। रडी घरेलू औरता का काल थी। इसीलिए सन् '२१ के राष्ट्रीय आदोलन के पश्चात् वेश्या-सग और महफिलो का चलन उठ गया।

इसके बाद तो पढने-लिखने के बहाने घरलू लडकिया परदे के बाहर आने लगी थी, युवको का ध्यान उस ओर बँटने लगा और होते-करते आज यह दिन आया कि समाज को वेश्या की आवश्यकता ही न रही।

●

* दिसम्बर की कयामत
* और जनवरी की महफिल

दिसम्बर '५८ की रात रातवालियों के बाजार मे कयामत बनकर आई। उस दिन वेश्या-उन्मूलन के महान् सामाजिक उद्देश्य से आज्ञा-प्रेरित लखनऊ की पुलिस ने रूपजीवाओं के हाट पर छापा मारा। रात मे दो बजे थे, कुत्ता, चोर-उचक्का और पुलिस वालो की छिपी-छिपी सरगरमियो को छोडकर नगर की सडको पर सन्नाटा था। कही अपने नसीब के कांटो पर और कही गुलाब-सेज बिछाये हुए बाजार की परियाँ दुख सुख की नींद सो रही थी। उनके घर वाले भी निश्चिन्त नींद मे थे। अचानक चौक के बाजार से परियो की गलियाँ घरकर चारो ओर से पुलिस की सीटियाँ बजने लगी। सन्नाटे मे आतक की गूंज भर गई। पुलिसमैनो के बूटो की भारी खट-खट गलियो को रौंदने लगी। तवायफो के घरो के दरवाजो पर जाँच के लिए थापा-पर थापें पडने लगी। सोते हुए लोगो की नींद उचटी, चौंककर लोग-बाग हगामे का कारण जानने के लिए बेचैन हो उठे और आनन-फानन ही छापे की खबर हवा के साथ-साथ हर साँस मे होका बनकर समा गई। दिलरुबाओ के दिलो की धडकनें बढ गई।

द्वारे-द्वारे दस्तक पड रही थी, गली-गली मे लाल पगडी का दौर दौरा था। अपने को गिरफ्तारी से बचाने के लिए तवायफे हडकम्प मचाने लगी। डेरेदारो के घरो में तवायफ लडकियो को तुरत-फुरत बुरका उढाकर परदे वाले घरो में भेजने की घबराहट-भरी तरकीबें होने लगी। कितने ही घरो मे पुलिस वाले सामने के दरवाजो से घुस रहे थे और तवायफे पिछवाडे के दरवाजो से बाहर भाग रही थी, मगर गलियो मे भी उनके जमदूत खडे थे। आशिको के दिलो और जेबो को घेरनेवालियाँ खुद-ब-खुद पुलिस के घेरे मे जा पडती थीं।

इस रात ने रात के बाजार को कुछ दिनो के लिए एकदम उजाड दिया। तवायफे अच्छी या बुरी, चाहे जैसी हो, मगर हैं आखिरकार औरते ही। डर की हलचल मे न जाने कितनी ही बेहोश हुई, कितनो के होश हिरा गए। हिस्टीरिया की-सी हाय-हाय और खुदा के नाम की गुहारो ने रात के सन्नाटे मे आग लगा

दी। कितनी ही पुलिस की टका मे मर-मरकर हवालात गईं और कितनियों पर क्या-क्या गुजरी इसका हिसाब नही।

दूसरे दिन अखबारों में छपी हुई खबरों से शहर में हर तरफ हर जबान पर विचार-भरी, मज़ाक-भरी, रसीली बातों का जाल बिछ गया। एक ओर जहां इस पेशे के खत्म किये जाने पर मुझे हार्दिक संतोष हुआ। वहीं उन औरतों के लिए मन-ही मन तकलीफ हुई जो कि रात मे गई होंगी। दाव न लगाते हुए भी मैं जानता हूँ कि पुलिस वाले ऐसे अवसरों पर क्या-क्या अत्याचार कर जाते हैं। एक दूसरी चिंता यह भी थी कि सरकार आखिर इनका करेगी क्या। महिला आश्रमों और सेवा-सदनों के अन्दर की हकीकत मैं खूब जानता हूँ। मैं सोचता था, कुछ मित्रों से कहा भी, कि इन दुश्चरित्रा माने जाने वाली पण्य-भागाङ्गनाओं को यदि उनकी फीस न देकर भोग करने वाले बिगडे-दिल समाज-सुधारक अप्सरा-मानहृता से निबटना पडेगा तो उनके मन मे सच्चरित्रता और नैतिकता का कौन-सा रूप जागेगा ? मैं किसी एक को दोषी घोषित करना नहीं चाहता, पर यह समय अद्भुत है, इसमें सब कुछ होता रहता है। खैर वे चिन्ताएँ तो जैसे आज के जमाने की और सब योजनाओं की सक्रिय-निष्क्रियता पर जागती-सोती रहती हैं, वैसे ही मन के रोजनामचे में समा गईं। बौद्धिक रूप से यह सन्तोष ही मन मे प्रधान रहा कि अब नई मानव सभ्यता हर जगह अपने उषा-काल का पूर्वाभास फैलाने लगी है, घनी आपत्ति में भी वही गति हो रही है—स्वस्थ गति हो रही है।

छापे की घटना के कुछ दिनों बाद ही, शायद २६ जनवरी के आस-पास लखनऊ की नामी गानेवालियों ने एक बड़ी सार्वजनिक महफ़िल की। सरकार ने छापे के बाद तभी नाच-मुजरा करने की छूट दी थी। उसकी खुशी में 'तवायफ़' शब्द का टीका लगाए संगीत-कलाकारों ने लखनऊ की जनता को संगीत की दावत दी थी। वह महफ़िल सदा याद रहेगी। शाम को एक पत्रकार मित्र का फोन आया। उन्होंने उसी दिन थोड़ी देर बाद होने वाली इस महफ़िल की कुछ विशेष जानकारी मुझसे चाही। सोचा होगा कि चौक निवासी होने के कारण शायद मुझे उसके सम्बन्ध मे मालूम होगा। खैर पत्रकार मित्र को तो हमने मीठी चुटकियां में टाल दिया मगर जी में आई कि यार इस महफ़िल को तो जरूर देखना चाहिए। अपने उपन्यास-लेखन के पेशे को देखते हुए मुझमे एक अच्छाई यह है कि मन-मौज पर चढ़कर मैं किसी भी वातावरण में प्राय बेधड़क प्रवेश कर जाता हूँ। प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा ऐसे अवसरों पर मेरे मन-

मौज मे आदे प्राय बहुत ही कम आ पाती है। एक मित्र से कहा कि चलो। वे बोले, तुम्हारी तो मति घुल पुँछ गई है। भला ऐसे मजमे मे जाकर खड़े होंगे तो लोग क्या कहेंगे ? मैंने कहा, "एक तो जानने वाले अधिक मिलेंगे नही, दूसरे यदि मिल भी गए तो अधिक-से-अधिक यही कह लेंगे कि नागर साहब मुफलिस तमाशबीन हैं, मुफ्त का गाना सुनने चले आए। इससे मेरी इज्जत भला क्या घट सकती है। चलो, महफ़िल देखी जाए। बरसो से नृत्य-सगीत की कान्फ्रेंसें हो बहुत देखी-सुनी हैं, तवायफो की महफ़िलें देखने-सुनने को नही मिली।" मैं घसीटकर अपने मित्र को भी ले गया।

जाडे की रात थी। चौक अकबरी दरवाजे के पास इस महफिल का प्रबन्ध किया गया था। बडी रौनक थी, झाड-फानूस, रगीन रोशनियो की झालरें, मकरी टाँका की चमक-दमक, बडा-बडी बातें, राग-रग और चुहलबाजी के तमाशे, भीड म जहाँ-तहाँ देख-सुन पडते थे। पान-सिगरेट और मूगफली वाले भी सौदा बचने के साथ ही-साथ रसबतियाव मे मग्न नजर आते थे। मैंने अपने मित्र से कहा कि देखो, वेश्या नाम का जादू अब भी इसान के दिल को किस तरह बाँधता है। लोग-बाग इधर-उधर जोश के साथ वेश्या सम्बन्धी सरकारी नीति की निन्दा कर रहे थे। एसे तर्कों के जवाब म दूसरे तर्क भी जोश के साथ आ रहे थे—अजी साहब जुल्म है, सरासर जुल्म! सरकार पेशा खत्म कर देगी तो भला ये बेचारियाँ खाएँगी क्या ? अजी मैं तो दूसरी बात कहता हूँ, सरकार इन रडियो को तो खत्म कर सकती है मगर रडी पेरा क्योंकर खत्म कर सकती है ? हाँ, अब तो भैया घर-घर मे रडियाँ हो गई हैं। अजी होगी आपके घर रडियाँ, शराफत दुनिया से उठ नही गई जनाब। शरीफ औरत लाख गिर जाएगी मगर उसका चलन कुछ और ही होगा। अजी इसीलिए अर्ज करता हूँ कि शराफत के उसूल पर अगर दुनिया को चलना है तो रडियाँ सरकार को कायम रखनी ही होंगी वरना भले घरो का जो चलन इस वक्त बिगड रहा है वह फिर सम्हाले नही सम्हलेगा। अजी मैं तो कहता हूँ कि अग्रेजों की पढाई-लिखाई ने जमाने को ही बिगाड दिया है। और जब सभी बिगड गए है तो रडियो को ही क्यो सुधारा जा रहा है ? तरह-तरह की बातें विचारो का फैलाव मेरे मन को देने लगी। उस सँकरी-सी जगह के ठसाठस मजमे मे हुजूम से ठेलमठेल करते आगे बढने मे मुझे बडी उमग आ रही थी। ऐन महफ़िल के मण्डप मे हम लोग जाकर बैठना नही चाहते थे। भीड मे धँसकर ही दूर से तमाशा देखना हमारा इष्ट था, लेकिन यह भीड आम तौर पर लफगी जनता की ही थी। मेरे मित्र मुझको बार-

बार कोसते थे और मुझे सैकड़ों चाहत-भरी नजरों, रस की उछलती आहों, वाहवाहों, यारों की उन फुस-फुस स्वरों की रसीली बातों का मज़ा आ रहा था जो महफिल में बैठी आती-जाती, इन्तज़ाम करने में दौड़ती-भागती, दुपट्टे गिराती-सम्हालती तवायफजादियों के सम्बन्ध में हो रही थीं। मैं तो बहुत जल्द चला आया था, मगर सुना कि महफिल खूब जमी, नोटों, रुपयों और रेजगारी और मूंगफलियों की गाने-नाचने वालियों पर खूब बरसात हुई।

जितनी देर रहा, मजमे-महफिल का राग-रंग देखा, उतनी देर में मन के कई रूप बने-बिगड़े। पहले तो उमंग में तमाशा देखा किया, फिर तवायफों की स्पीचों का एक प्रभाव और साथ ही जनता के सकाम उद्गारों, फ़ोहश बातों का दूसरा प्रभाव मिलकर मेरे सामने बरसों पहले की, वहां से लगभग डेढ़ फर्लांग आगे की गली के एक खण्डहर मकान में टाट के परदों वाले कमरे में ठंडे फर्श पर पड़ी हुई लाश उभार लाए, मन में बदेमुनीर का मुरदा बोलने लगा, लूलू की माँ का वेश्या बनना याद आया, बहुत कुछ याद आया, फिर मन उखड़ गया। मैं चला आया। मन फिर विचारों में रम गया।

उस भीड़ में एक ने खूब कहा था कि सरकार इन रंडियों को खत्म कर सकती है मगर रंडी-पेशा कैसे खत्म करेगी?

अब दुनिया-भर में हर जगह नागरिक जीवन की मान्यताएँ बदल गई हैं। प्रेम की परिभाषा भी कुछ और ही हो गई है। सामाजिक रूप में स्त्री-पुरुषों के मिलने-जुलने में अब पुरानी बाधाएँ आड़े नहीं आतीं। पुरानी कहावत 'हंसी तो फंसी' अब निकम्मी हो गई है। युवक-युवतियां साथ-साथ यूनिवर्सिटियों में शिक्षा पाते हैं, दफ्तरों, वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं, अस्पतालों और सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं में साथ-साथ काम करते हैं, खेलों और तैराकी की बड़ी-बड़ी प्रतियोगिताओं में साथ-साथ भाग लेते हैं। घरेलू स्त्री इस नये युग में पुरुष की बाहरी दुनिया में भी उसका साथ देती है। इसलिए पुरुष समाज को अब स्त्रियों के दो वर्गों की आवश्यकता नहीं रही।

इस महान् सामाजिक चेतना के परिवर्तन का आदि रूप पिछली सहस्राब्दी के यूरोपीय साहित्य में देखने को मिलता है। वर्षों पहले 'वुमन' नाम का तीन विशाल खंडों वाला एक अमरीकन ग्रन्थ मेरे देखने में आया था। उसके एक या दो भागों में विश्व-नारी का इतिहास था और बाकी अंश एलोपैथी की डॉक्टरी से सम्बन्धित था। इसमें मैंने पुराने ज़माने की उन धातु की कमरपेटियों के फोटो-ग्राफ देखे थे जो यूरोपीय सामन्त घर से बाहर जाने पर अपनी पत्नियों को पहना-

कर उन पर ताला और मुहर जड जाते थे । पतिया के इन अत्याचारो ने पत्निया में स्वाभाविक रूप से विद्रोह किया इधर विलासी पुरुपो को इस विद्रोह के फल-स्वरूप गणिकाओ और रखैलो के अलावा अपनी विलास-साधना के लिए नई-नई प्रेमिकाएँ मिलने लगी। बाल्जक, एमिली ज़ोला, मोपासा आदि के साहित्य मे हमे ऐसे अनक मार्मिक चित्र मिलते हैं । एक हवा ही चल गई कि सभ्रात घरो की औरतें अपन पतियो की आखो मे धूल झोक्कर अपने प्रेमियो को मजती थी। पतियो को 'क्काल्ड' (Cuckold) अथात् कुलटा पति की पदवी से विभूपित करा मे उनकी पत्निया का एक छिपा हुआ मज़ा मिलता था । मरदा को हर नये ककोल्ड' के पैदा होने पर घृणा-मरी हँसी-हँसन का अवसर प्राप्त होता था । ईर्ष्यालु पतियो की हँसी उडायी जाती थी । रेस्टोरेशन' अथात् समुत्थान-काल के अग्रेजी साहित्य में विलियम वाइशर्ले (William Wycherley) के प्रसिद्ध नाटक 'द कटीवाइफ' (सन् १६७२ ई०), जॉन वबग के नाटक 'द प्रोवोक्ड वाइफ' (सन् १६६७ ई०) मे हमे पतियो को ककोल्ड बनाने के नुस्खे मिलते है । अठारहवी शताब्दी मे इटली के सुप्रसिद्ध आवारा साहित्य कॅसानोवा ने न जाने कितने पतियो को ककोल्ड बनाया । यह सब देखकर ऐसा लगता है कि तत्कालीन यूरोपीय सम्यता 'ककोल्डम्' का नारा उठाये हुए थी । ऐगेल्स की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'द ओरिजिन आफ द फैमिली' में लिखा है कि पूँजीवाद के उदय के साथ-ही-साथ स्त्री-पुरुपो के बीच मुक्त प्रेम की एक नई भावना-धारा का उदय हुआ । एक-दूसरे का 'ककाल्ड' बनाने के जाम-मरे सामन्ती-मरे फैशन ने भद्र महिलाओ का धार्मिक सस्कार-भरा पुराना नैतिक त तुजाल कमज़ार कर दिया था । स्त्रियो मे पुरुपो से बराबरी करने की होड जागी और पूजीवादी नई सम्यता के उदय-काल मे अपने पुरुपा का ककोल्ड बनाने की पापभरी चेतना का त्याग कर अपने नये नाते को मुक्त-पवित्र प्रेम कहकर बखाना । यूरोप का भद्र-समाज नई चेतना के स्त्री-पुरुपो को जन्म देने लगा । हमारे देश के भद्र समाज मे यह परिवतन उन्नीसवी-बीसवी शताब्दी के साथ-साथ क्रमश आरम्भ हुआ । इस काल के बॅगला साहित्य मे बाबू बीबा विलास,' 'मडेल भगिनी' उपन्यास और सती कि कलकिनी' जैस नाटक नये भार-तीय समाज की हलचल का पता हम देते हैं । सन् १८७५ ई० मे प्रिंस आफ वेल्स भारत आये । कलकत्ता के सुप्रसिद्ध वकील और बगाल लेजिस्लेटिव कौसिल के सदस्य बाबू जगदानन्द मुखर्जी न अपनी ठकुरसुहाती के महाप्रसाद स्वरूप प्रिंस आफ वेल्स (बाद मे सातवें एडवड) को अपने घर म एक दिन अतिथि बनाने का परम सौभाग्य पाया । सबस बडी बात यह हुई कि उन्हे घर के जनाने भाग मे

भी ले जाया गया। प्रिंस ऑफ़ वेल्स के साथ जो विलायती लेडियाँ बाबू जगदानन्द मुखर्जी के यहाँ गयी थी वे बाहर मरदाने मे ही रह गइ और शाहज़ादा-ए-आलम अकेले श्रीमती जगदानन्द मुखर्जी के हाथो मूल्यावान भेंटें ग्रहण करने के लिए अन्दर चले गए। इससे पहले कोई अंग्रेज हिन्दू घर के जनाने मे नही गया था, किसी भी भद्र महिला से उसका साक्षात्कार नही हुआ था। इस घटना के परिणामस्वरूप कलकत्ता के भारतीय समाज मे तो हलचल मची ही, अंग्रेज समाज म भी बडा भूकम्प आया। तत्कालीन वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक के इस घटना को लेकर विरोध मे त्याग-पत्र देने की बात भी अफवाहो मे गरमायी थी। डा० हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त-लिखित 'द इंडियन स्टेज' के दूसरे भाग म एक नाटक के सिलसिले मे इस घटना का उल्लेख हुआ है। बहरहाल हम मान ले कि इसी तिथि से भारतीय समाज म वह अंग्रेजी हलचल आरम्भ हुई, जिसके कारण आज भारतीय स्त्री-पुरुष सहज भाव से बाते करते हैं। हमारे यहाँ भी हज़ारो प्रेम-काण्ड और सैकडो प्रेम-विवाह अब तक हो चुके है। फिल्म मे मिस कज्जन और मास्टर निसार की जगह मिस्टर पृथ्वीराज कपूर बी० ए० और मिसेज़ लीला चिटणीस बी० ए० का अवतरण हुआ। यो हर क्षेत्र म नये युग का अवतरण हुआ। वेश्या पत्नी-लिखी भारतीय घरेलू लडकियो से हर क्षेत्र मे मार खाने लगी। पढी-लिखी लडकी नर्स, अध्यापिका, स्टेनोग्राफर, फिल्म-अभिनेत्री, नर्तकी, गायिका, तैराक, खिलाडिन, अफसर, वैज्ञानिक, डाक्टर और वकील बनकर वेश्या के गुणो की सकुचित सीमाओ को बहुत पीछे छोडकर अब पढ़े-लिखे लडको की बराबरी मे आ गई है। तब फिर यहाँ भी वेश्या-सस्था का अन्त क्यो न हो? मुक्त प्रेम के वातावरण मे वेश्या स्वाभाविक रूप से अनावश्यक हो गई है। उस दिन महफिल मे सुनी हुई मोड की वह बात एक प्रकार से ठीक ही है कि सरकार इन रडियो को खत्म कर सकती है मगर रडी पेशा नही खत्म कर सकती। हो सकता है कि मानव सभ्यता के किसी अगले विकास क्रम मे रडी-पेशा और व्यभिचार-जैसे शब्द निरर्थक हो जाएँ। नारी-पुरुष मिलन म किसी प्रकार की पाप-चेतना का आना भी बन्द हो जाए। बहरहाल इन बातों पर अभी विचार नही करूँगा, अभी तो इन उजडती वेश्याओ की समस्या मे ही मन उलझा हुआ है।

हर महीने के प्रथम पखवारे मे ये लोग जुटाती हैं। जब कम पड जाता है तो इस काम के प्रति सहानुभूति रखने वाली कुछ धनी महिलाएँ आगे बढकर बिगडी स्थिति को सम्हाल देती हैं। पर इन लोगो को लग रहा था कि कोरे दान-चन्दे से ही काम नही चल सकता, 'महिला उद्योग केन्द्र' मे कुछ और भी उद्योग करना चाहिए। निधनो की कक्षा चलाने के लिए सगीत, नृत्य और चित्रकला सिखाने की कक्षाएँ खोलने का इन्होने निश्चय किया। उनमे समुचित फ़ीस रखकर नई कक्षाओ की अध्यापिकाओ का वेतन चुकता करने के बाद भी कुछ मुनाफा बचाकर खर्च सम्हालने की योजना इन्होने बनायी। चित्रकला को छोडकर बाकी दोनो कक्षाओ के लिए इन्हें छात्राओ की भीड मिली। उसी समय गायन-कला-अध्यापिका बनने के लिए एक स्त्री अपना आवेदन पत्र लेकर स्कूल मे पहुँची। मालती से बातें हुइ, उसने शान्ति के पास भेज दिया। शान्ति प्रतिमा का दाहिना हाथ है, उनकी अनुपस्थिति मे वही सब-कुछ देखती-सम्हालती है, पर यह एक ऐसी स्त्री का आवेदन-पत्र था जिसे नियुक्त करने मे वह कोई निणय लेने से सहम गई। "बा से पूछकर जवाब दूँगी" कहकर शान्ति ने उस स्त्री को तो विदा किया और दौडी हुई हमारे घर आयी। प्रतिमा भी सुनकर एकाएक कोई निर्णय न ले सकी। दोनो मेरे पास आयी।

एक तवायफ वर्ग की स्त्री यह आवेदन-पत्र लेकर आयी थी। उसने अपने आवेदन-पत्र मे तो नही लिखा था, पर शान्ति से सब कुछ स्पष्ट कह दिया था। उसने कहा कि *छापे के बाद इस पेशे मे रहना अब बहुत ही कठिन हो गया है*, मेरा जी भी अब इस काम से पक गया है, अपना जीवन बदलना चाहती हूँ। फिलहाल एक आदमी की पाबन्दी म हूँ, मगर वह बहुत रईस नही। मन मिल गया है इसलिए खर्च निभा देते हैं, मगर मैं भी अब नाच-मुजरा छोडकर नई जिन्दगी मे आना चाहती हूँ। ग्रामोफोन मे मेरे रकार्ड भरे जाते हैं, पहले रडियो मे भी प्रोग्राम मिलता था, लकिन अब चूंकि वहाँ तवायफो की मुमानियत हो गई है इसलिए प्रोग्राम नही मिलते। गाना सुनने वाले अब बहुत कम आते हैं। आप अगर मुझे अपने यहाँ गाना सिखाने का मौका दें तो मैं अपनी तरफ से कोई शिकायत नही आने दूँगी। मैं इज्जतदार हूँ, डेरेदार कौम की तवायफ हूँ। मैं अपनी जिम्मेदारी को अगर न निभा पाऊँ तो मुझे निकाल दीजिएगा। मगर मुझे एक मौका दीजिए, मैं नई जिन्दगी म आना चाहती हूँ।

सारी बात सुनकर मैंने प्रतिमा और शान्ति स पूछा कि तुम लोगो की अपनी क्या राय है? शान्ति बोली कि मौका तो देना ही चाहिए। प्रतिमा ने

भी कहा कि मेरी भी यही राय है। जब इन वेश्याओं को एक काम से निकाला जाएगा तो दूसरा काम दिया भी जाएगा।

मैंने कहा, "सोच लो, पीछे कुछ नारी-चर्चा हुई तो क्या करोगी ?"

प्रतिभा बोली, "एक तो हमें अपनी तरफ से यह ढोल नहीं पीटना कि तवायफ हैं। कोई पूछेगा तो बतला देंगे और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि सब-कुछ सिखाने वालों पर निर्भर होता है। अगर इस औरत में लड़कियों से अपना आदर कराने और सिखलाने की योग्यता होगी तो वह आप ही जम जाएगी, नहीं तो हम हटा देंगे। उसे मौका जरूर देना चाहिए।"

मेरा मन इन दोनों स्त्रियों के लिए श्रद्धा से झुक गया। साफिया बेगम महिला उद्योग केंद्र की गायन अध्यापिका हो गई और आज तक वह बहन अपने वेतन के सिक्का से अधिक समय देकर अध्यापिका-पद के संयम और मर्यादा को अच्छी तरह से निबाहते हुए काम कर रही है।

फिर कुछ एक ऐसी ही स्त्रियाँ सीखने आयीं। मैंने देखा कि मेरे इच्छित काम करने का अवसर आ गया है। मैंने पहले तो पत्नी द्वारा ही इन स्त्रियों से यह पुछवाया कि मुझे इंटरव्यू लेने में इन्हें किसी प्रकार की आपत्ति तो नहीं है। उन्होंने खुशी से सहयोग देने का वचन दिया।

१६ अगस्त १९५६ ई० के दिन लखनऊ की डेरेदार तवायफों की हाल ही में रजिस्टर्ड यूनियन की अध्यक्षा और यहां की पुरानी प्रसिद्ध नर्तकी मुनीरबाई प्रसिद्ध गायिकाएं अल्लाहरक्खी बाई और शमीमबानो जैसी लखपती तवायफों के साथ चार-पांच अन्य वृद्धाएँ भी मेरे यहाँ आयीं। उन दिनों दूसरे छापे की अफवाह उड़ रही थी। दिसम्बर '५८ वाली कयामत में यद्यपि किसी भी प्रतिष्ठित गायिका, नर्तकी अथवा परम्परागत डेरेदार वेश्या के यहां छापा नहीं पड़ा था फिर भी मानसिक भूडोलों से वे सब-की-सब बड़ी अस्त-व्यस्त हो गई थीं। अब दूसरे छापे की अफवाहों ने उन्हें फिर से भय और चिंताओं के घोर रौरव नरक में डाल दिया था। उनका खाना-सोना हराम हो गया था। एक बड़ी चुभती हुई बात भी सुनने को मिली जिससे मैं तिलमिला उठा। किसी ने कहा, हमारा कोई तरफदार नहीं। हमारे लड़कों में डाक्टर, हकीम, मुसन्निफ, शायर तहसीलदार, डिप्टी कलक्टर तक हैं लड़कियों में भी कई एम० ए० बी० ए० मास्टरनियाँ प्रिंसिपल तक हैं, मगर वे हमारी तरफदारी नहीं कर सकतीं, क्योंकि तवायफ की औलाद कहलाकर वे बेआबरू हो जाएँगी। हमारे सरपरस्तों में भी बड़े-बड़े रईस और ओहदेदार हैं, मगर वे भी खुले आम हमारा साथ देकर बद-

नाम नहीं होना चाहते। फिर हम किसके पास जाएँ, कौन हमारा दुख बँटाएगा ?"

मैंने स्थानीय हिन्दी-उर्दू के दैनिक पत्र सम्पादकों की सेवा में इन बे-आबरू-आबरूदार औरतों की विपदा लिखकर भेज दी। सम्पादकों ने सहयोग दिया, इन बेचारियों को बड़ा सहारा मिल गया।



* कुट्टनीमतम्

नसीमआरा

२१ अगस्त को नसीमआरा बाई, शमीमबानो, दिलरुबाबाई नवाबजान बाई और मुन्नीबाई आयी। इन सबकी उम्रें पचास से साठ-पैंसठ वर्ष तक की थी। वे सब की-सब एक साथ अपने-अपने जी के गुबार निकालने लगी। किसी एक से कुछ पूछो तब सब-की-सब जवाब देने के लिए तैयार हो जाती थी। छापे की अफवाहो से घबरायी हुई स्त्रियो की इस अकुलाहट को तो मैं पहचान सका पर इससे मेरी बात बनती न थी। मैंने क्रम से हरएक के नाम पूछे। नाम लिखाने मे हरएक ने अपने नाम के साथ जुडे हुए 'बाई' शब्द को त्यागकर बेगम की उपाधि धारण करने की उत्सुकता दिखाई। जब एक ने सबके नाम बाई' शब्द जोडकर बतलाए तो दूसरी ने कहा, "मैं बीस बरस से निकाह किये बैठी हू, मेरा बाजार से कोई वास्ता नही रहा, इसलिए मेरे नाम के साथ बेगम जोडने म क्या हर्ज है "

इस पर पहली ने कहा, 'वाह वास्ता कैसे नही, अरे तुम न सही तुम्हारी मानजी तो इसी पेशे मे है। फिर अपनी कौम कोई थोडे ही छोड सकता है।"

"अरे हाँ-हाँ, यह तो खैर ठाक ही है।"

"ठीक है तो फिर हम अपने सही-सही नाम क्यो न लिखवाएँ ? आप नागर साहब इसी तरह से लिखिए।"

इसके बाद मैंने श्रीमती नसीमआरा से प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिए। इनकी आयु चौवन-पचपन के लगभग होगी, रग साँवला, नाक नक्शा ठीक-ठीक लेकिन बातचीत मे सफाई और अदब कायदा भी अच्छा था। मैंने जब चलत प्रसग के क्रम मे रडी, तवायफ, बाई और जान शब्दो के सूत्र उठाए तो नसीमआरा बोली 'हाँ हुजूर, हमारे लिए य अल्फाज इस वक्त फासी के फद बन गए हैं, वरना हम वा नही हैं जो कि जलील पेशा करती है। वो काम यहाँ चावल वाली गली म होता है, नौचिया कस्बियाँ करती हैं। हम हुजूर शरीफ हैं, हमारे यहा पुश्त-दर-पुश्त से गाने-बजाने का पेशा होता आया है। हम लाग हर किसा के साथ आपसी मेल-जोल नहीं बढाती कि न जान न-पहचान न बदगी-न सलाम—बस

टके गिने और खसम बन गए। यह काम हमारे यहाँ नही होता, हम लोग डरदार हैं।"

"क्या डेरेदार कोई खास कौम है ?" मैंने पूछा।

"जी हाँ, तवायफो मे सबसे ऊँची कौम है।"

"यानी मुसलमान तवायफो म सबसे ऊची कौम ?"

'जी नही हुजूर, डेरेदारो म हिन्दू-मुसलमान दोनो ही शामिल हैं, फिर भी डेरेदारो मे कई कौमे होती हैं, हमारे गोत और निकास भी होते हैं।"

"आपकी कौम और गोत निकास क्या है ?"

नसीमआरा झिझका, फिर कहा, "हम आपको बतला दें हुजूर मगर आज का जमाना ऐसा है कि जो इधर-उधर से मगायी गई लडकियाँ-औरतें इस पेशे म आती हैं वे अपने को खानदानी साबित करने के लिए घोलाघडी करेंगी।"

बात मेरी समझ मे न आई, इसलिए अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए नसीमआरा ने कहा, 'हमारा गोत निकास जानकर वे अपना गोत-निकास भी यही बतलाया करेंगी फिर हुजूर, हमम और उनमे फक क्या रह जाएगा ?"

उनके भोले भय को बहलाते हुए मैंने कहा, "आज के जमाने में नई लडकियो को अपना प्रेमी पाने के लिये गोत निकास या कुलीनता की जरूरत नही रही।"

'ठीक है हुजूर अब तो आप किसी नई लडकी स पूछें तो वह नहीं बतला सकेगी, चाहे हमारे डेरेदारो की ही क्या न हो। मुझे भी सब नही मालूम, मगर मेरी कौम हुजूर, कचन है गोत गूजर, और निकास मियावाल पजाब है।"

अपनी कचन कौम को नसीमआरा ने इस विनय और अभिमान स बतलाया कि जैसे ऊँचे-ऊचे पहाडो के विजेताओ के बीच म एवरेस्ट विजेता आया हो। मैंने उनसे कहा, 'अपनी कौम-गोत के अलावा और भी कुछ तो याद होंगी ही आपको "

'हाँ-हाँ, क्या नही ? कचन के अलावा हुजूर बक्सरिये, बटेसर, बगरद्दे गौर राधे, और भी बहुत सी कौम होती हैं।"

बक्सरिये, बटेसर, बँगरद्दे शब्दो मे स्थानो के नाम गूज रहे थे। बाँगर अवध क्षेत्र का एक भूखड है इसी प्रकार दूसरे नाम भी स्थल-विशेष स सबद्ध हैं, किन्तु कचन और गौर राधे' नामो की कोई पकड अभी दिमाग म नही आती। शायद आगे चलकर किसी तवायफ द्वारा इस समस्या पर प्रकाश पड

जाए, यह सोचकर मैंने आगे की बात पूछी, "अच्छा, डेरेदारों और कस्बियों की तहज़ीब-तालीम में कोई खास फर्क होता है ?"

"जी हाँ हुज़ूर, बड़ा फर्क होता है। हमारी लड़कियाँ रईसों-शुरफ़ाओं की खिदमत करने के लिए बाकायदा इल्मे-मजलिसी की तालीम पाती हैं। रईसों के बीच में उठना-बैठना कोई मामूली बात नहीं हुआ करती हुज़ूर, ज़रा-सी कोई बात उनको नागवार खातिर हो तो हमारा बेड़ा गर्क हो जाए। हम लोग खानदानी हैं, इसलिए हमें सब बातों का खयाल रखना पड़ता है।"

नसीमआरा बाई बड़े स्वर-सधाव के साथ अपनी बातें मुझे समझा रही थीं। उनका स्वर मानो अपनी बात पर विश्वास भी दिलाना चाहता था और इस तरह समझाना भी चाहता था कि बात का कोई अंग छूट न पाए। उनका बात करने का यह ढंग मुझको, मन को भला लग रहा था। मैंने पूछा, "आप अपनी लड़कियों को क्या-क्या तालीम देती हैं ?"

"वे तमाम बातें, जो उन्हें रईसों की सोहबत में बैठने-उठने काबिल बना सकें। अब से कोई सौ दो सौ बरस पहले तो हुज़ूर हम लोगों के यहाँ यह चलन था कि कोई छोटी उम्र से ही लड़कियों को निशानेबाज़ी, घुड़सवारी, शायरी, नाचना-गाना, सीना-पिरोना, शतरंज-पचीसी वगैरह-वगैरह सिखलाया जाता था। और जब औलाद की तरबीयत-तालीम पूरी हुई तो जिसको जहाँ तक रसाई हुई अपनी लड़की को बढ़ा दिया। वालियानेमुल्क, ताल्लुकेदार, ज़मींदार, इन लोगों के यहाँ महफ़िलों में गवाया फिर लड़की को रईस की नज़र कर दिया। अगर पसंद की, क़बूल फरमाया तो हमारी लड़कियों को जमीन-जायदाद जो जिस हैसियत का रईस हुआ उसी के हिसाब से मिल गई। रईस के पास यह लड़की ताउम्र रहती थी। लड़की के खानदान वालों की तनख्वाहें भी बंध जाती थीं। और रईस के मरने पर उनकी आल औलाद से भी गुज़ारा मिलता था।"

मैंने पूछा, "तो क्या लड़की के साथ साथ उसके तमाम खानदान वाले भी रईस के यहाँ रहने लगते थे ?"

"जी नहीं, सब लोग अपने घर आ जाते थे। लड़की भी आ जाती थी, और जब रईस बुलाता था तो उनकी खिदमत में चली जाती थी। वहाँ रह आती थी, फिर लौट आती थी।"

"और मान लीजिए रईस लड़की की भरी जवानी में ही मर गया ?" मैंने पूछा।

"जी, उस हालत मे तवायफ की उम्र अगर तीस साल की हुई और सरपरस्त मर गया तो फिर तवायफ यवा की तरह ही रहती थी।"

"और रईस की पैदा हुई औलाद क्या उनके यहाँ ही रह जाती थी?"

'जी नही, औलाद हमारे पास ही रहती। उनकी लडकियो का भी हम अपने ही ढग से तालीम देते थे।"

"और अगर अपनी औलाद न हुई तो?"

"उस हालत मे हम अपनी किसी भानजी-भतीजी को गोद म ले लेंगी और उसे तालीम वगैरह देकर तैयार करेंगी।"

"किसी रईस की सरपरस्ती मे रहकर भी क्या आपको दूसरी महफ़िलों मे गाने-बजाने की इजाज़त मिल जाती थी?"

जी हाँ हुज़ूर, गाना-नाचना तो हमारा पेशा है। तवायफ़ चाहे नवाब रामपुर की खिदमत म हो या महाराज ग्वालियर की खिदमत मे हो, मगर किसी महफ़िल म बुलाए जाने पर वह जरूर जाएगी। हमारे तन पर हुज़ूर चाहे लाख रुपये का जेवर क्यो न हो, मगर महफ़िल मे अगर कोई हमे एक रुपया भी देता है तो हम उसे झुक के सलाम करेंगी। हम अपना खानदानी पेशा किसी हालत म नही छोड सकती।"

मैंने कहा, "यह तो आपने पुराना हाल बतलाया, अब क्या चलन है?"

"जी, लडकियो को पढा लिखा के नथ कग्ने का चलन तो ज़माने के साथ ही खत्म हो गया, अब हम लोग अपनी लडकियो को मौजूदा तालीम उर्दू, अग्रेजी, हिन्दी पढाकर नाच-गाना वगैरह सिखाती हैं।"

"और लडको को भी तालीम देती हैं?"

"जी हाँ, पहले तो आम तौर पर लडके हमारे नाच-गाने के फ़न को ही सीखते थे, उसी मे उनकी तरक़्क़ी होती थी।"

"और आज?'

"आज भी हमारे लडके हुज़ूर, कोई सडका पर गुल्ली-डण्डा नही खेलते। हमारे लडको मे डॉक्टर हैं, वकील हैं, तहसीलदार, डिप्टी कलक्टर, हकीम, मुसन्निफ़ और शायर भी हैं। और जो लडके पढ़ने-लिखने मे तेज न हुए उनमे कोई फर्नीचर बनाने का काम करता है, किसी ने बिजली का काम सीख लिया है—ऐसे ही किसी-न-किसी काम मे हमारे लडके लगे हो रहते हैं। और अब तो हुज़ूर, बदले हुए ज़माने को देखकर हमारी बहुत-सी लडकियाँ भी नाच-गाने का पेशा छोड एम० ए, बी० ए० पास कर मास्टरनियाँ हो गई हैं। एक तो प्रिंसि-

पल तक है। मगर बस यही है कि जाहिरा तौर न वे हमे अपनी माँ कह सकते हैं और न हम उन्हे अपने बेटी-बेटे कह सकते हैं, तवायफ की औलाद कहते ही आपकी नजरें उनकी ओर से बदल जाएँगी क्योंकि हमारे अन्दर ता तमाम ऐबा में जरासीम भरे हुए हैं न हुजूर। घर-गिरस्तो की लडकियाँ, औरते परदे की आड मे चाहे जो कुछ करें फिर भी उनकी इज्जत बनी रहेगी, मगर हम जरासीमो का पोट होती हैं यह इसाफ़ है आजकल।"

मैंने आश्वासन दिया, कहा, "बदलते जमाने मे ऐसे उलट फर हो ही जाते हैं, लेकिन कोई समझदार इसान आज भी किसी शरीफ लडकी लडके को तवायफ़ की औलाद होने की वजह से ओछी नजर से नही देखेगा। अच्छा खैर, यह बतलाइए कि मौजूदा जमाने मे जब लडकियों को रईसो की नजर करने का चलन नही रहा तब आप उन्हें किस तरह आबाद करती हैं ?"

"मौजूदा जमाने मे उसूल यह है कि अगर किसी लडकी का खरीदार-तलबगार आता है तो हम यह परख लेते हैं कि यह हमारा साथ देगा या नही। इसके बाद ही हम लडकी को उसकी पाबन्दी मे रखते हैं।"

"लेकिन मान लीजिए कि वह आदमी साथ छोडकर चला जाए ?"

"अगर हमारी-उसकी छुट गई तो हम दूसरे का तब तक इन्तजार करती हैं जब तक कि हमे कोई मानवर साथी न मिल जाए। मतलब यह कि हमारी लडकियाँ एक वक्त मे एक ही की होकर रहती हैं—वह जब तक रखे।"

मैंने कहा, "सुना जाता है कि तवायफे गुण्डो से मगायी हुई लडकियाँ खरीदती हैं। हो सकता है, डेरेदार तवायफें न करती हो, मगर दूसरी तवायफ़ा मे शायद आपने यह चलन देखा हो।"

नसीमआरा बोलीं, "जो हमारा यह इलाका नही, अपना समझा-बूझा नही, क्याकि हमारे यहा लडकियाँ खरीदने का चलन नही, जैसे आपने सुना वैसे हमने भी सुना ही है। लोग लडकियो-औरतो को गावो में आकर अपनी मुहब्बत मे फँसाते हैं या गरीब वाल्दैन को सौ-दो सौ रुपये देकर उससे निकाह कर लेते है। मैं अपने बचपन मे कलकत्ते मे थी, वहा हमारे पडोस मे साहबजान का एक भाई था। वह पजाब, पेशावर जाने कहाँ-कहाँ गाँवा-कस्बो मे जाता था। फुसलाकर या वाल्दैन से सौदा करके बाकायदा निकाह करके कलकत्ते ले आता था और उन्हें कमरे पर बिठाता था। फिर कभी कोई भाग गई तो निकाहनामे के जोर से जहाँ पकड पाता वहीं से खीच लाता। बेवाएँ भी आती हैं।" एक क्षण रुककर फिर अपनी बात को आगे बढाती हुई नसीमआरा बोली "डेरेदार तवा-

यफो म हुजूर शरीफ औरता की-सी आन होती है और इसी वजह से होती है कि उन्हे इज्ज़त से रहना सिखाया जाता है। खरीदी-मगायी हुई औरता म वह आब कहा! मैं आपको एक वाकया सुनाती हूँ—पटन वाली जोहराजान थी, दरअसल थी आगरे की मगर पटना मे रहने लगी था। 'इतना-सा' कद, दुबली-पतली, चपई रग और आखे तो इतनी खूबसूरत कि कोई मुसव्विर भी ऐसी खूबसूरत आखें नही बना सकता। बडे-बडे सेठ, राजा, नवाब उस पर अपनी जानें लुटाते थे, मगर वह करोडो पर ठोकरें मारती थी। गाने म बे-ऐब बडे-बडे गवैयों स मुकाबला करती थी। एक बार एक रियासत में गाने गई। एक तो गाने न झुमाया, दूसरे जोहरा की आँखो ने लहरा दिया। वहाँ के राजा साहब ने अपने सेक्रेटरी से कहा कि महफिल के बाद हमारे कमरे में पहुँचाई जाए। जोहरा से कहा गया। वो वालियेमुल्क और य एक नाचीज़ तवायफ़, इसकी मजाल क्या कि इकार कर सके। मगर जोहरा भी आन वाली थी, चट-से हुजूर की खिदमत मे अपने साथ अपने जोडिय (सफ़रदा) को भी लेती गई। वो निहायत काला बदसूरत था। दरबार से अर्ज किया कि हुजूर, मैं आपके काबिल नही रही, इस जोडिय से मेरा रिश्ता है। ऐसी दबग थी।'

नसीमआरा न इस प्रसग को समाप्त किया, पर अपनी बातो का क्रम जारी रखा। कहने लगी, "हमारे कुछ उसूल हैं। मान लीजिए कि कोई रईस हमारी जान-पहचान का है उसका लडका-भतीजा हमारे यहाँ आये और हमारे लडकी, भतीजी, भानजी से हेल-मेल करना चाहे तो हम उसकी ठुड्डी पर हाथ रखेंगे, कहेंगे कि बेटा तुम फलाँ के बेटे हो, हमारी औलाद हो। इन लडकियो से तुम्हारी तरफ़ और नजर से देखा न जाएगा। इसी तरह हमे मुहल्लेदारी का भी लिहाज रहता है।"

दक्षिण भारत की दवदासियो मे 'वलञ्जापि' पन्थ की कलाकार कुछ छोटी जातियो मे गाने नही जाती। इस सम्बन्ध मे मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, "हमारे यहाँ यह कायदा है कि हम लोग सावलदासी-बढई, लुहार, ऐसी कौमो के लोगो के यहाँ मुजरा करने नही जाते, भले ही वह पैसे वाले क्यो न हो।"

मैंने पूछा, "आपने अपने पास-पडोस मे कभी चकले भी जरूर देखे होंगे?"

'जी हाँ, एक चक्ला, मैं कानपुर मे रहती थी, तब मेरे मकान के पीछे ही था। वहाँ मूलगज मे रोटीवाली गली और मछली मुहाल मे तवायफे रहती थी। हमारा भी वही घर था। आगे का हाता था, उसके बाद शरीफो की बस्ती थी।

तो मेरे मकान के पीछे एक दो-मंजिला इमारत थी—सात-आठ कमरे छोटे-छोटे नीचे, सात-आठ ऊपर। अँगनाई बहुत बडी थी। उस चकले का सरकारी लैसंस था। एक आदमी यहीं लखनऊ का था, वह रोज सुबह उनसे एक दिन का किराया, बिजली का किराया वसूल करता था।''

नसीमआरा बाई के साथ आयी हुई सभी महिलाएँ एक साथ ही कुछ-न-कुछ कहने के लिए व्याकुल थीं। मैं नसीमआरा बाई से कोई बात पूछता तो बाकी चारों वृद्धाएँ भी जवाब देने के लिए मचल उठती थीं। मुझे उन्हें खामोश रखने के लिए बार-बार प्रार्थना करनी पडती थी, लेकिन बाढ़ के पानी को रोक रखना बहुत मुश्किल होता है और जब अपने प्रश्नों की कडी में मैंने दिसम्बर '५८ में पुलिस के छापे की बात उठाई तो पाँचों बाइयों को एक साथ बोलने में किसी भी तरह न रोक सका। असली बातें इसलिए क्रमबद्ध रूप में रखना मुझे कठिन मालूम पड रहा है। बातों के नोट लेते हुए पंच महिलाओं के सामूहिक उद्गार मैंने बिना नाम लिखे ही टाँके थे और इस समय उसी रूप में प्रस्तुत भी कर रहा हूँ।

''अरे साहब कुछ न पूछिए, कयामत आयी थी उस रोज। अजी पैंतीस-पैंतीस बरस की औरतों को नाबालिग कहकर पकड ले गए।''

''चार-चार दिन की बच्चेवालियाँ भी पकडी गईं, बहुएँ पकडी गईं। अरे चौरासी पिचासी बरस की जईफ़ नजीरबाई तक को पकड ले गए। भला बताइए उस बुढ़िया से किसी का क्या बिगड सकता था! अरे ये आपके सामने जो मुन्नी-बाई बैठी हैं, यह भी पन्द्रह दिन हवालात में रह आई हैं। देखिए तो सही, न मुँह में दाँत न पेट में आँत, ये भला अब किसी को क्या रिझायेंगी! और अब हुजूर सुना है कि फिर लिस्टें कचहरी में गई हैं, खबर है कि जल्दी ही छापा पड़ेगा। हमारी तो हालत दिन-रात पतली हो रही है। खाना खात-खात अफ़वाह उड़ी कि पुलिस आ रही है, पुलिस आ रही है—बस इतने से ही हमारे हाल पतले हो जाते हैं। मुँह का निवाला मुँह में ही रहा, जूठे हाथों ही छातियाँ पीटने लगीं, लडकियों-बहुओं को बुर्का उढ़ाओ, परदे वाले घरों में भगाओ—कोई गिरी पड़ती है, कोई हौले के मारे रोती ही चली जाती है। अजी पेशाब तक निकल पडते हैं डर के मारे। भला बतलाइए हम गाने-बजाने वालियाँ हैं, कुछ चावल वाली गली की तो हैं नहीं कि जिनका गन्दा पेशा है या चोर-उचक्कों, डाकुओं, उठाईगीरों का साथ है। उनके कलेजे भी सख्त पत्थर के होते हैं। मगर उनके साथ तो पुलिस ने रिआयत की, उन्हें रात में दो बजे ही छोड दिया

और हमे तबाह कर दिया। अरे हवालात मे नन्हे-नन्हे बच्चे हमारे दूध तक को बिलख गए। दूध की शीशियां तक अन्दर न पहुँचाने दें, कहे कि कहीं इनमे ज़हर न मिला हो, तुम लोग हमे धोखा देने के लिए कहीं ज़हर न खा-पी लो। बडी-बडी मुसीबतो से हाथ-पैर जोडने पर हमारे बच्चों को दूध मिला।

"अच्छा साहब, एक बात हम आप से ही पूछते हैं कि अब ज़माना ही बदल गया। न रईस रहे न ज़मीदार ताल्लुकेदार। सरकार जब हमसे पेशा ही छुड़वाना चाहती है तो हम खुशी से कहते हैं कि यह हो जाए, क्योंकि अब हम खुद ही ज़्यादातर अपनी लडकियां को पेशे की तरफ नहीं लाना चाहते, हम तो खुद ही उनके शादी-ब्याह कर रहे हैं। अपनी ही बिरादरी के लडको मे ब्याह देते हैं क्योंकि शरीफो के लडके तो हमे मिलने से रहे। मगर यह कि जो लडके हमारे पढ-लिखकर भी बेकार हैं उनसे शादी करके भी क्या करेंगी ? सरकार अछूतो के लडको को वजीफा देती है, रिफ्यूजियों को देती है तो हमारे लडको को भी हौसला-अफ़ज़ाई करे।"

मुझे उनकी बातों का तांता तोडकर उन्हे तसल्ली देने के लिए बडा श्रम करना पडा।

भेंटो का क्रम चल पडा। शमीमबानो सबके साथ रोज़ आती थी। प्रतिदिन दो बजे से पाँच-साढ़े पांच बजे तक मैं तीन-चार स्त्रियो से इन्टरव्यू करता था। जिस क्रम से यह कार्य किया उस क्रम को पुस्तक लिखते समय अपनी सुविधा के लिए नहीं मान रहा हूँ। बात यह है कि कई बातो को उनके नाम से प्रकाशित न करने का वचन मैंने इन स्त्रियो को दे रखा है। इसके अलावा कई वेश्याओं के सम्बन्ध मे नोट की हुई कुछ ऐसी अनुभूतियां हैं जो उनके नाम के साथ व्यक्त करके मैं उनके व्यक्तित्व पर चोट पहुँचाऊँगा। किसी को बदनाम करने की मेरी परदा-दर-परदा कोई नीयत नहीं, पर बात कहने की नीयत पक्की है। इसलिए मैंने तय किया कि कुछ को छोडकर बाकी सब स्त्रियो के नाम एक जगह इकट्ठे ही लिख दूँगा और उनके विवरणो का क्रम अलग रखूंगा ताकि विवरण पढ़ते समय कोई यह न जाने कि किस नाम की बाई के साथ क्या जुडा है। इस प्रकार मैं उन स्त्रियो, पाठको और स्वयं अपने प्रति भी झूठा न बनूंगा।

सफदरबाई

भेंट-क्रम में जो पोढ़ी नायिकाएँ आयीं उनमे नसीमआरा के बाद सफदरबाई भी उपयोगी सामग्री दे गई हैं। ये अपनी लडकी के साथ भेंट देने आयी थीं। आयु

पैंसठ छियासठ के लगभग, रग काला, देह सलाख-सी, स्वर कर्कश, आखो की ज्योति मन्द और कपडो से दरिद्रता का बोध होता था।

सफदरबाई की कौम कचन और निकास डलमऊ, जिला रायबरेली है। इन्होने यह भी बतलाया कि कचन सुर्खी (शर्की जौनपुर के) बादशाहो के साथ मुजरई बनकर आये थे।

सफदरबाई अपने अभिभावको के साथ बचपन मे रायबरेली से कानपुर आयी और सन् '३० के हिन्दू-मुस्लिम दगे मे कानपुर छोड लखनऊ मे आकर बस गइ। तब स यही हैं।

मैंने कहा, "सफदरबाई, यह बतलाइए कि आपके बचपन म डेरेदार लडकियो को जैसी नाच-गाने और इल्मे मजलिसी की तालीम मिलती थी क्या आज की डेरेदार लडकियो को वैसी ही तालीम मिलती है ?"

"जी नही, अब वो बात कहाँ।" सफदरबाई कहने लगी, "रुपये म बारह आने भी नही रहा। अब हुजूर न वो उस्ताद है न वो शागिर्द। पहले पाच रुपया महीना और खाना उस्ताद को देते थे, वो सिखाते क्या थे बस दिल निकालकर रख देते थे और अब तो पचास रुपया देकर भी वो बात नही आती, वह हुनर नही मिलता।

मैंने फिर एक अटपटी बात सामने रखी, कहा, "आप लोगो पर एक इल्जाम है। यह कहा जाता है कि अपने नाच-गाने और इल्मे-मजलिसी की सारी खूबिया के साथ आप लोग मरदो को तरह-तरह से लूटने की कोशिश करती है।"

अपना कच्चे-पक्के रूखे बालो वाला सिर खुजलाते हुए सफदरबाई ने मुँह बनाकर अपना कुट्टनीमतम् दिया, 'जी यह बात मेरी समझ मे नही आई।" सफ़दरबाई के इस जवाब के साथ-ही-साथ शमीमबानो तडपकर बोल उठी, "यह इल्जाम गलत है कि हम लोगा से पैसा घसोटते हैं। मान लीजिए हुजूर आप आये और गाने की फरमाइश की। अब हमारा क्या काम रह जाता है—यही न कि आप लोगो को खुश करें। मान लीजिए हम गा रहे हैं—'काहे मारे नजरिया के तीर'—अब इस पर हम जब तक भाव नही बतलाएँगे, एक्टिंग करके नही दिखलाएँगे तो आपका जी क्याकर खुश होगा और आप खुश न हुए तो हमे पैसा ही क्या देंगे। आप आपना जी खुश करने के लिए ही तो हमारे यहा आयेगे न! फिर यह इल्जाम हम पर कैसे लगाया जा सकता है ? कहिए बाजी, मैंने ठीक कहा न ?"

बाजी सफ़दरबाई ने अपनी पसली खुजलाते हुए कर्कश स्वर में कहा, "ठीक है, यही बात है।"

मैं भी सोचने लगा कि बात सही है। इनके यहाँ जो भी जाता है वह कला और सुंदरता का रस ग्रहण करने जाता है। ये रिझाने की दूकान ही लगाती हैं, सदियों से इनका पेशा निश्चित है। जो वश्याएँ दैहिक व्यवसाय करती हैं उनका रिझाने का धंधा ही अलग है, परन्तु गायिकाओं-नर्तकियों के विषय में हमें और ही दृष्टि से सोचना होगा। आधुनिक काल में भी हम जलसों में चाहे शम्भू महाराज का नटवरी कत्थक नृत्य देखें या बाला सरस्वती का भरतनाट्यम, उदयशंकर की मौलिक नृत्य-सृष्टियों का अवलोकन करें या अमलाशंकर के मणिपुर नृत्य का—हम सदा मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं का रसात्मक सत्य ही देखना चाहते हैं और इन कलाकारों की कला-सृष्टि में उसी की प्रशंसा करते हैं, महत्ता भी उसी कलात्मक सत्य की है। यह प्रशंसा और महत्ता सामन्ती युग में इन कलाकारों को दूसरे ही रूप में प्राप्त हुई। धनी सामंत महाजन प्रशंसा को रुपयों से तौल कर दे देते थे, पर महत्ता चूंकि वे केवल अपनी ही मानते थे इसलिए गणिका कलाकार की महत्ता को वे लोग अपनी कामेच्छा की आड़ में करके ही स्वीकार कर पाते थे। वे जिस गणिका के गुणों पर रीझते थे, जिससे अपनी इच्छा-पूर्ति की आशाएँ लगाते थे, उसके प्रति अपनी सत्ता और महत्ता को इस प्रकार अर्पित करते थे कि ग्रहण करने वाली उसे पाकर गौरवान्वित हो, उनके प्रति उपकार मानकर रस-सदय हो। और जब यही क्रम चल पड़े तो वेश्या क्यों न उन्हें अधिकाधिक रिझाकर अधिकाधिक मुनाफ़ा लूटे। इस लूटने में लूट की भावना उतनी नहीं होती जितनी कि सौदे की।

मैंने फिर दूसरी बात उठाई, कहा, "सफ़दरबाई आप यह तो मानती ही होंगी कि आपके पेशे की हालत बहुत गिर गई है।"

"जी हाँ।"

"खैर, आपका तो सवाल ही नहीं उठता, लेकिन आपकी यह लड़की अभी नौजवान है, पूरी उम्र इसके सामने अभी पड़ी है।"

"जी हाँ, सही है।"

मैंने कहा, "ईश्वर करे कि आप लम्बी उम्र पाएं मगर तब भी इस लड़की की उम्र आपसे आगे का ज़माना भी देखेगी।"

"जी हाँ।"

"फिर आप यह क्यो नही सोचती कि अगर आपकी लडकी की शादी हो जाए तो बेहतर होगा।"

"हुजूर, हम सोचें तो सब-कुछ, मगर शादिया भला इतना आसानी से कही हो सकती हैं। वैसे हम अपने लडके-लडकियो की शादिया भी करते हैं, जो जहीन नही होती, कुछ सीख नही पाती, उनकी शादिया तो अपनी कौम मे हम कर देते हैं मगर कौम के बाहर हमारी लडकिया को कौन कबूल करेगा? और यह बात भी है कि अगर इत्तफाक से ऐसी शादिया हो भी जाती हैं तो हमारी लडकियो को बुरा वक्त देखना पडता है। मैं आपसे हाल की हा एक बात बतलाती हूँ। ये जो छापे पडे थे उससे हम लोगो मे घबराहट फैली, बाजार मे इसी घबराहट की वजह से दो लडकिया ने अपने निकाह पढवा लिए। शरीफो के साथ उनके निकाह हुए"

"कैसे हुए?" मैंने पूछा।

उत्तर शमीमबानो ने दिया "पूरा हाल तो अभी हमे नही मालूम हुआ, मगर यो समझ लीजिए कि उनके यहा आने-जाने वालो मे से होंगे। लडकियो की घबराहट देखकर उन्हे जोश आ गया होगा कि लाओ शादी कर ले, सो कर ली। बाद मे वह जोश ठडा पड गया होगा। घरवाले पीछे पडे हो या रिश्तदार दोस्त अहबाब ने बाद मे उनके इस जोश का मजाक उडाया हो, तानाकशी की हो, या उन्हे और किसी तरह से शर्मिन्दा किया हो, जो भी हो बहरसूरत उन शरीफो का जोश ठडा हो गया और वो हमारी इन लडकिया को गले पडा ढोल मान बैठे। सुना है हुजूर, उन्हे बडी-बडी तकलीफें दी गइ और अब उन दोनो लडकियो को तलाक दे दिया गया है। वो फिर से बाजार म आने के लिए कमरे तलाश कर रही हैं। अभी वो आयी नही आएँ तो सच्चा हाल मालूम हो।"

"अरे वह भी मालूम हो ही जाएगा, मगर बन्दापरवर आप ही इसाफ करें कि ऐसी हालत मे हमारी लडकियो मे या हममे भी घबराहट न फैलेगा तो क्या होगा? हम अपनी बच्चियो की शादी आखिर किस भरोसे पर करें? इससे तो अच्छा है कि हम जिस हालत म है उसी मे रह," शमीमबानो बोली।

"सफदरबाई, आपके कितने बेटे-बेटियाँ ह?" मैंने पूछा।

"एक लडकी है और दो लडके। लडके अपने-अपने कामो म लगे हैं और लडकी शुरू स ही एक की सरपरस्ती मे रही मगर अब वह भी छापे के डर से कभी रात म नही आते। किसी दिन जी चाहा तो दिन मे आ जाते हैं। खर्चा देना भी पहले की बनिस्बत कम कर दिया है। क्या करे?"

"लड़की भी कुछ मुजरे वग़ैरह हो जाते हैं ?"

"हाँ, मगर कोई खास आमदनी नहीं है। छापे के बाद लोग हमारे यहाँ आते झिझकते हैं। भला बताइए हम फिर किस तरह अपना पेट भरें ? दिल्ली से *एक आदमी आये थे, वो बतला रहे थे कि वहाँ गानेवालियों को लैसन* मिल गया है और जो हुज़ूर यहाँ भी ऐसा हो जाए तो रोज़-रोज़ की साँसत छूटे। आने वाला को भी अपनी इज़्ज़त जाने का डर न रहे और हमें भी सुकून से बा-इज़्ज़त अपनी रोटी-चटनी कमाने का मौका मिल जाए।"

'आपको अपनी तरफ से और कुछ कहना है ?"

"और क्या कहना है हुज़ूर ! अगर सरकार मेहरबानी करके हमारे लिए एक घंटा वक्त और बढ़ा दे, यानी कि ग्यारह के बजाय बारह बजे तक टेम हो जाए तो अच्छा हो। आप यह समझें कि साढ़े आठ-नौ बजे तक अपनी दुकान-दुकान बढ़ाकर लोग आ पाते हैं - हम कम-से-कम तीन घंटे का वक्त तो मिले।"

नाच-मुजरे का समय बढ़ाने की बात मुझसे कई स्त्रियों ने कही। शहर की गुण्डागर्दी बन्द करने के लिए कुछ वर्ष पहले पुलिस ने यहाँ के वेश्यालयों में नाच मुजरे का समय एक घंटा घटाकर इन स्त्रियों के लिए समस्या उपस्थित कर दी। पैसा देने वाले शौकीन रात के नौ बजे अपना रोज़गार-धंधा निपटाकर साढ़े नौ-पौने दस तक पहुँच पाते हैं। उनके बैठने और गाना सुनाने का आयोजन होते-होते तक दस-पन्द्रह मिनट और बीत जाते हैं। इधर गाना ज़रा गरमाया नहीं कि उधर पौने ग्यारह बजे पुलिस की सीटी बजी। तफ़रीह के लिए आया हुआ शौकीन इससे भड़क जाता है और अपना रस उखड़ जाने के भय से भविष्य में प्रायः कई बार आना टाल जाता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि दिन-भर के काम-काज से थककर वह मन बहलाने जाए और फिर पुलिस के हाथों अपनी इज़्ज़त गँवाए।

सचमुच उलझते जीवन की समस्याएँ सदा एक से अनेक हो जाया करती है। तनिक-सी बात उठाई जाओ तो उसमें से इतना कुछ फूट पड़ता है कि न्याय-अन्याय, किसी पक्ष की ओर भी बात को उठाते-धरते नहीं बनता। एक परिचित पुलिस-अधिकारी से मेरी बात हुई। वे कहने लगे कि असली गानेवालियाँ अब शहर में बहुत कम हैं। उनके लिए यदि नियम को ढीला किया जाए तो उसका फायदा नकली गानेवालियों और बुरे आदमियों को मिलता है तथा पुलिस के लिए एक-न-एक नया झंझट रोज़ बढ़ जाता है। अस्तु।

मुनीरबाई, अल्लाहरक्खीबाई और शमीमबानो

२५-६-५६। आज की बैठक मुनीरबाई के घर पर हुई। इन तीनों प्रसिद्ध महिलाओ के अतिरिक्त मुनीरबाई की भनीजी और बहन अन्नो तथा ज़रीना भी उपस्थित थी। वैसे ३० अगस्त को भी शमामबानो और अल्लाहरक्खीबाई से मेरी बाते हो चुकी थी। इन दोनो ही भेंटो की बाते मैंने यहाँ सम्मिलित रूप से संजोई हैं।

मुनीरबाई की आयु अडसठ वर्ष के लगभग है। खूब पैसे वाली है। इनके जीवन का अधिकाश भाग स्वर्गीय ओरछा-नरेश महाराज वीरसिंह जू देव की छत्रछाया मे बीता। अब भी मुनीरबाई के कमरे मे महाराज का रंगीन चित्र उसी तरह प्रतिष्ठित है जिस तरह हिन्दू घर में ठाकुर प्रतिमा प्रतिष्ठा होती है। चौक की डेरेदार तवायफ़ो के समाज मे मुनीरबाई की बडी प्रतिष्ठा है, वे उनकी संगीत-कलाकार यूनियन की अध्यक्षा भी हैं। खिलता गेहुँआ रंग, भारी देह, पोपला मुँह, बैठा हुआ गला और रोबीला व्यक्तित्व उनकी विशेषता है। अपने यौवन-काल म वे निश्चित रूप से सुन्दर रही होंगी।

अल्लाहरक्खीबाई और शमीमबानो, जैसा कि पहले लिख चुका हूँ, अपने समय मे लखनऊ की नामी गानेवालिया रही है। अल्लाहरक्खीबाई की आयु इस समय साठ के निकट पहुँच चुकी है, शमीमबानो उससे बरस-दो बरस छोटी होगी। अल्लाहरक्खीबाई कृष्णवर्ण की है और शमीमबानो गौरवर्ण की हैं। अनेक वर्ष पहले किसी ईर्ष्यालु गायिका ने अल्लाहरक्खीबाई को पान मे सिन्दूर खिला दिया था, जिसके कारण उनकी आवाज सदा के लिए बैठ गई। महाकवि निराला जी बापू के प्रति अपनी एक व्यंग्य कविता मे अपने साथ अल्लाहरक्खीबाई का नाम जोडकर वर्षों पहले उन्हे अमर कर चुके हैं।

शमीमबानो अपने समय की परम सुन्दरी और श्रेष्ठ गायिकाओ म मानी गइ।

प्रश्नावली अल्लाहरक्खीबाई से आरम्भ हुई—

"लखनऊ कब तशरीफ लाइ ?"

"सन् तीस मे।"

"कहाँ से तशरीफ़ लाइ ?"

"कानपुर से।"

"तालीम किस उम्र मे शुरू हुई ?"

'हमारे यहाँ छ-सात बरस की उम्र म ही लडकियो की तालीम शुरू हो जाती है।''

''और पहली बार महफ़िल में कब आयी ?''

यहाँ स उत्तर सम्मिलित होने लगे। उत्तर आया, ''आम तौर पर दस ग्यारह साल की उम्र म ले आई जाती हैं।''

''तालीम पाते ही लडकियाँ एकाएक बडी महफ़िलो म आने पर झिझकती या घबराती हैं ?''

'जी नहीं, बात धीरे-धीरे शुरू होती है। मसलन घर म माँ या बडी बहन गा रही है, रईस बैठे हैं, हौसला-अफ़ज़ाई के लिए लडकी से भी कहा गया कि जो याद किया है सुनाओ। फिर मान लीजिए किसी रईस के यहाँ तकरीब हुई छोटे-मोटे जलसे हुए, वहाँ मुजरा किया, तारीफ़ हुई, धीरे-धीरे हौसला बढ गया।''

''अच्छा, लखनऊ म तो किसी जमाने म बडे-बडे उस्तादो और गानेवालियो का जमघट था।''

'जी हाँ।''

'यहाँ के उस्तादो म और गानेवालियो मे किन-किनके नाम मशहूर हुए ?'

''बडे-बडे लोग थे। अहमद अली थे, खुर्शेदअलीखाँ, एवज़अलीखाँ सारंगिये और दूल्हा खाँ हुए। दूल्हा खाँ बहुत सरनाम हुए। इनके तीन बेटे थे—अहमद खलीफा मुहम्मद हसन खाँ और बाकर अली खाँ। इन्होंने अच्छा नाम पैदा किया। इनके अलावा बडे मुन्ने खाँ, छोटे मुन्ने खाँ हुए। बडे मुन्ने खाँ गाते तो महफिल म सन्नाटा हो जाता था।''

ये तीनो ही प्रतिष्ठित कलाकार जब पुराने कलाकारो का नाम लेती थी, तब उनके स्वर और चेहरे का भाव श्रद्धापूर्ण हो उठता था। आगे की बात मुनीर-बाई ने उठाई, बोली, ''गानेवालियो मे आज से पन्द्रह-बीस साल पहले छोटी जद्दन, बडी जद्दन, अच्छनबाई, अल्लाहबादी और हस्सोबाई का बडा नाम था। नन्हुआ, बच्चुआ यहा की चौधरायन थी और बहुत खूब नाचती थी।'

अल्लाहरक्खीबाई और शमीमबानो ने और भी कई गायिकाओ के नाम लिखाए—(१) बुग्गन, (२) जली खुर्शेद, (३) माहेलका, (४) बब्बनबाई, (५) मुन्नेवाली छुट्टन, (६) नब्बनबाई (७) हमीदाबाई (८) ताराबाई, (९) जमालन-बाई, (१०) शमीमबाई फतहपुरी, (११) बेनजीरबाई और जोहराबाई। इनके

जवानी में ही अल्लाह को प्यारी हो गई। हुस्नोजान महाराजा महमूदाबाद की रक्षिता थी, गाने मे, इज्जत मे, हर बात म उनका दरजा बडा माना जाता था। जली खुर्शेद बडे सगीतशास्त्री राजा नवाबअली के मन पर चढी हुई थी। उन्होने सगीत में नाम कमाया ही, परन्तु इसके अतिरिक्त कबीवबाजी मे भी सरनाम रही। मोहम्मदीबाई की ख्याति भैरवी गाने के लिए विशेष रूप से रही। इनमे केवल दो मुनीरबाई और ताराबाई ने ही नृत्य मे नाम कमाया। बाकी प्राय सभी किसी समय रेडियो और ग्रामोफोन-रेकॉर्ड कम्पनियो से भी ख्याति प्राप्त करती रही।

मैंने प्रश्न किया, "लखनऊ के घराने की गायकी का यू० पी० के और बडे शहरो म या यू० पी० से बाहर कैसा पसन्द किया जाता है?"

शमीम—"जी, पजाब वाले पूरब अग का दादरा सुनने के लिए मरते हैं। हमारे यहाँ का गाना पूरब अग कहलाता है। जहा सुर लगा नहीं कि पूरा असर दिखाया। पूरब अग की गायकी मे 'फुरक-मुरक' की ऐसी फबन होती थी कि सुनने वाले फडक-फडक उठते थे।"

"बनारस की गायकी का घराना क्या कहलाता है?"

अल्लाह—"जी, वह भी पूरब अग ही कहलाता है, मगर हम लोग यहा उसे बनारस अग कहते हैं। उनकी अपनी खूबिया है, हमारी अपनी खूबियाँ हैं। वह हम पर मरते है, हम उन पर मरते हैं। फन मे हुजूर, खूबियो के लिए जलन नहीं होती, वाहवाही होती है। जो जलेगी वह बढेगी क्या और कोई पूरब अग मे ही अकेली खूबिया नहीं हैं, पछाँह वाले धुन बहुत उम्दा गाते हैं।"

मैं—"हिन्दुस्तान के बडे-बडे शहरो मे जहाँ महफ़िलें होती हैं, या कहना चाहिए कि होती थी, आप लोगो के साथ-साथ दूसरे सूबो की मशहूर तवायफ़ें भी बुलाई जाती होंगी?"

शमीम—"जी हाँ।"

मैं—"किन-किन मशहूर गानेवालियो से आप लोगो का साबिका पडा?"

शमीम—"जी बहुतो से। बम्बई दकन की गगोबाई, रोशनआरा, हीराबाई और नेपाल की दो बहनें तारा-सितारा जो फिल्म मे चली गईं, जम्मू की मलिका पुखराज, मुख्तार बेगम लाहौर वाली, अमृतसर की अनवरीबाई, आगरे वाली अम्मो अख्तर, बीकानेर की अल्लाह जिलाई—बहुतो से सामना पडा। अच्छे-अच्छे दगल हुए—हमारे भी, अल्लाहरक्खी के भी।"

"ये दगल क्या महफ़िलो मे ही हुआ करते थे?"

६

अल्लाह—"जी महफ़िलें तो जैसे रात में हो गईं, फिर सुबह जश्न हुआ। दगल आम तौर पर उसी में होते हैं।"

"दगलो का तरीका क्या होता था ?"

अल्लाह—"मान लीजिए दस बहनें है। ये एक साथ खड़ी हो गईं, उनके साथ साज़िन्दा सिर्फ एक जोड़ ही रहेगा। अब एक बोल गाकर दसों बहनें अपने-अपने फन दिखलाएँगी। जिस सबने मकबूल किया उसी का नाम हुआ।"

मैं—"तब उसे खूब इनाम-इकराम मिलता होगा ?"

शमीम—'जी हाँ, हुजूर, इनाम का तो यह हाल था कि रईस नोट और गिन्नियाँ उछालते थे। उस ज़माने म हम लागो की बडी इज्जत थी। बड़े-बड़े लोग बा-इज्जत हमे अपने बराबर से बिठाते थे, चौधरायन के यहाँ दरबार लगता था, बड़े-बड़े लाग तहज़ीब सीखने जाते थे। अब तो हमको भी लोग-बाग चावल-वाली गली की ही मान लेत हैं। कोई मजा नही रहा। जब से यह छापा पड़ा है हम तो तबाह हुए जाते हैं। आप यकीन मानिए कि कहाँ तो हम हरएक से मिलना-जुलना भी पसद नही करते थे। नये आन वालो से विजिटिंग कार्ड माँगा करते थे, हुजूर! और अब तो जरीसा थाने का मुशी आ जाए तो डर के मारे पसीना छूटने लगता है। हाय जाडे चले आते हैं कि हुजूर ने कैसे तक्लीफ फरमाई।" शमीमबाई के चेहरे पर आत्मग्लानि की तीखी मचलती रेखाएँ उभरी, उत्तेजना-भरी आखो म सूनापन, फिर विषाद, फिर प्रश्न की चमक, फिर सूनापन—अस्थिरता का द्रुत-चलचित्रपट सज गया। वह फिर बोली, "अच्छा हुजूर, अब तक किसी भी गवनमेण्ट ने यह ज्यादती हमारे ऊपर नही की थी। छापे के नाम स ही हमारे तो हाल पतले हो जाते हैं। अब उस दिन छापा पडा। हाथ म बुरका आढ के बदहवासी की हालत म भागी। अब उस वक्त ये भी होश नही कि क्या भाग रही हूँ, कहाँ भाग रही हूँ। और इसी बीच म एक हवलदार ने टोक दिया कि क्यो शमीमबानो, कहाँ जा रही हो ? यकीन मानिए, मैं जीते-जी मर गई। जो, कहने की बात नही, मगर आप सच्चा हाल पूछते हैं, इसलिए बदतमीजी मुआफ फरमाइएगा, हवलदार के आवाज़ देते ही डर के मारे अब मैं कैसे कहूँ हुजूर वह पूछ रहा है, शमीमबाई कहाँ जा रही हो और मरी समझ में कुछ भी नही आता। मैं खडी खडी जी, हाँ, यहा वहाँ बस यही सब करती रह गई। वह बेचारा हवलदार शरीफ था, हँस के चला गया। मुझसे बोला, घर जाओ। मगर आप ही बतलाइए यह कोई जिन्दगी हुई! अरे हम गाने-बजाने-वालियाँ, हमारे ऊपर तो ऐसी बातो से कहर नाज़िल हो जाता है। सरकार हमारे

पीछे क्यों पड़ी है, अरे जहाँ गुण्डे हों, उचक्के-बदमाश हों, गंदा पेशा करने वालियाँ हों, वहाँ जाएँ।"

"आप लोगों के यहाँ गुण्डे, दलाल नहीं रखे जाते?"

"हमारे यहाँ क्यों रखे जाएँ, हुजूर! जिनके यहाँ गुण्डे आते हैं वही अपनी हिफ़ाज़त के लिए गुण्डे रखती भी हैं। हमारा रईसों-शरीफों का साथ, हमें क्या जरूरत! और दलालों की बात झूठ है सरकार। डेरेदारों के यहाँ दलाल नहीं रखे जाते।"

"तो डेरेदारों के यहाँ लोग-बाग गाना सुनते कैसे पहुँच जाते हैं?"

"या ही नाम सुनकर पहुँच जाते हैं, हमारे यहाँ आने वाले रईसों की सोहबत में पहुँचते हैं। हाँ, कभी यह भी हो गया कि मान लीजिए आप बाजार में तशरीफ लाए, किसी दलाल ने आपसे कुछ कहा-सुना, मगर आपने कहा कि हमको उसके यहाँ नहीं, शमीमबानो के यहाँ जाना है, या अल्लाहरक्खी के यहाँ जाना है तो वह आपको हमारे यहाँ पहुँचा गया।"

"ऐसी हालत में क्या उस दलाल को आपसे इनाम-इकराम मिलेगा?"

"जी नहीं, हम दलालों से कोई मतलब नहीं रखते। यह बात दूसरी है कि आपको सलाम करके वह कुछ आपसे पा जाए।"

यहाँ बातों का सीधा प्रसंग छोड़ एक रस्म का उल्लेख कर दूँ। विवाह होने के बाद युवक-युवती के मिलन की पहली रात को सुहागरात कहा जाता है। वेश्या एक व्यक्ति की पत्नी भले ही न हो, पर नगर-वधू तो है ही। उनकी भी सुहाग रात मनायी जाती है। यहाँ उसे नथ उतारने की रस्म कहते हैं। वेश्या-पुत्री जब तक कुँआरी रहती है तब तक उसकी नाक में एक छोटी सी नथ पड़ी रहती है। जो नागरिक नगर-वधू का कौमार्य भंग करता है वह उसकी नथ उतारकर नाक में कील पहनाता है। कील के साथ ही वह नगर-सुहागिन के लिए यथाशक्ति उत्तम कपड़े, गहने और मिठाइयाँ भी लाता है। यह मिठाई तमाम वेश्या बिरादरी में बाँटी जाती है। इसी रस्म की बात उठाकर मैंने पूछा, "क्या ऐसे आदमी से तवायफें किसी किस्म का करार करती हैं?"

"जी हाँ, जिसके साथ यह रस्म होती है, हमारी लड़की उसी रईस की पाबन्द भी हो जाती है।"

"और मान लीजिए, उसने नथ उतारने के बाद छोड़ दिया?"

"फिर और कोई अच्छा रईस देखकर हम उसे उसका पाबन्द बना देते हैं। बहरसूरत हमारा पेशा गाने-नाचने का ही है। सरकार का जी चाहे तो हमारी

लड़कियाँ का इम्तहान और हमें इजाज़त दे। गन्दे पेशेवालियों से हमारी बराबरी खुदा के लिए न करवाएँ।"

सरकार ने दफा ८ की पाबन्दी पर जोर दिया है। इसमें छज्जे पर बैठना, झाँकना, इशारेबाज़ी करना, दलाल रखना वर्जित है। सब वेश्याओं ने अपने छज्जों पर चिकें डाल रखी हैं। लेकिन इसमें भी डेरेदारों और कस्बियों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि उन्होंने भी चिकें डाल ली हैं। डेरेदार वेश्याओं की यूनियन की सदस्याओं ने अपने-अपने घरों पर साइनबोर्ड भी लगा रखे हैं, बुरी वेश्याओं ने भी देखा-देखी 'डान्सर एण्ड सिंगर' (नर्तकी और गायिका) का साइनबोर्ड लगा लिया है। इन सबके मन में पुलिस के छापे की हलचल समा गई है, उससे सदा सहमी रहती है।

पुरानी महफिलें

पुराने समय में अर्थात् आज से पच्चीस वर्ष पहले तक डेरेदार वर्ग की तवायफों को नौचियों और कस्बियों से अपनी प्रतिष्ठा के लिए कोई भय नहीं था। वे इन डेरेदारों की दृष्टि में ओछी थीं। इसलिए लाग-डाट का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था। डेरेदार वेश्या होकर भी श्रेष्ठ कलाकार होने के कारण प्रतिष्ठा पाती थी। शमीमबानो का एक चुभन-भरा वाक्य याद आता है कि बिना विज़िटिंग कार्ड के पहुँचे वे अदाई गन्दाइयों से मिलना भी अपनी शान के खिलाफ़ समझती थीं। उस पुरानी प्रतिष्ठा को याद कर ये तीनों प्रतिष्ठित लखपती वेश्याएँ अपने जी के फफोले फोड़ने लगीं। उनके दुख ने कहीं पर मेरे मन को भी स्पर्श किया। उनके अवसाद से वर्तमान क्षणों को उबारने के लिए मैंने बात बदलाई। उनसे पुरानी महफिलों और नामी गायिकाओं के संस्मरण की कहानियाँ सुनने की प्रार्थना की।

गौहर जान और बेनज़ीर

मुनीरबाई ने गौहरजान और बेनज़ीर का एक मज़ेदार किस्सा सुनाया—"उस ज़माने की तवायफें क्या थीं। एक महफिल में कलकत्ते की गौहरजान गयी थीं। उनका ज़माना था और थीं भी इज़्ज़त के लायक। उनका बड़ा दबदबा था। उस महफ़िल में महाराज दरभंगा की न्हो बेनज़ीरबाई भी आयी थीं। बड़ी खूबसूरत थीं और सिर से पाँव तक पोर-पोर कीमती जवाहरात से मढ़ी हुई थीं। उसे बड़ा गुमान था मगर गौहरजान के सामने भला कौन गुमानी जीत सकता था! बेनज़ीर के गाने ही गौहरजान के आगे दूध-पानी साफ़ हो गया। उसके बाद

आखिर मे गोहरजान के गाने का नम्बर आया। जमाना उनका मुश्ताक था। गाना शुरू करने से पहले बेनजीर के गाने का गुमान तोडने के लिए उन्होने कहा कि बेनजीरबाई, आपके ये जवाहरात पलग पर ही चमकेंगे, महफिल मे हुनर चमकता है। बेनजीरबाई का पहला साबिका गोहरजान से पडा था। जब उनका गाना सुना तो पानी उतर गया। मगर वाह रे लगन और ईमान वाली, वही से बम्बई-पूने वाले अब्दुलकरीमखाँ साहब के वालिद के पास पहुँची। अपनी जेवरो की गठरी उनके कदमो पर रख दी और कहा कि उस्ताद इस नाचीज को भी किसी काबिल बना दीजिए। उस्ताद ने कहा कि अपने जेवर अपने पास रखो। तुम जिस लगन से मेरे पास सीखने आयी हो उसी लगन से मैं तुम्हें सिखाऊँगा। दस बरस बाद उसी तरह सरापा हीरे पहनकर बेनजीरबाई फिर गोहरजान के पास गयी, जो सीखा था सब सुनाया, एक घण्टे तक रिखव बढ़ाकर दिखलायी। गोहरजान ने कहा, "सुभानअल्लाह, अब तुम्हारे हीरे चमक रहे हैं।"

हसीना

हसीना अल्लाहरक्खी की छोटी बहन थी। इक्कीस वर्ष की आयु मे उसका देहान्त हो गया। उतनी ही आयु मे गायिका की हैसियत से उसने अच्छी तैयारी कर ली थी। एक बार उन्नाव मे एक महफ़िल हुई, कई शहरो से दस-बीस तायफे मौजूद थे। कानपुर वाली बाई भी आयी थी। उस जमाने मे कानपुर की गाने वालियो मे उसका नाम तेजी से चमकने लगा था। हसीना और कानपुरवाली की लाग-डाट हो गई और जब लाग-डाँट हो जाती है तब महफिल मे बडी गरमी आ जाती है, बिलकुल वही हाल हो जाता है जो इलेक्शनो मे होता है। कानपुर-वाली ने ऐसी ही गरमी-गरमी मे एक राग शुरू किया—अडाना गाने लगी। उसमे उसने एक जगह गलत राग लगाया। हसीना ने गट्टा पकड लिया, कहा, गलत जा रही हो। कानपुरवाली बोली, अरी हट तू गाना-बजाना क्या जाने, हसीना ने कहा इस बात पर मेरे साथ गा लो। महफिल का जोश दोबाला-चौबाला हो गया, उस्तादो मे नाइत्तफाकी हो गई। बडी कहा-सुनी रही। हसीना ने महफ़िल मे अपना सिक्का जमा लिया था। कानपुरवाली के भाई ने अपनी बहन का हाथ पकडा और उठा ले गया।

स्टेशन के प्लेटफार्म पर

एक बार जमीलन और शमीमबानो मे दगल हो गया। प्रतापगढ मे महफिल थी। कानपुर से जमीलन और लखनऊ से शमीमबानो गयी थी। जवानी मे

शमीमबानो, वकील खुद, "खूबसूरत तो किस मुँह से कहूँ क्योंकि इस लफ़्ज के मानी बहुत बुलन्दी तक ले जाते हैं, मगर हाँ, अल्लाह ने ऐसा कुछ जरूर दिया था जिससे लोग मेरी तरफ खिंचते थे और गाने में भी रियाज अच्छा था।" महफिल बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों की थी, रुपया सावन की झड़ी-सा बरस रहा था, जमीलन और शमीमबानो में लाग-डाँट हो गई। कद्रदान उसके भी तगड़े-तगड़े थे और शमीमबानो का पलड़ा भी कुछ कम भारी न था। बहुत जबरदस्त मुकाबला रहा, बड़ी गरमा-गरमी रही, दोनों के कद्रदानों ने इस कदर रुपये और नोट उछाले कि दोनों के आगे उनका पहाड़-सा लग गया। अन्त में शमीमबानो ही बीस रही। जमीलन को बुरा लगा। महफ़िल के बाद दोनों एक ट्रेन से लौट रही थीं। प्लेटफार्म पर जल्दी ही पहुँच गई थीं, वहीं बात बात में गरमा-गरमी हो गई। जमीलन ने कह दिया कि चहेतों के बल पर जीत गई, कोई गाने के बल पर तो जीतीं नहीं। इस पर शमीमबानो को गुस्सा आ गया, कहा कि चार उस्तादों के बीच में जब भी जी चाहे हमसे बढ़कर गा लो, उस्ताद जो फैसला करेंगे मान लिया जाएगा। खूबसूरती अपनी जगह पर है, गाना अपनी जगह पर है। यों ही कहा-सुनी बढ़ती रही और जोश का घिराव इस कदर हुआ कि स्टेशन पर ही दोनों का दंगल छिड़ गया। वहाँ पब्लिक मुसिफ थी, बड़ा मजमा जुड़ गया।

तुम्हारे नसीब में मोटर हमारे नसीब में बैलगाड़ी

बरेली की एक महफिल में बनारस की कमलेश्वरी और दुर्गेश, फतेपुर वाली शमीम और अल्लाहरक्खी गई हुई थीं। जिनके यहाँ महफिल थी वे दो भाई थे और दोनों पहले ही से एक-एक गायिका से प्रशंसक के रूप में बंधे हुए थे। एक भाई लखनऊ की अल्लाहरक्खी का भक्त था, दूसरा बनारस की कमलेश्वरीबाई का, इसलिए महफिल में दंगल अनिवार्य रूप से हो गया। दूसरे दिन दंगल हुआ, अल्लाहरक्खी बाई का गाना बहुत पसन्द किया गया। महफिल में नब्बे फ़ी सदी आदमी अल्लाहरक्खी बाई के मुआफिक थे। ताबड़तोड़ मुजरे हुए। उसके एक-डेढ़ महीने बाद ही वहीं किसी दूसरे के यहाँ महफिल थी। दूसरे भाई, जो कमलेश्वरी के कद्रदान थे, उन्हें कमलेश्वरी की हार अखर रही थी। उन्होंने पहली महफिल के बाद ही इस महफ़िल (दंगल) का जोर बाँधा। कमलेश्वरी ने दो सौ रुपये माँगे और उन्हें मिले। अल्लाहरक्खी ने जब यह सुना तो तीन सौ माँगे। खैर, पौने तीन सौ पर राजी हो गई। अल्लाहरक्खी और कमलेश्वरी में सारी रात होड़ चलती रही। इसके पहले एक दिन कमलेश्वरी गा चुकी थी और

अपना गहरा रंग जमा चुकी थी। अल्लाहरक्खीबाई सिर्फ एक दिन के लिए ही जा सकी क्योंकि यहाँ की महफ़िल के एक दिन पहले उन्हें लखनऊ में एक महफ़िल करनी थी और बरेली की महफ़िल के बाद दूसरे ही दिन शाम को कन्नौज में एक महफ़िल में उन्हें गाना था। इसलिए अल्लाहरक्खीबाई को सिर्फ एक ही रात में अपना हुनर दिखाना था। खूब ही रंग जमा, कमलेश ने भी अपना कमालो-जमाल दिखलाया और इसमें शक नहीं कि उन्होंने खूब ही गाया। मगर अल्लाह जिसको ताज रखे वही मीर कहलाता है। अल्लाहरक्खीबाई का सितारा बुलन्द रहा। कमलेश को दुःख हुआ। महफ़िल के बाद ही कमलेश चल दी। उस गाँव से शहर (स्टेशन) पहुँचने के लिए बैलगाड़ी आयी। अल्लाहरक्खीबाई को भी जाना था, मगर खातिरतवाज़ा के लिए बहुत इसरार करने पर उन्हें रुक जाना पड़ा। कुछ देर बाद उन्हें छोड़ने के लिए मोटर बुलायी गई। रास्ते में ही कमलेश की बैलगाड़ी मिली। अल्लाहरक्खीबाई ने गाड़ी रोकी और कहा कि बहन, तुम मोटर में आ जाओ मेरे आदमी बैलगाड़ी में बैठकर आते रहेंगे। उन्होंने समझा कि यह ताना दे रही हैं और इनके दिल में कमलेश्वरी के लिए इज्जत थी। तवायफ़ों में चुटीली बातें तो चला ही करती थीं कमलेश्वरी उसी रंग में बात को ले गई, बोली कि बहन, जो जिसकी क़िस्मत में होता है, वही उसे मिलता है। तुम्हारे नसीब ने तुम्हें मोटर दी, हमारे नसीब ने हमें बैलगाड़ी दी।

तुम डाल डाल मैं पात-पात

मुनीरबाई की बहन अन्नो (अनवरी) ने एक ऐसा ही दंगली प्रसंग सुनाया। एक छोटी रियासत में महफ़िल थी अन्नो और मोहिनीबाई उसमें भाग लेने के लिए बुलायी गई थीं। मोहिनीबाई राजा के मन चढ़ी हुई थी, या करीब-करीब चढ़ चुकी थी। मोहिनीबाई जो समझा देती राजासाहब समझ जाते थे। हर गाने वाली, जिसके हुनर पर राजा का ध्यान तनिक भी ठहरता, मोहिनीबाई की बड़ी सधी हुई टीका-टिप्पणियों का शिकार होती। अन्नो घबराई, हाय अम्मा अब क्या होगा! अम्मा ने कहा, घबराओ मत, समझ से काम लो। अगर यह तुम्हें काटे तो तुम भी ठीक उसी तरकीब से काम लेना जिस तरकीब से यह काम लेती है। खैर अन्नो की बारी आई। मोहिनीबाई अपना रंग जमा कर उठी थी कि राजा ने कहा, मोहिनी तुम साड़ी बदल आओ, तब तक अन्नो का गाना होता है, फिर जमकर तुम्हारा ही गाना सुना जायगा। मोहिनी यों गाती भी अच्छा

थी। अब तक महफ़िल में उसकी बराबरी का कोई उतरा भी न था। और जिनमें थोडी-बहुत चमक होती भी उसे अपनी बातों से दबा देती थी। राजा को समझ नहीं थी, लेकिन समझदार बनने का ढोंग करते थे। जो मोहिनी कहती वही राजा कहते और जो राजा कहते वही उनके मुसाहब भी कहते। खैर अन्नो के गाने की बारी आई, राजा ने मोहिनी से कहा कि साडी बदलकर आओ। मगर मोहिनी के मन मे तो चोर था, वह अन्नो का थोडा-सा रग देखकर ही वहाँ से टलना चाहती थी। गाना शुरू हुआ। अन्नो का गला अच्छा था, तैयारी भी अच्छी थी, शुरू करते ही रग जमने लगा, बसन्त बहार का खयाल था और महफ़िल सुनकार थी। मोहिनीबाई ने काटना शुरू किया, कहा कि हुजूर यह पछाँह का अग गाती हैं मैं पूरब का अग गाती हूँ। अन्ना ने भी चट से कहा, "जी हा हुजूर, मैं पछाह का अग भी जानती हूँ, पूरब का अग भी जानती हूँ और पजाबी धुनें भी जानती हूँ। हरएक की अपनी-अपनी खूबियाँ होती हैं।" इसी तरह मोहिनीबाई ने दो-तीन बार मीठी काट की, अन्नो ने भी उसी तर्ज पर अपनी बात का रग चढाना शुरू कर दिया। राजा पर भी असर पडने लगा। मोहिनीबाई साडी बदलने के बहाने चली गई। जब लौटकर आयी तब देखा कि अन्नो का रग पूरी तरह से जम चुका था। फिर बाकी रात अन्नो का ही गाना सुना गया, मोहिनीबाई फीकी बैठी रही।

सभी बुजुर्ग तवायफो का कहना है कि महफिल का रग देखकर ही उसे बाधना चाहिए। महफ़िल का रग समझना और बाधना अपने आप मे एक कला है। जिसने महफिल का मूड समझ लिया वह तवायफ उखड नही सकती।

लखनऊ की तहज़ीब बखान करते हुए मुनीरबाई ने बतलाया कि यहा का कायदा यह था कि जब रईस तवायफ के यहाँ आकर बैठते थे तब तवायफ अपनी तरफ से यह कभी नही कहती थी कि हुजूर गाना सुनिए। वह बातचीत और अदब-मिठास से रईस की खातिर करती और जब रईस खुद ही फ़रमाइश करता कि उस्तादो को बुलाइए तभी गाना शुरू होता था।

अगर किसी तवायफ़ के यहाँ महफिल है तो वह अपनी बराबर की साथिनो को बुलवाएगी, साथ ही शहर के तमाम नाच-गाने के शौकीन रईसो को भी न्योता भेजा जाएगा। रईस लोग आयेंगे, मगर महफिल मे किसी पर न्योछावर नही करेंगे। हाँ, महफिल खत्म होने पर रईस जब जाने लगेंगे तब बतौर न्योते की रस्म-अदायगी के व दस, बीस या पचास, पचास गिन्नी-अशर्फ़ी अपनी-अपनी तबीयत या हैसियत के मुताबिक तवायफ़ को द जाते हैं।

महफ़िलों में ये रोचक संस्मरण सुनते हुए मुझे उन तमाम तवायफ़ों और तवायफ़ज़ादियों की बातें याद आ रही थीं जिन्होंने अपनी इंटरव्यू में पक्के गानों की वर्तमान दुर्गति का दुखड़ा रोया था। चौक की अन्य डेरेदार तवायफ़ों में मैंने हुसैनाबाई, बच्चूआबाई, नज़ारबाई नवाबजान शकीलाबाई, जन्नोबाई, शज्जोबाई, अशरफबाई, दिलरुबा, नाज़नी, मुन्नीबाई, चन्द्रकुमारी, सोफ़ियाबेगम आदि से विस्तारपूर्वक बातें कीं, कुछ अन्य स्त्रियाँ भी इन बातों में सम्मिलित होती रहीं। डेरेदार तवायफ़ों की पंचायत में दो बार मैंने उनके निमन्त्रण पर भाग लिया। प्रत्येक के साथ अलग अलग बातें करते हुए भी लगभग एक पखवारा बिताया।

वेश्या का कोठा जवानों के मन में सदा एक रंगीन स्वप्न-संसार बनकर ही आता है। मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि इस जादू ने कभी मुझे भी अपने रंगीन जाल में बाँध रखा था। मैं कह नहीं सकता, शायद उम्र पकने का परिणाम हो, इस बार लगभग बाईस-चौबीस वर्षों बाद इन कोठों को देखकर मेरे मन में बड़ी वितृष्णा जागी। घरों में आम तौर पर गन्दगी देखी। गन्दे, बगैर साफ़ किए हुए उगालदान, कूड़ा मैल फूहड़पन देख-देखकर मुझे बराबर यही लगता था कि इस वातावरण में क्योंकर लोग अपने रोमांस का सपना पा सकते हैं। दैहिक पेशा करनेवाली वेश्याओं की बात छोड़ दीजिए, मगर ये डेरेदार तवायफ़ें तो वंश-परम्परा से अपने चारों ओर स्वप्न संसार के ताने बाने की शिक्षा पाती रही हैं, फिर इनके यहाँ सौन्दर्य बोध का आज नाम निशान तक नहीं मिलता। दो-चार लड़कियाँ शारीरिक रूप से सुन्दर अवश्य देखीं, पर उनमें भी कहीं कोई चमक न दिखलायी दी जो किसी सुसंस्कृत व्यक्ति के मन में [illegible] जगा सके।

एक लड़की, जिसकी आयु लगभग बाईस-तेईस वर्ष की [illegible], [illegible] अपने मोहल्ले की बड़ी-बूढ़ियों के साथ मेरे यहाँ आयी, लगभग [illegible] बैठी, मैंने इतनी देर में उसको वे तमाम नखरे-भरी [illegible] ग्राहक पुरुषों में अपने प्रति काम-आकर्षण जगाती होगी। [illegible], चेहरा गोल, और नाक-नक्शा भी बुरा नहीं था। [illegible] सलोनेपन और रिझाने की कला पर नाज़ भी था। [illegible] और उतनी देर में उसने पुरुष को अपनी ओर [illegible] कीड़ों का सरकस मुझे दिखा डाला, कभी [illegible] कभी रसीली नज़र की ताक साधी, [illegible] अदा दिखलाना, ये सब तमाशे मैंने [illegible]

डेरेदारो का अति प्रसिद्ध इल्मे-मजलिसी इस लडकी के व्यक्तित्व मे अपने दिवालियेपन का ढोल पीट रहा है। जब इस लडकी से इण्टरव्यू लेने का नवम्बर आया तो मैंने जान-बूझकर छूटते ही कहा, 'बेटी, मेरे सवालो का जवाब देने तक सावधान होकर बैठना।''

बिजली की तरह उस पर असर हुआ। शायद डर के कारण, लेकिन डर और आदत दोना ही अपने-अपने करतब दिखाते है। इस लडकी की एक छोटी बहन है। वह भी नाच-गाने का धधा करती है। कौम हिन्दू जुगला, गोत ठाकुर, निकास तारा रामपुर, ज़िला सीतापुर। पिता तारा रामपुर मे साठ बीघा जमीन मे खेती कराते हैं, कभी यहाँ भी रहते हैं। यह लडकी अपने माता-पिता और छोटी बहन के साथ पाँच-छ वर्ष पहले सीतापुर से लखनऊ आयी। माता-पिता दोनो ही वेश्या वग के हैं। सीतापुर मे उस्ताद बुद्धन खा नाच-गाना सिखाते थे। लखनऊ मे इतबाबहुसेन तालीम देते हैं। नाच सीख लिया, काम लायक। गाने मे तबीअत लगती है।

दिनचर्या पूछने पर उसने बतलाया कि सुबह ढाई-तीन घण्टे रियाज चलता है, शाम को भी तीन-चार घण्टे तालीम-मुजरा हो जाता है। दिन खाली रहता है। पढने-लिखने की खास शौक नही। जो मिला पढ लिया वरना पडे रहे। दोना बहना के नाच गाने से घर का खाना-पीना चल जाता है। मकान का किराया पच्चीस रुपये है। कपडे-गहने साल मे तीन-चार बार बन ही जाते हैं। एक बार म सवा सौ-डेढ सौ के कपडे खरीद ही लिए जाते हैं। परीक्षा लिये जाने की बात पर कहा, 'नोटेशन से तो हम न गा सकेंगी, पर या राग-रीत सब गा लेंगी।''

मैंने पूछा, "अच्छा मान लो कि तुम्ह कभी शादी करने को कहा जाए तो तुम वह पसन्द करोगी या जैसी हो वैसी ही अच्छी हो?"

वह झेंपी, मुस्करायी, फिर कहा, "जी, अब शादी तो क्या करेंगी! शादी से जिस माहौल मे हम हैं वही अच्छा है।"

"नाच-मुजरे के अलावा किसी की पाबन्दी मे भी हो?"

"फिलहाल किसी की नही, बरस-डेढ बरस से यही हाल है।"

डेरेदार तवायफ़ो ने बार-बार जोर देकर यह बात मुझसे कही है कि किसी व्यक्ति की नौकरी के अलावा व छिटपुट देह-ग्राहक को प्रोत्साहन नही देतीं। जहाँ तक उनके परम्परागत सामाजिक नियम की बात है, यह कथन सत्य हो सकता है पर विषम आर्थिक संघर्ष के इन दिनो मे यह नियम सचाई और ईमानदारी के

साथ अब इस समाज मे नही लगता। इस बात के कुछ और प्रमाण भी मुझे मिले हैं, उनका उल्लेख यथास्थान करूँगा, पर यहा तो देगची के एक चावल को टटोलकर मी उनके इस झूठ की कलई खुल जाती है। यह लडकी जिन तरकीबा का प्रदर्शन मेरे सामने करती रही वह उसकी रोज़मर्रा मे शामिल होगी। उसके घर पर गाना सुनने को पहुँचा हुआ पुरुष इन सकेता से प्रेरित होकर कुछ और भी सौदा करता होगा। मैं व्यक्ति को दोप नही देता। आजकल हर तवायफ को नौकर रखने लायक हैसियत इस देश के औसत रसिक-समाज की नही रही। यह तो आने वाली तवायफा के बयान से ही पाठक भली भाति समझ सकता है।

हसाबाई

आयु पैंतीस-छत्तीस। रग गेहुँआ। शरीर दुबला। आवाज थोडी नकसुरी। चेहरे पर रोग का पीलापन। हसाबाई पहाडिन का पेशा बुजुर्गों से है। कौम पातुर, कोल शिल्पकार, गाव नायकना, जिला अल्मोडा। बचपन में कत्थक नाच की तालीम पाई। आरम्भ मे शास्त्रीय सगीत की शिक्षा भी पाई "यो हल्के-फुलके गाने भी गाती हूँ।"

"नाच-गाने के अलावा आपको और कोई तालीम मिली ?"

"हम लोगो को इल्मे-मजलिसी सिखाया जाता है," एक ने कहा।

मैंने पूछा, "आप नाच-मुजरा भी करती हैं या किसी की नौकरी मे ही हैं ?"

हसाबाई ने कहा, "जी एक की नौकरी मे हूँ और मुजरा-नाच बराबर करती हूँ, ज्यादा रोजी उसी की है।"

"आप अपने घर मे एक दिन कितने मुजरे कर लेती है ?"

हसाबाई ने कहा, "कभी दिन मे एक मुजरा, कभी दो या हद-से-हद तीन, कभी पन्द्रहिया नही, डेढ डेढ महीने तक नही।"

मैंने पूछा, "एक मुजरे की फ़ीस कितनी होती है ?"

"जी फीस का सवाल नही, घर पर हमारा किसी से कुछ करार नही होता। किसी ने एक रुपया, किसी ने दो, किसी ने दस-पाच। बाज बाज ऐसे भी आते हैं जो चाय भी पी जाते हैं, पान भी खा जाते हैं, गाना सुन जाते हैं और बिना घेला दिये चले जाते हैं।"

"आप अपने घर मे अकेली रहती है ?"

"मैं और मेरी बहन रहती हैं। दोनो कमाती हैं। मैं जरा बीमार रहता हूँ, इसलिए कम काम कर पाती हूँ, बहन ही थोडा-बहुत कमा लेती है।"

मैंने पूछा, "आपके कोई बाल-बच्चे ?"

"जी, छोटी बहन का लड़का है छ:-सात बरस का, पलता है।"

"अच्छा, बाहर महफ़िलों में जाने पर तो आप लोग फीस का करार करती ही होंगी ?"

हुसाबाई ने कहा, "जी हाँ, बाहर बुलाए जाने पर करार करती हैं। कभी चालीस, कभी साठ-सत्तर या सौ—जैसा वक्त देखा ले लिया।"

"आपके साथ जो साज़िन्दे जाते हैं उन्हें अलग से मिलता है या उनकी रकम भी इसी में शामिल होती है ?"

"जी, साज़िन्दों और तवायफ़ों का साझा होता है। करार की रकम में नौ आने तवायफ़ों के सात आने साज़िन्दों के होते हैं।"

मैंने पूछा "साज़िन्दे आप लोगों के अलग अलग होते हैं ?"

"जी, साज़िन्दे हरएक के अलग-अलग होते हैं।"

मैंने पूछा, "मान लीजिए, ऐसी बदकिस्मती है कि महीने डेढ़ महीने से आपके यहां कोई गाना सुनने नहीं आया, आप भी निराश हैं और आपके साज़िन्दे भी और मान लीजिए कि वे इधर-उधर अपनी ऊब मिटाने के लिए गप्पों में बैठ गए हैं और अचानक आपके यहाँ एक ग्राहक आ गया तो उस वक्त क्या होगा ?"

हुसाबाई ने कहा, "जी, हम किसी और को बुला लेंगे। हमारा काम नहीं रुकेगा।"

"आपको शराब पीने का शौक है ?"

"जी नहीं।"

"सिगरेट ?"

"जी नहीं, सिर्फ पान की गुलाम हूँ।"

"सिनेमा का शौक है ?"

"सिनेमा तो हुज़ूर घर में ही रोज़ होता है, कहां जाएँ ? वही दो-तीन रुपये जो वहाँ खर्च हों बाल-बच्चों में लग जाते हैं।"

मैंने पूछा, "अच्छा आप कुछ अपनी आमदनी से बचा भी पाती हैं ?"

शमामबानो साथ ही बोल उठी, 'हुज़ूर बचेगा क्या, पहले पेट से तो बचे। ज़माना देखिए कैसा जा रहा है और फिर से ग्यारह बजे का आर्डर हो गया है, तो अक्सर यह भी होता है कि बाईजी आधा शेर कह पाईं, हारमोनियम वाले ने बाल निकाले, तबलिया तैयार बैठा है कि बाई जी शेर पूरा करें तो वह अपनी

सफाई दिखाए—इतने मे सीटी हो गई—सब ठप। मुन्नी वालो से हाथ जोडकर कहा कि मिया जाइए। कभी तो पैसे भी वसूल नही हो पाते। सीटी बजती नही कि दरवाजे बन्द रोशनी बन्द, वरना चालान हो जाएगा।"

मैंने हसाबाई से पूछा, "अगर आपको खुद अपनी ही तबीअत की चीज़ गाने को कही जाए, या मान लीजिए कभी अपने ही दिल बहलाव के लिए आपका गाने को जी चाहे तो आप पक्का-गाना गाएँगी या हल्का-फुल्का ?"

'जी, पक्का।"

"रागो मे आपको सबसे ज्यादा कौन-सा पसन्द है ?"

हसाबाई ने कहा, ' बसन्तबहार।"

"आप लोग अपने धार्मिक त्योहार भी मनाती है ?"

"जी हा, होली, दीवाली, जन्माष्टमी, शुबरात्तरी सब मनाते हैं।"

"अच्छा मान लीजिए, नाच-गाने के लिए आपका सरकारी या सामाजिक तौर पर इम्तहान लिया जाए, तो क्या उसके लिए आप राज़ी होगी ?"

"जी हाँ, मगर न्यूटीशन (नोटेशन) से नही, जैसे हमने सीखा है, किलासिकल ढग का, जितना आता है सब सच्चा सुनाएँगे।"

नज़ीरबाई

आयु पचास बावन। देह भारी। रग गोरा। नाक नक्शा कुछ नही। कौम जुगेला। गोत और निकास फ़तहपुर, जिसका उच्चारण नज़ीरबाई ने फत्तेपुर' किया। इनके दो लडके है और दो लडकियां एक लडका खेती करता है, एक कानपुर के बिजली के कारखाने मे नौकर है। दोनो लडकियाँ छुटपन से ही एक-एक रईस की नौकरी म हैं। मुजरा करती हैं। खाना-पीना मजे म चल जाता है।

मैंने पूछा, "जिस दिन छापा पडा उस दिन क्या आपके यहाँ भी पुलिस आयी थी ?"

"जी नही। जिस दिन छापा पडा दोनो लडकियाँ मुजरे मे बाहर गई थी। घर पर मैं और मेरे नवासे थे। छापा हमारी यूनियन की मेम्बरो मे से किसी के यहाँ नही पडा। सिर्फ चार मम्बरो को छोडकर और कोई नही पकडा गई। उनको भी जाने किस लिए पकडा। घबराहट की भाग-दौड म शायद गिरफ़्तार हो गइ।"

मुन्नीबाई

आयु साठ से ऊपर। कौम गौड (ब्राह्मण), निवास बलरामपुर। मुन्नीबाई मात

बरस की आयु मे लखनऊ आयी थी। शिक्षा के सम्बन्ध मे पूछने पर कहा, "तालीम यही पर शुरू हुई और यही खतम भी हो गई।"

मैंने पूछा, "अपने तजरबे से यह बतलाइए कि तवायफ की जिन्दगी कैसी होती है ?"

"पहले जिन्दगी बडी अच्छी थी। डेरेदारा के पेशे मे इज्जत भी थी और हिफाजत भी। किसी की एक सरपरस्त के साथ पूरी उम्र गुजर गई, किसी की आधी। ऐसे ही सबका निभाव बखूबी हो जाता था।"

"आपके बेटे-बेटियाँ है ?"

"जी नही। एक भतीजी है, उससे मेरी एक नवासी है। मेरी भतीजी की सिविल मैरिज हो गई है।"

मैंने पूछा, "शादी के बाद भी क्या आपकी भतीजी नाच-मुजरे का पेशा करती है ?"

"जी नही।"

"भतीजी क्या अपने घर मे रहती है ?'

मुन्नीबाई न कहा, "जी घर ता यही है। दामाद हमारा यही रहता है। दामाद आप ही की कौम (ब्राह्मण) का है, जी हाँ। काम काज करता है। नौटकी का साज-सामान वग़ैरह बनाता है। मेरा एक भतीजा भी है, वह थवईगीरी का काम करता है।"

"और आपकी नवासी कितनी बडी है ?"

"जी वह भी अब एक की पाबन्दी मे है। नाच-गाना भी करती है"

मैंने पूछा, 'आप छापे मे गिरफ्तार क्या की गई थी ?"

"हुजूर काई ग़लती मुझसे नही हुई थी। घबराहट मे भागी और पकड ली गई। फिर कुछ बनाए न बना, हवालात मे जाना हो पडा।"

"आपको और कोई खास बात कहनी है ?"

मुन्नीबाई बोली, "जो और क्या कहूँगी ? बस हाथ जाड के गुजारिश है कि अब खुदा के वास्त बुढ़ापे मे फिर मेरी चुटिया न घसीटी जाए, जेल हवालात से बडा डर लगता है, हुजूर। अब कब्र मे जाने के दिन हैं, न कि जेल-हवालात मे।"

मुन्नीबाई अपने पोपले मुँह से हँस पडी।

अशरफबाई

आयु तेईस-चौबीस। रग काला। चेहरा तिकोना, नाक-नक्शा विशेषता-रहित।

मैंने पूछा, "लखनऊ मे कब से है ?"

"जी यही पैदा हुई।"

"कौम गोत और निकास क्या है ?"

"कौम जुगेले, गोत गौर, निकास अहरौरी, जिला सीतापुर।"

"आपने तालीम पाई है ? '

अशरफबाई ने कहा, "जी हा, पक्का गाना सीखती हूँ। मेरे उस्ताद कानपुर वाले रज़ाहुसैन खाँ साहब हैं। लड्डन खा मशहूर सारंगिये थे, ये उन्ही के भाई हैं।"

मैंने पूछा, "आपके पेशे मे ज़ाहिर है कि कुछ आदमियो का साथ भी रहता है। मसलन साजिन्दे है, दल्लाल है—या इनके अलावा भी कुछ और लोग होते हैं।"

"जी साजिन्दे तो होते हैं, मगर दल्लाल नही होते। जिसकी हैसियत है उसके नौकर-चाकर भी होते हैं।"

मैंने पूछा, "दलालो के बगैर आपके यहाँ गाना सुनने वाले कैसे पहुँच जाते है ?

"गाना सुनने वाले या तो इस तरह पहुँचते हैं कि तालीम हो रही है, राह चलते कानों मे भनक पडी, ऊपर पहुँच गए। या फिर कही से नाम सुन रखा है इसलिए पहुँच गए।"

"आपके यहा खुद आप ही गाती हैं या आपकी माँ वगैरह भी ?"

अशरफबाई ने कहा, "जी मैं गाती हूँ। वालिदा ज़ईफ हैं। एक बडी बहन हैं मेरी, उनकी शादी हो चुकी है। वह बाल बच्चेदार है।"

"उनकी शादी कौम मे ही हुई या बाहर ?"

'जी कौम म ही हुई है, मगर उनके यहाँ नाच-गाना नही होता। होटल का काम होता है।"

"आपके वालिद भी हैं ?"

"जी हाँ गाव मे खेती करते हैं।"

"खेती से कितनी आमदनी हो जाती है ?"

"यही कोई चार-पाच सौ रुपये साल के आ जाते हैं।"

"रोज़ के नाच-मुजरे म कितनी आमदनी हो जाती है ?"

"जी रोज़ का सवाल ही नही उठता, महीने मे दस-पन्द्रह मुजरे भी हो गए तो गनीमत है और फीस हमारी कोई मुकरर नही होती, इसलिए जो मुक्द्दर

में होता है मिल जाता है। किसी ने दस दिये, किसी ने पाँच, कोई यों ही चला गया।'

मैंने पूछा, "अच्छा एक दिन में घर पर आपके कितने मुजरे हो जाते हैं ?"

"जी रोज का सवाल ही नहीं उठता, और यों भी एक ही बैठक हो पाती है। रात के आठ-साढ़े आठ बजे से तो महफ़िल लगती है और ग्यारह बजे के बाद हुक्म नहीं। या कभी दिन में भी एक-आध कोई आ जाता है वो बात और है।"

'अच्छा कम-से कम आपने आमदनी तो दस-पाँच बतलाई और ज्यादा-से-ज्यादा कितनी आमदनी हो जाती है ? मतलब यह है कि कोई दिलदार इत्तफ़ाक से आ गया तो सौ-पचास भी एकमुश्त मिल जाते होंगे।"

"अरे नहीं हुजूर, अब वो ज़माने कहाँ और वह दिलदार भी अब कहाँ ! अब कोई ऐसा नहीं आता" वृद्धा मुन्नीबाई बीच में ही बोल उठी।

"फिर भी कभी कोई शाह खर्च भी आ ही जाता होगा ?"

अशरफबाई ने कहा "हाँ, भूले-भटके कभी कोई ऐसा आदमी आ भी गया तो ज्यादा से ज्यादा बीस-पच्चीस रुपये मिल गए। इससे ज्यादा तो कभी कुछ नहीं मिलता।"

"और बाहर जाने पर ?"

"जी, बाहर जाने पर सौ-सवा सौ डेढ़ सौ तक मिल जाते हैं। खाना खर्चा अलग मिलता है।"

मैंने पूछा, "शराब पीती हैं ?"

झिझक के साथ उत्तर आया, 'जी नहीं।"

"सिगरेट ?"

वही झिझक, वही कुछ नहीं।

"सिनेमा जाती हैं ?"

"जी हाँ, महीने में एक-आध बार तो हो ही आती हूँ ?"

'अपने सरपरस्त के साथ जाती हैं या सहेलियों घरवालों के साथ ?"

"जी, घरवालों के साथ। और मैंने सिविल मैरिज भी कर ली है। शौहर मेरे तिजारत करते हैं। नाच-गाने की इजाज़त उन्होंने दे रखी है मगर और सब बातों की पाबन्दी है।"

"अपनी आमदनी से महीने में आपको कुछ बच भी जाता है ?"

"बच कुछ नहीं पाता, चटनी-रोटी चल जाती है बस।"

"ज़ेवर-कपडा पर हर महीने आपका कितना खर्च हो जाता है ?"

"जैसी बचत हुई वैसा बनवा लिया। ज्यादा सजावट की ज़रूरत ही नही पडी।"

"आपको कच्चे और पक्के गाने मे क्या फर्क नज़र आता है ?"

अशरफबाई को कोई जवाब न सूझा।

मैंने पूछा, "मजहब की पाबन्द हैं ?"

"जी हाँ।"

"अगर आप का इम्तहान लिया जाए ?"

"हमे मजूर होगा।"

दिलरुबा

आयु लगभग चालीस-इक्तालीस। छरहरा बदन। आवाज जरा बैठी हुई। जोश बहुत, बक्वास ज्यादा करने की आदत। मगर बडी साफगो। दिलरुबाबाई करीब-करीब हरएक से बात करते हुए बीच म बोल पडती थी। इनकी भी कौम, गोत, निकास क्रमश जुगेला, गौड, अहरौरी जिला सीतापुर है। जुगेल ठाकुरो की कौम से इतनी तवायफे देखकर आश्चर्य हुआ। इन सबका धर्म-परिवतन हो चुका है और पीढियो पहले से। दिलरुबाबाई अथवा अन्य किसी भी रमणी को यह नही मालूम कि कब और किस पीढी मे उनका धर्म-परिवतन हुआ।

मैंने पूछा, 'आपके कितने लडके-लडकियाँ हैं ?"

"पाँच लडकियाँ और दो लडके। बच्चे दोनो पढ रह हैं मेरे, बडा ऐफे मे है, फ़र्स्टइयर मे पढता है। छोटा पाँचवे मे पढता है।"

"और लडकियाँ ?"

"जी, बडी लडकी की शादी बिरादरी मे हो गई है। यही लखनऊ मे रहती है। दामाद मेरा रेलवे मे काम करता है। उससे छोटी की भी शादी हो गई है। वह दामाद दिल्ली के हमदर्द दवाखाने मे नौकर है। उससे छोटी है, वह नाच-मुजरा करती है। चौथी लडकी नौ साल की है, वह अपनी बडी बहन के साथ ही परदे मे रहती है और सबसे छोटी छ साल की है, वह मेरे पास रहती है।"

मैंने पूछा, "आपकी जो लडकी नाच-मुजरा करती है वह किसी की पाबन्दी मे हैं ?"

"जी हा।"

"आप खुद भी नाच-गाने का काम करती हैं ?"

"जी नही। बात यह है कि शुरू से ही मैं एक साहब की पाबन्द रही। बच्चे

सब उन्ही से हुए। मैंने बच्चा की खातिर कभी पेशा नही किया। उन्ही का दिया हुआ एक जाती मकान भी है, उसी मे रहती हूँ।"

"आपका खचा बखूबी चल जाता है ?"

"जी हा। कभी जरूरत पडी तो दामाद मदद कर देते हैं, भाई कर देते हैं। यो ही चल जाता है।"

"अच्छा आपको कच्चा गाना पसद है या पक्का ?"

दिलरुबाबाई ने कहा, "ऐ हुजूर, कच्चा क्या पक्के गाने की बराबरी करेगा। या रोजी के लिए गाया जाए, वह बात और है, वरना जो पक्का गाना जानता है उसके लिए सब कुछ गाना आसान होता है। उसे सुर का अन्दाज होता है। पक्का गाना हुजूर बादशाह है।"

मैंने पूछा, "छापे मे आपके यहा पुलिस आयी थी ?"

"जी नही, यूनियन की मेम्बरों के यहा बस दो-तीन घरो में ही छापा पडा — एक मुन्नीबाई के यहाँ, एक सरोज मुन्नी के यहाँ और एक नजीरबाई बेचारी थी अस्सी-बयासी बरस की, वह पकडी गईं। वो तो बेचारी ऐसी सहम गइ कि जेल से आने के बाद दस पन्द्रह ही रोज मे अल्लामियाँ के यहाँ गयी। छापे मे हुजूर, चाहे किसी के यहाँ पडा हो या न पडा हो, मगर घबरा सब बुरी तरह से गईं। घबराहट के मारे कोई इधर भागा कोई उधर। मेरी दिल्लन के छः रोज का लडका था उसे लेके एक सौ दो बुखार मे गाँव भागी।"

"अच्छा क्या कभी गुण्डो से भी आपका सामना हुआ ?"

"जी खुदा का शुक्र है, ऐसी कोई वारदात नही हुई और जो कभी मान लीजिए कोई ऐसा बहका मतवाला आ भी जाए तो हम बहाना बना देते हैं कि मियाँ लडकी की तबीअत नही ठीक है, फिर किसी दिन तशरीफ लाइएगा।"

मैंने पूछा, "पुराने जमाने की तवायफो के बारे मे मैंने पढ़ा है कि बहुत-सी तवायफें शायर भी होती थी। क्या अब भी आप लोगो मे कोई शायर हैं ?"

"जी हाँ, काफी हैं।"

"आपको अपनी तरफ से भी कुछ कहना है ?"

"जी, यही कहना है कि इज्जत हमारी बनी रहे।"

नवाबजान (नवाबन)

आयु अधशती के लगभग। आँखो से लेकर गालो तक काले धब्बे उतर आए हैं। चेहरे पर एक फीकापन जरूर है, मगर यो हँसमुखपना भी है। कौम, गोत, निवास क्रमश जुगेल, गौड, अहरौरी है। कोइ बाल-बच्चा नही हुआ। नाच-गाते

का पेशा भी अब नही करती, करीब बीस बरस से छोड रखा है। एक बहन थी, वह जब पेशे मे आयी तो नवाबन ने छोड दिया। अब उसका भी इतकाल हो गया। किराये की आमदनी है, खेती है, गुजर बसर बा-इज्ज़त हो जाती है। सगीत-कलाकार यूनियन को खजाची हैं।

चन्द्रकुमारी

उम्र लगभग सोलह-सत्रह। रग गोरा। शरीर दुबला हाव-भाव मे दबा-ढकापन। देखने मे वेश्या की लडकी नही मालूम होती। यही पैदा हुई। मा-बाप है। सगे भाई-बहन कोई नही। पन्द्रह बीघे ज़मीन है। बाप खेती कराते हैं। खालाजाद तीन बहनें साथ रहती हैं। नाच मुजरा करती हैं। चन्द्रकुमारी की तालीम हो रही है। बख्शी खाँ सिखाते हैं। वैसे स्कूल के आठवे दर्जे मे पढती है। स्कूल मे किसी को नही मालूम कि तवायफ की लडकी है। मालूम हो जाए तो दूसरी लडकियाँ बुरा मानें और कोई खुददार लडकी फिर उस हालत मे लौटकर उस स्कूल मे हरगिज़ न जाएगी। सिनेमा देखने का टाइम नही मिलता, शाम को रोज़ी का वक्त होता है। क्लासिकल म्यूज़िक सुनने वाले लोग बहुत कम आते हैं। गजलो और फिल्मी गानो की फरमायश ही ज्यादा होती है। इसीलिए पक्के गाने हमारे यहाँ से खत्म होत जाते हैं। कौम राठौर। पुरखिनें चित्तोड से मौजा शिवाला ज़िला उन्नाव से आकर बसी। चन्द्रकुमारी जब पाच-छ बरस की थी तब यहाँ आयी थी मज़हब की पाबन्दी इसके यहाँ होती है।

जन्नीबाई

आयु पचपन-साठ लगभग। रग काला। दात टूटे हुए। सिर पर बराबर छोटा-सा घूघट। कौम जुगेले, गोत गौर निकास अहरौरी। अपने बचपन मे माँ के साथ लखनऊ आयी थी। एक भाई है, सुनारी का काम करता है। शुरू मे कुछ दिन नाच-गाना किया था, पर जब से एक की पाबन्दी हुई तब से छोड दिया। निजी मकान है। जिस पुरुष के साथ उम्र कटी वह अब बीमार है। भाई की एक लडकी गोद ले रखी है। वह नाच-गाने का पेशा करती है। एक स्कूल मे सिलाई-बुनाई का काम भी सीखती है।

शज्जोबाई

उम्र पच्चीस-छब्बीस। कद नाटा। चेहरा गोल। बदन भरा हुआ। हाव-भाव मे किसी किस्म का भी सस्तापन नही। शज्जोबाई के साथ उनका तीन-चार बरस का लडका भी आया था।

मैंने पूछा, "आपकी तालीम किस उम्र मे शुरू हुई?"

"मैं नौ-दस बरस की थी।"

"किससे सीखा ?"

"पहले फून खां उस्ताद सिखाते थे, फिर अहमद खां साहब ने सिखाया, अब फज़लहुसैन साहब तालीम दे रहे हैं।"

"यह आपको नाच की तालीम भी देते हैं ?"

"जी नहीं नाच मीर साहब से सीखा था, कत्थक।"

"आपको नाच ज्यादा पसन्द है या गाना ?"

शज्जोबाई ने कहा, "जी, अपनी पसन्द का सवाल नहीं, हमें लोगों की पसन्द का ख़याल रखना पड़ता है। वैसे मुझे तो गाना पसन्द है क्लासिकल पसन्द है, मगर सुनने वाले बाइसकोप का गाना पसन्द करते हैं। क्या करें ?"

"आप किसी की सरपरस्ती में हैं ?"

"जी हां, बारह-तेरह बरस से हूं।"

शमीमबानो ने बतलाया, "जिनके साथ हुजूर इनकी नथ की रस्म हुई उन्हीं के साथ अब तक हैं।"

शज्जोबाई बोली, "उन्हीं से तीन बच्चे भी हुए। दो गुज़र गए, यह राजा है। और अब पुलिस के छापे की वजह से वे भी किनाराकशी कर गए। अब कभी कभी आते हैं, देते भी अब रुपये में अठन्नी ही हैं। वैसे बेचारों का कारोबार बिगड़ गया है, वो भी क्या-क्या करें।"

मैंने पूछा, "महीने में कितने मुजरे हो जाते हैं आपके ?"

"जी इसकी कुछ न पूछें, महीनों मुजरा नहीं होता। ऐसे दो तीन-तीन महीने बैठे रहते हैं। या हो गए तो महीने में एक-दो मुजरे कर लिए। मुजरा की कोई खास आमदनी नहीं होती।"

"आपकी मौजूदा आमदनी में आपका खर्च चल जाता है ?"

"खर्च की बात तो यों है कि कुछ भाई मदद कर देते हैं, हमारी वालिदा ने एक से निकाह कर रखा है उनकी तरफ से भी इमदाद हो जाती है। कुछ अपने सरपरस्त से मिल ही जाता है। इसके अलावा दो पुराने जाती मकान हैं। खुदा अब तक तो यों इज्जत निबाहता चला आ रहा है, आगे की नहीं कह सकती।"

"आप बाहर भी गाने जाती हैं ?"

"जी हां, देहातों में शादी-ब्याह के मौकों पर जाती हूं।"

"क्या फीस मिलती है ?"

"यही चालीस-पचास ।"

मैंने पूछा, "आपने पढ़ना-लिखना भी सीखा है ?"

"जी, मामूली उर्दू जानती हूँ ।"

"किताबें पढ़ने का शौक है ?"

'जी शौक तो है, मगर ज्यादा नहीं आता ।"

"आप पक्के और कच्चे गाने में किसे ज्यादा अच्छा समझती हैं ?"

"जी, पक्के गाने को ।"

"क्या ?"

शब्बोबाई ने कहा, "जी इसलिए कि पक्के गाने से दुनिया में नाम होता है । मगर जो हमारे यहाँ आते हैं वो फ़िल्मी गाना पसन्द करते हैं, क्या करें ?"

"अपने मजहब की पाबन्द हैं ?"

"जी हाँ ।"

"मान लीजिए कि आपको शादी का मौका आए तो क्या पसन्द करेंगी ?"

"जी शादी कैसे हो सकती है ? हमारा तो पेशा यही है ।"

"सिनेमा देखने का शौक है ?"

"जी नहीं ।"

मैंने पूछा, "नाचगाने के अलावा और कोई काम आता है, मसलन सिलाई, बुनाई, कढ़ाई वगैरह ?"

"जी हाँ थोड़ा-बहुत काम लायक जानती हूँ ।"

नाज़नी

उम्र अट्ठाइस तीस । रंग साँवला । छरहरा बदन । नाक-नक़्शा न खास अच्छा न खास बुरा । कौम कथरिया । निकास काटी । जिला बाराबंकी ।

कथरिया ठाकुरों की निम्नतम श्रेणी में होते हैं । मुसम्मात नाज़नी की माँ बचपन में ही मर गई थी । सात-आठ वर्ष की आयु में अपनी फूफी के साथ लखनऊ आयी । तालीम यहीं हुई । पहले कल्लन खाँ मरहूम सिखाते थे, अब सफदरहुसैन खाँ सिखलाते हैं । उर्दू भी थोड़ी-सी पढ़ी । कोशिश बहुत की, आया नहीं । नाच-गाना दोनों ही सीखा । नाच काम लायक ही सीखा, गाने की तरफ़ ही रुझान रही । सरपरस्ती किसी की नहीं । मुजरे हो जाते हैं, मगर जब से छापा पड़ा तब से महीने में एक-आध बैठक हो गई तो हो गई, वरना नहीं होती । मकान जाती है । काटी में पच्चीस-तीस बीघा ज़मीन भी है । दो भाई हैं । एक खेत का काम करते हैं और दूसरे दरजी का काम ।

मैंने पूछा, "आपके दोनों भाइयों की शादी हो चुकी है ?"

"जी हाँ, एक की शादी हो चुकी है, दूसरे ने शादी नहीं की।"

"अच्छा आप लोगों के यहाँ जो भाई-बेटा की शादीशुदा औरतें होती हैं वो आप लोगों के साथ एक ही मकान में रहती हैं ?"

"जी हाँ, मकान तो एक ही होता है, मगर पार्टीशन होता है। हमारा हिस्सा बाजार होता है और उनका हिस्सा घर होता है।"

शादी-ब्याह की सहालग के दिनों में नाजनीबाई को भी अन्य गायिकाओं की तरह बरातों की महफिलों से साल-भर की रोजी-रोटी का प्रबन्ध हो जाता है। एक महफ़िल से लगभग सौ डेढ़ सौ मिल जाते हैं।

शराब सिगरेट का शौक नहीं, सिनेमा जाती तो है पर कम। गहने, कपड़ों के मासिक खर्च के सम्बन्ध में पूछने पर कहा, "जी गहनों की तो नौबत नहीं आती, कपड़े पांच-छः महीनों में एक-आध जरूर बनवा लेती हूँ।"

"मजहब की पाबन्द हैं ?"

"जी हाँ।"

"मौका मिले तो शादी करना पसन्द करेंगी ?"

उत्तर में नाजनीबाई मुस्करायी, कहा, "जी शादी से तो यही अच्छा है कि जैसे हैं वैसे ही रहें। तलाकों की खबरें सुन-सुनकर तबीअत घबराती है।"

शकीलाबाई

आयु बीस इक्कीस। रंग गेहुँआ। कद ठमका। नाक-नक्शा ठीक-ठीक। बड़ी शालीन लड़की है। देखकर यह कल्पना भी नहीं होती कि इसके संस्कार वेश्या-कुल के हैं। नजर नीची, बातचीत में गम्भीरता, दबे-ढके बैठना। अब तक मेरे सामने कोई भी लड़की इतनी सुशील नहीं आयी। शकीलाबाई अपने पिता के साथ आयी थी। कौम उसको मालूम नहीं। पिता ने ही बतलाया कि जो सफ़दर-बाई शज्जोबाई की कौम है वही उनकी भी है, यानी 'कंचन'। "वालिदा बताती थी कि हमारा निकास जौनपुर से है।" नाच-गाने की तालीम मिलती है। नाच अच्छन महाराज के शागिर्द वहाब-हुसैन साहब सिखलाते हैं। नाच में ज्यादा मन लगता है। उर्दू, हिन्दी, सीना-पिरोना, काढ़ना-बुनना आता है।

"मैंने पूछा, "बेटी, सुबह से शाम तक तुम्हारा प्रोग्राम क्या रहता है, सिलसिलेवार बतलाओ।"

"जी, सुबह पाँच बजे से डेढ़-दो घंटे तक गाने का रियाज करती हूँ। फिर

नहा-धो, नाश्ता वगैरह करके नाच का रियाज दो-ढाई घटे करती हूँ। फिर दो बजे मास्टर साहब आते हैं। शाम को मुजरे का वक्त होता है।"

"महीने मे कितने मुजरे हो जाते हैं ?"

"ज्यादा तो नही, तीसरे-चौथे हो जाते है ?"

"एक मुजरे मे कितना मिल जाता है ?"

"जी सात आठ, दस पन्द्रह तक।"

"किसी की सरपरस्ती भी हासिल है ?"

"जी नहीं।"

मैंने पूछा, "अच्छा बेटी, जिस तरह आजकल फिल्मी गानो की फरमायश होती है, उसी तरह क्या तुमसे लोग फिल्मी नाच दिखाने की माग करते हैं ? मसलन कत्थक मे तुम्हे फिल्म वालों की तरह रम्बा, साँबा वगैरह ये विलायती टुकडे भी शामिल करने पडते हैं ?"

"जी नही, हम तो कत्थक नटवरी नाचते हैं।"

"बेटी, तुम स्कूल नही जाती ?"

"जी नही।"

"क्यो ?"

"जी, तबीयत नही लगती।"

"क्यो ?"

"चेहरे पर हल्की-सी त्योरिया चढी, कहा, "मुझे वो लडकियाँ पसन्द नही।"

मैंने पूछा, "क्यो ?"

"उनमे आजादी ज्यादा है, मुझे पसन्द नही आती।"

"तुम्हे जेवरो का शौक है या कपडा का ?"

शकीला ने कहा, "जा शौक तो सब है मगर कहा से हा ?"

आमदनी के सम्बन्ध मे और प्रश्न पूछने पर पिता ने बतलाया कि न ता उनका निजी मकान है, न खेतीबारी। हारमोनियम की चार टयूशनें पिता करत हैं। कही से दस मिल गए, कही से पन्द्रह। शकीला के पाँच छाटे भाई-बहन हैं। उनमे तीन स्कूल मे पढते हैं। घर का खर्च पिता की टयूशनो और शकीला के मुजरो स दुक्खम-सुक्खम चल जाता है।

डेरेदार वेश्याआ के रूप मे इस देश के महाजनी सामतो समाज की दन स्वरूप एक बडे पुराने इतिहास की वतमान कडो को निकट से देखत हुए इन दिना मेरा मन पुराने और नये इतिहास के बडे-बडे चढत फव्वारे और गिरत झरने

देखता रहा। देवदासियो-गणिकाओ-डेरदार तवायफो के वर्तमान पराभव को देखने के बहाने से ही मेरे सामने प्रचण्ड नन्दवंश का महा साम्राज्य चढ़ता गिरता हुआ आया। चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक का वैभवशाली मौर्य साम्राज्य अपने पतन को लेकर याद आया, हिन्दू शासनकालीन भारत के स्वर्ण-युग को लाने वाले महान् गुप्त साम्राज्य के पतन की कहानी राखालदास बंद्योपाध्याय के उपन्यास 'शशांक' के रूप मे याद आई, अकबर शाहजहाँ और औरंगजेब के सिंहासन पर बैठने वाले उस जहांदारशाह की कहानी भी याद आई जो लाल कुँवर वेश्या के सिलसिले मे पहले ही लिख चुका हूँ। ये डेरेदार तवायफे, खासतौर पर उनकी नई लडकिया, अच्छी-बुरी कैसी भी सही, मगर एक शानदार परम्परा की अंतिम कडी के रूप म मेरे सामने आ रही थी। समस्या तो सचमुच इनकी ही है।

यह इतिहास की मजबूरी है कि मानव-सभ्यता से अगले विकास मे अब स्त्री समाज के दो वर्ग न रहे। जिस युग मे सामूहिक रूप से नारी पुरुष की समता चाहती और मागती है, उस युग की प्रबुद्ध नारी का सहज स्वाभिमान पुरुष की गलत ढग की गुलामी का यह साइनबोर्ड अब बरदाश्त नही कर पाता। उसके इस स्वाभिमान के तेज स्वरूप मानव-सभ्यता नया उजाला पा रही है। मगर इसके साथ ही-साथ यह बात भी सच है कि मानव-सभ्यता के नये विकास में विज्ञान का सबसे बडा हाथ होगा। मानव-संस्कृति के सूत्र अब तक मुख्य रूप से धर्म के इजारेदारो ने ही सम्हाले, राजा साहब और सेठजी भी इस सूत्रधार कम्पनी के साझेदार रहे, पर अब बात बिलकुल बदल रही है, मनुष्य का सृजनात्मक सौन्दर्य अब ऐसे अनेक रूपो मे साकार हो गया है जिनकी इसान ने सदियों तक केवल कल्पना ही की है। नया विज्ञान-मण्डित जगत् हमे अब नई कल्पनाओ मे उडने के लिए बाध्य कर रहा है। मानव अपनी अब तक की औसत समझ का जाना-माना-पहचाना धरातल छोडकर नई औसत-बुद्धि का धरातल पाने जा रहा है। आज का युग बीच के सूने झरोखो का युग है।

इस बात को उदाहरण देते हुए स्पष्ट करना चाहूँगा—मेरे बचपन-किशोरावस्था मे रात के समय लैम्प-लालटेन के प्रकाश मे ही हमारा काम बखूबी चलता था, गलियो मे आते-जाते घना अँधेरा मिलता था, मगर उनमे बे-झिझक आने-जाने की आदत थी। बहुत-सी गलियाँ आज भी उतनी अँधेरी हैं, अनेक घर लालटेनो और ढिबरियो मे ही रात का प्रकाश पाते हैं। बहुतो से वह अँधेरा अब भी सध जाता है, पर मुझसे नहीं सध पाता, मेरे बच्चो से तो और भी नही। यह उदाहरण मेरा ही नहीं, किसी के लिए भी लागू हो जाएगा। ट्रेन पर यात्रा

कर चुकने का अभ्यासी भारतीय जन (विनोबा जैसे मिशनरियों की बात छोड़ दें) अब पैदल, घोड़े या ऊँट-बैलगाड़िया पर चढ़कर यात्रा करना पसंद नहीं करेगा। यात्रा का विचार आते ही दुनिया का औसत मानव आज बसों और रेलगाड़ियों के रूप में ही सोचता है, यानी इस सम्बन्ध में उसकी चेतना ही बदल चुकी है। विज्ञान का प्रभाव पिछड़े-से-पिछड़े मानव समाज में, जहाँ तक जितना पड़ चुका है उतना ही वहाँ की पूर्व चेतना और वर्तमान चेतना में अन्तर भी पड़ चुका है। एक मजे की बात मैंने,यह भी देखी है कि जो मनुष्य जितनी ही अधिक वैज्ञानिक उपलब्धियों का उपयोग करता है या उनके सम्बन्ध में अच्छी जानकारी रखता है उसकी औसत चिंतन-पद्धति में, विचारों और निष्कर्षों में तथा उस मनुष्य की औसत चिंतन-पद्धति, विचारों और निष्कर्षों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है जो नई वैज्ञानिक जानकारियाँ न रखने के कारण कुछ सही, कुछ ग़लत परम्परागत रूढ़ियों के मिले-जुले धुँधले प्रकाश में रहता है। यह बात मेरी दृष्टि में नई सचाई को सामने ले आती है। हम मानें या न मानें, विद्रोह के ऊँचे-ऊँचे झण्डे खड़े करें या नारों की अंधी गलियों में दीवारों से अपना सिर फोड़ें, फिर भी नये युग का सत्य टाले नहीं टल सकेगा। हो सकता है कि आपमें से कोई इसे कोरी भावुकता ही मानें, मगर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि विज्ञान का सत्य मानव को खाने नहीं आया। विज्ञान की कृपा से युद्ध चाहे हो भी जाये या अनेक अलग-अलग युद्ध-क्षेत्रों और मोर्चों में बँटकर तीसरा महायुद्ध एक युद्धमाला के रूप में पृथ्वी-भर में ताण्डव करे—सम्भव है, फिर भी जीने के लिए विज्ञान की कृपा से ही ऊँची महत्वाकांक्षा पा चुकने वाला मानव न तो अब अपने को ही सम्पूर्णतया नष्ट करेगा और न अपनी धरती माता को ही। इसलिए मैं दृढ़ आस्थापूर्वक मनुष्य के जीने की बात सोचता हूँ। हाँ 'जो जीवै सो खेलै फाग' तो होगा ही और इस फाग में दुनिया का पिछड़े-से पिछड़ा व्यक्ति भी आज की चेतना से कहीं अधिक विकसित हो चुका होगा। मैं कम-से-कम अपने इस सम्बन्ध में तो सहसा दम भरकर यह न कह पाऊँगा कि नई दुनिया की सेक्स सम्बन्धी मान्यता क्या होगी, फिर भी इतना अवश्य देख रहा हूँ कि सतीत्व की भावना के पीछे से पति-पुरुष के उत्तराधिकारी पैदा करने वाली सामाजिक चेतना का लोप हो जाएगा। तब, मेरा तो जी कहता है, सतीत्व की भावना अधिक मुक्त, स्वस्थ और प्राणवान् होकर विश्व नारी में निखरेगी।

विद्वानों ने हमें बताया है कि मानव-सभ्यता का एक ज़माना ऐसा था जब दुनिया की मालकिन औरत और पुरुष प्रजा-जन था, फिर दूसरा ज़माना आया

तो पुरुष दुनिया का मालिक हो गया, नारी दासी हो गई। अब जमाना बराबरी का आ गया है। मैंने माना कि अभी नई औरत म किसी हद तक ठीक-ठीक बराबरी की समझ नही आई। लिपस्टिक-लोक मे मैंने देखा है कि नारियाँ पुरुष की बराबरी तो चाहती हैं, मगर ऐसा कि पुरुष उन्हे गुडिया की तरह हथेली पर उठा ले और अपनी नाक से उसकी नाक की काट तोल नोक साधकर बराबरी दे द। मेरा खयाल है कि सदियो तक औरतो को घर घुस्सू और दबैल बनाए रखने वाले कुलीनो के विश्व-व्याप्त वधूवाद को ही यह एक प्रक्रिया है। इसके दुष्परिणामो की मैं अधिक चिन्ता नही करता, नया होश आने पर मनुष्य का काम-व्यवहार भी बदल जाता है।

बम्बई आदि नगरो मे जहा ट्रेनो, बसो और ट्रामो पर कोई भी जाने अन-जाने स्त्री पुरुष एक सीट पर साथ-साथ बैठ जाते हैं, वहा उनम किसी को भी वह अचेत काम-सनसनाहट नही होती जो उत्तर प्रदेश के युवक युवतिया म आज भी ऐसी परिस्थिति मे सम्भव है। मेरा खयाल है, हमारे यहाँ के लडको की गदी छेड-छाड का कारण यही है कि हमारे यहा स्त्री-पुरुषो के बीच मे मुसल-मानी मुगलिया जमाने का परदा पड चुका है। गाधी-आन्दोलन और नये युग की कृपा से हमारे लडके लडकिया यद्यपि अब पहले से बहुत बदले हैं फिर भी हमारे यहा सामन्ती दुराचारो की चेतना उनके यौवन की रगीन कल्पनाओ को उच्छृङ्खल बना जाती है। बेचारे अपने पुरखो के इतिहास का मानसिक दुष्परिणाम भोग रहे हैं। उत्तर प्रदेश मे भी ब्रज क्षेत्र की नारी अवध क्षेत्र की नारी से अपेक्षाकृत अधिक मुक्त है। मैंने देखा है वहा के गाव की स्त्री पुरुषो से खुले आम जैसे पैने मजाक कर लेती है वैसे हमारे यहा की स्त्री नही कर पाती। वहा स्त्री और पुरुष की सहज समानता और मर्यादा है। शहरो मे ता बात कुछ और ही हो जाती है मगर अवध और ब्रज की ग्राम-नारियो की स्थिति मे अन्तर है। हमारी ग्राम-नारी भी बहुत घर-घुस्सू और दबी हुई है। अवध मे बरसाने की होली की कल्पना भी नही की जा सकती। इसलिए हमारे यहाँ की होली का रूप विकृत है। होली की गालिया मे यहा नाना उच्च जातीय वधुओ का मान मदन करने की ललक रहती है।

इस ग्राम-वधू के लिए भी वेश्या की समस्या रही है। अवध के सीतापुर ज़िले मे पतुरियनपुरवा और नटनिनपुरवा नाम के दो गाँव मौजूद हैं ही, और भी न जाने कितने होंगे, मगर यहा तो एक चावल टटोलने की बात है। बडी इच्छा थी कि स्वय जाऊँ, फिर व्यावहारिक दृष्टि से सोचा। लखनऊ की डेरेदार

वेश्याओं की बहुत-सी शंकाओं और उलझनों में घेरे से बार-बार घिरकर और फिर उबर करके ही मैं उनसे इंटरव्यू का कुछ सिर पैर निकाल सका था, गाँव में तो और भी शंकाएँ उठेंगी। मेरे सामने दो दिक्कतें आती हैं—एक तो खद्दर पहनता हूँ, दूसरे कुछ आभिजात्य-वर्ग का भारी भरकम-सा आदमी लगता हूँ। खादी छोड़ दूँ तो भी अपना रूप-आकार क्योंकर छोड़ पाऊँगा। ग्रामीण वेश्याओं के लिए मैं अपने हर प्रश्न के साथ शंका-भरा अपरिचित व्यक्ति ही बना रहूँगा। चिरंजीव लवकुश मेरे लिए लिखता है, यह निरालाजी, डॉ० रामविलास शर्मा, नरोत्तम नागर और मेरे पुराने आदरणीय साथी, अवधी के सुप्रसिद्ध कवि और खड़ी बोली में कहानी-लेखक स्वर्गीय बलभद्र दीक्षित का चतुर्थ पुत्र है, सौंपा हुआ उत्तरदायित्व यथाशक्ति कुशलता से निबाह लाता है, उसी जिले का भी है। मैंने प्रश्नावली उसे सौंप दी और आवश्यक आदेश देकर भेज दिया।

* ग्राम्य परम्पराएँ ·

पतुरियन पुरवा

इस गाँव की सब तवायफें भागकर सिघौली महमूदाबाद रोड पर स्थित मडिया गाँव मे बस गई हैं। सिफ एक बुजुग मिली। उन्होने ही बतलाया।

मलका बेगम

आयु लगभग सत्तर वर्ष। कौम मुसलमान शेख। आयु को देखते हुए स्वास्थ्य काफी अच्छा है।

आपके यहाँ यह पेशा कब से चलता है, पूछने पर मलका बेगम ने बतलाया कि यह तो उन्हें याद नही, लेकिन इतना जरूर याद है कि उनके बचपन म उनकी माँ सीतापुर मे रहती थी। उनकी माँ दो बहनें थी और नाचने-गाने का काम करती थी। जो छोटी थी उनके दो लडकियाँ थी—खूबन और जद्दन। मलका बेगम अपनी माँ की अकेली सन्तान थी। लेकिन उनकी माँने अपनी बहन और उनकी लडकिया को जीवन-भर अपने ही पास रखा। मलका बेगम और उनकी दोना मौसेरी बहने खूबन और जद्दन की तालीम साथ-ही साथ हुई। सीतापुर के पास ही स्थित छेहेलिया गाँव के जोधे राधा उनके उस्ताद थे, उन्होने ही नाच-गाना सिखाया। मलका बेगम और खूबन ने नाचना-गाना सीख लिया, जद्दन थोडा-बहुत गाने लगी, मगर नाचना नही आया।

एक बार राजा महमूदाबाद के यहाँ मुजरा करने आयी थी। वही कबरा के राजा भी आये हुए थे। कबरा के राजा साहब 'राति भरि नाचु देखिनि औ कुछ असकै आसिक हाइगे' कि इस गाँव के आस-पास दो-सो बीघे जमीन मलका को दे दी और अलग-अलग तीन घर भी बनवा दिए। तभी से मलका बेगम सीतापुर छोडकर इस गाँव मे बस गइ। उनको माँ और मौसी का यही आकर स्वगवास हुआ। माँ अपनी मौत मरी और मौसी को साप ने काट लिया। जद्दन के ऊपर कोई आसेब था, कुछ दिन उचटी-उचटी साथ रही, फिर एक दिन पता नही कहाँ चली गई।

मलका बेगम राजा साहब कबरा के साथ ही रही। खूबन राजा साहब के

एक मामूजाद भाई थे, उन्ही की पाबन्दी मे रही। मलका बेगम की पाच लड़कियां थी। एक भड़िया म एक लाला के घर बैठी है, तीन-चार लडके लडकी हैं, नाती-पोते वाली है। उससे छोटी दो लडकियां हैजे मे मरी और दो तालीम पाकर कुछ दिन नाच-मुजरा करती रही! फिर एक तो महाराजा के घर बैठ गई और दूसरी अहरौरी गांव के एक धनीमानी कुरमी के घर।

फल्लोबाई

आयु सत्रह-अठारह वर्ष। देखने मे सुन्दर लगती है। हरदम हँसती रहती है। पचास वर्ष की मां और बेटी के साथ ही रहती हैं। बाहर सुनने म आता है कि दोना शराब पीती हैं और अभी हाल मे ही एक कुकअमीन को दिवालिया भी बना चुकी हैं। उस बेचारे की नौकरी भी चली गई।

मैंने पूछा, "आप इस पेशे मे कब से आयी?"

"हमारा खानदानी पेशा है," कल्लोबाई ने कहा।

"आपके कोई बाल-बच्चा है?"

"जी नही।"

"साई अर्थात् बाहर की महफिलो के अलावा आप अपने घर मे भी मुजरा करती हैं?"

"जी हां, कभी-कभी जब पाच दस लोग इक्ट्ठा हो जाते हैं तो नाचना ही पड़ता है।'

"एक दिन की बैठक मे क्या आमदनी हो जाती है?"

कल्लोबाई कुछ झिझकते हुए बोली, "यही कभी दस, कभी पन्द्रह, हद-से-हद बीस।"

"महीने मे कितनी बैठकें हो जाती हैं?"

"इसका कुछ ठीक नही। किसी महीने मे एक, किसी मे दो, किसी मे एक भी नही।"

मैंने पूछा, "आप बाहर जाने पर क्या लेती हैं?

"यही चालीस रुपये रोज और खाना। हां, कभी-कभी सील मुलहजे मे कुछ कम भी ले लेते हैं।'

"आप किसी एक की पाबन्द हैं या जो कोई पैसे [illegible] हैं?"

झेंपते हुए बोली, "जी हां, अं-अं [illegible]

"सिनेमा देखा है?"

झेंप मिटाते हुए बोली, "जी, देखा है।"

मैंने पूछा, "कहाँ, सीतापुर या लखनऊ में?"

"जी, सीतापुर और लखनऊ दोनो जगह देख चुकी हूँ।"

"अकेले या किसी के साथ?"

इस प्रश्न का उत्तर नही मिला। मैंने फिर पूछा, "आपने पक्का गाना सीखा है।"

"जी, सीखा है।"

"किससे सीखा है? आपके उस्ताद कौन हैं?"

"जी, सीखा तो हमने दबीपुर के घिस्सू उस्ताद जी से है, लेकिन अब तो वह लखनऊ मे मेहदी के साथ चले गए हैं।"

"अब आपके साथ साई कौन बजाता है?"

"उसी गाँव के रज्जाक सारगी बजाते हैं और आप ही के गाँव (अम्बरपुर) के बेचेलाल राधा तबला।"

"सहालग मे अन्दाजन कितनी आमदनी हो जाती है?"

वल्लोबाई ने कहा, "इसका कुछ ठीक नही। हा, खर्च-वच निकालकर किसी साल पाच सौ, किसी साल छ सौ, कभी कुछ, कभी कुछ बच जाता है।"

"इतने मे आपका साल-भर का खर्च चल जाता है, या आमदनी का और भी कोई जरिया है?"

"जी, थोडी-सी खेती भी है।"

"उससे कितनी आमदनी हो जाती है?"

"जी, खाने-वाने का खच चल जाता है।"

मैंने पूछा, "साल-भर मे आप कपडे-गहने कितने तक के खरीद लेती हैं?"

"गहनो का तो कुछ ठीक नही, जब जैसा हुआ किया, कपडे जरूर दो-तीन बार बनवाने पडते हैं। उसम सौ-सवा सौ रुपये साल का लगता होगा।"

"आप आमदनी मे से कुछ बचा भी लेती हैं या नही?"

"जी थोडा-बहुत कभी बच भी जाता है, तो साहब इसी साल दस बीघे खेत लिया है। अब तो कर्जदार हो गए हैं।"

"आप कितने सगे भाई-बहन हैं?"

"जी, दो बहनें और एक भाई।"

"दोनो भाई-बहन आपसे छोटे हैं या बडे?"

"जी, दोनो बडे हैं।"

"वे क्या करत हैं ?"

"भाई की दूकान है। बहन ने निकाह कर लिया है, यहीं मडिया मे ही एक मुसलमान कबरिया के साथ। भाई का ब्याह हो चुका है।"

मैंने पूछा, "बनाव-सिंगार के लिए आप किन-किन चीजो का इस्तेमाल करती हैं ?"

हँसते हुए बोली, "मालूम होता है आज आप सभी-कुछ पूछ लेगे। आपका ब्याह हो चुका ?"

मैं धर्म-सकट म पड गया। इटरव्यू लेने गया था, खुद अपनी इटरव्यू देनी पडी, फिर भी काफी सम्हलकर बोला, "जी हाँ।"

"तो आप अपनी बीबी को बनाव सिंगार के लिए क्या-क्या लाकर देते हैं ?"

मैंने कहा, "वैसे तो खूबसूरती को बनाव-सिंगार की आवश्यकता ही नही, फिर भी कभी-कभी टिकली, बिंदी, क्रीम, पाउडर, सेंदुर वगैरह लाना ही पडता है।"

"तो साहब, यही सब हम भी इस्तेमाल करती हैं।"

"आपको अपनी तरफ से और कुछ भी कहना है ?"

"जी हा, फिर कभी तशरीफ लाइएगा।"

मुन्नीबाई

आयु पचास-बावन के लगभग। सारे बदन पर बुढापा छाया हुआ। सुनायी कम देता है। मेरे पहुँचने ही प्रश्नो की झडी लगा दी—कहाँ से आये हो, किस गाँव मे रहते हो, किसके लडके हो ? मेरा परिचय सुनते ही अपनी खाट पर से उठकर खडी हो गई, मुझे बिठाया। नौकर चारा काट रहा था, उसको बुलाकर कुएँ से पानी खीचने तथा बिटिया से शरबत बनवा लाने का आदेश दिया, "ई अम्बरपुर त भइया आये हैं।" फिर पास ही रखी मचिया पर बैठ गई। इतनी देर खडी रहने और नौकर को आदेश देने के उत्साह के बाद वे अब थकन से हाँफने लगी थी। कुछ देर बाद बोली, "बेटा, बडी बुलन्द है हमारी किस्मत, जो तुम हमारी देहरी पाकु केहेव तुम्हार बप्पा तौ बडे नीक रहैं" गडढो मे घुसी हुई आँखो मे आँसू छलक आए, जिन्हें वे अपने आँचल से पोछने लगी। शरबत पानी होते करत बातें चल पडी। मुन्नीबाई के जीवन की सबसे बडी घटना मेरे पिताजी के विवाह के अवसर पर मेरी ननिहाल से होने वाली महफ़िल में घटी थी। मुन्नीबाई की आयु उस समय पन्द्रह-सोलह के लगभग रही होगी। बरातियो में नील

गाव के कुँवर साहब भी गये थे। मुन्नीबाई के शब्दों मे कुँवर साहब, "बडे सीधे-साधे, भोले-भाले, गोर-गोर दयाथे मा (देखने मे) बबुआ अस बडे नीक लागति रहें। मस भीजत रहै, बेटा देखते-खन न जाने कउन जादू अस होइगा।" उस दिन महफिल म देवीपुर के उस्ताद घिसऊ, जिन्हे मुन्नीबाई वस्ताज कहती थी, सारगी बजा रहे थे और बलदेव तबले पर सगत कर रह थे। मुन्नीबाई पुरानी याद मे रस-मग्न होकर अपनी उस रात का इतिहास सुना रही थी, कहने लगी कि वैसे तो "नाचु गाउनु हमार पचन का काम आय" मगर उस दिन कुँवर साहब को देखकर मुन्नीबाई के भीतर मानो कोई दूना बूता लेकर बोलने लगा। रात-भर नाच हुआ, सब बैठे रहे, महफ़िल टस-से-मस न हुई—"नाचु बन्द करवाय के जो सुई डारि देव तौ वहू की खनक मालुम परि जाय"—और मुन्नीबाई को उस दिन न जाने क्या हो गया कि नाच के सब फेरे जल्दी जल्दी घूमकर वे बार-बार 'उनही' के पास आ जाएँ—"ना जानै बेटा को खँइचि लावै।"

भोरहरी रात कहरा नाच शुरू हुआ। मुनीबाई भी सुर भर के गाने लगी "—सैंया मिलने की बेर राजा मिलने की बेर बिछुड़ना किन्हे किया—औ झूँकु लइके जो उनके गरे मा ग्वाफा (बाहा का गोफन) डारा, उइ कुछु झिझके।" अपने गले से मुनीबाई की बाँहें निकालकर सोने की छ तोले की माला मुनीबाई के बाएँ हाथ रखकर धीरे से मुट्ठी दबा दी। वैसे तब तक न जाने कितने ही इनका हाथ छू चुके थे, कई रुपया या और कुछ देने के बहाने दबा भी चुके थे—"मुलु उनकी छुआनि न जाने का रहै हमार सबि दयाह (देह) झनझनाय उठी।" मुझसे कहने लगी, "बेटा हमतो साँच्र बताये, हमरे दिल माँ उइ असके गडिगे रहै कि उइ साइनि उनके समहे सोना चादी रुपया पैसा सब कुरबान रहै।"

कुँवर साहब की माला हाथ म लेकर मुनीबाई फिर नाचत-नाचते एक फेरे म जाकर फिर उन्ही के गले म डाल आई। कुँवर साहब ने आखो-ही-आँखो म कुछ नाही-नूकुर भले की, पर मुँह से कुछ बोल न पाए। हाथ आयी लक्ष्मी के इस तरह लौट जाने पर मुनीबाई की माता को बहुत बुरा लगा। व अपनी बेटी पर बड़ी बिगडी।

दूसरे दिन से कुँवर साहब भी कुछ झुके और बालने-चालने लगे, फिर तो चार दिन मे ही ऐसी मुहब्बत हो गई कि वे इन्हें अपन साथ ही नीलगाँव ले गए। कुँवर साहब के पिता ने मुनीबाई को अपने घर मे न रहने दिया। तब कुँवर साहब ने अपने गुजारे की जमीन से पचास बीघा खेत दिये और पन्द्रह दिन के अन्दर-ही-अन्दर यह घर भी बनवा दिया जिसमे मुनीबाई रहती है। "तबले हमार

नाचबु गाउनु तौ गवा छूटि, उइ रोजु सझा की बरिया आवैं औ भोरहे चले जायँ।" मुन्नीबाई के लिए 'दुखियऊ' कुँवर साहब ने फिर अपना ब्याह न किया। उन्ही से मुन्नीबाई को तीन सन्तानें हुई। एक लडका जो महमूदाबाद मे दुकान करता है और दा लडकियाँ हैं। एक लडकी नाच-गाने का पेशा करती है और दूसरे ने एक कबाडिये से ब्याह कर लिया है। अपनी नाचने-गाने वाली बेटी के लिए भी मुन्नीबाई चाहती तो यही थी कि कही हिल्ले से लग जाती—"मुलौ यह अपने नाचै गावै के मारे कुछौ नई करी।"

मैने कहा, "अच्छा अम्मनि, याक बात अउरि बताय देव। अपने सिगार पटार मे तुम का लगउती रही, यह पाउडर क्रीम।" "अरे अल्ला अल्ला बेटा, ई करीम पउडर नावें कबहूँ नाही जानेन।" ये तो सब आजकल की लडकियाँ पोतने लगी हैं, मुन्नीबाई तो कभी साबुन से अपना सिर भी नही मीजती थी। सरसो की खली और दही से उन्होंने सदा मीजा और हल्दी-राई का उबटन लगाया, "नीक नीक खाये पिये, चेहरा आपुइ रूपु अगार अस दहका करति रहै।"

मुन्नीबाई ने बतलाया कि ठाकुरो और जागाओ से पैदा पातुर कौम जगेल कहलाते हैं। इस कौम के ठाकुर सभ्य समाज मे नही होते।

देउरी गाँव के फेक्कू उस्ताद

देउरी मे अब केवल चार घर पतुरियो के रह गए हैं, बाकी और सब नटिनिन पुरवा चली गई हैं। नटिनिन पुरवा नैमिषारण्य पूरब सिधौली आनेवाले कच्चे गलियारे पर ही पडता है। इस गाँव की पतुरियाँ अब भी हर महीने की चौदस-अमावस-परेवा को गाँव के पास ही मैदान मे शामियाने लगा गैस-बत्ती के उजाले मे मुजरे करती हैं। नैमिषारण्य मे हर अमावस को मेला होता है। वहीं से लौटते हुए अक्सर रसिक यात्री इस गाँव में रुका करते हैं। देउरी गाँव मे जो चार घर पतुरिया वश मे रह गए हैं उनमे अब सभी ब्याही या घर बैठी ही हैं। सभी के पास जमीन है, खेती होती है। एक बुजुर्ग (फेक्कू उस्ताद) हैं, उन्होंने ही कुछ बाते बतलाईं। वे बोले, "बहुत दिन की बात है हमारे एक पुरिखा यहाँ आये थे। जैरामसिंग जागा उनका नाम था। उनकी चार बिटिया रही—मुन्नी, मूगा, रामकली और रामजिलाई। चारो नाचती-गाती रहीं। कोई बँधा राजिगार ता था नही, इधर-उधर मेला ठेलो मे उनका काम चलता था। एक बार एसा हुआ कि कुँअरपुर मे दशहरा का मेला भवा, इनका डेरा भी वहाँ लगा था। नाच गाना होता रहा। कुँअरपुर के राजा साहब भी एक चक्कर रोज मेले का

लगाते। राजा साहब मिजाज से बड़े रसिया आदमी रहे। इनको मेले मे देखा फिर कोठी पर बुलाया, बातचीत की और अपने यहाँ रजवाडे म नाचने-गाने के लिए रख लिया। तो मइया बाद म फिर रामकली और मूँगा पर बहुत मेहरबान भये। दोनो को अच्छी तालीम देवाई और अपने साथ अच्छी-अच्छी जगहो, ब्याह-बारातो मे ले जाने लगे। इन दोना के नाच-गाने ने उस वखत अवार मे धूम बाँध रखी थी। रजवाडे मे भी इनको बडी इज्जत रही। सब इनको ठाकुर साहब की रखैल कहते थे। मुन्नी और रामजिलाई भी उनकी परवरिस पाती रहीं। फिर मुन्नी, रामजिलाई के घर देउरी मे बनवा दिये। वो वही रहने लगी। रामकली के दो लडके हुए। एक मैं और एक घिस्सू। हम दोना भाइयो ने रजवाडे मे रहकर ही तालीम पाई और यही गाते-बजाते रहे और फिर देवीपुर में ही राजासाहब की किरपा से कुछ जमीन भी मिली। हम लोग वही बसे थे। हमारी दो बहनें भी थी राजकुआरा और राजपता। दोनो राजासाहब के लडके के साथ ही रही, नाचती गाती रही। जमीदारी-उन्मूलन के बाद मे वो भी देउरी चली आई, अब यही पर काश्तकारी करवाती हैं।

"मूगा की तीन लडकियाँ थीं—मेहदी, मूला, छोटकन्नी। पहले रजवाडे मे ही नाची, फिर इधर-उधर नाची, बाद मे घर बैठ गई। छोटकन्नी तो भीमखार के एक पडा के घर बैठ गई, पूरी घर गिरस्तिन बन गई है। मेहदी की छुट्टा-छुट्टी हो गई। वह फिर से लखनऊ मे नाचने-गाने लगी। अब सुना है कि छापे मे भागकर वह भी नटिनिन पुरवा चली गई है। यहाँ तो सब अपनी-अपनी घर गिरस्ती मे फँसी हैं, और किसी से क्या पूछोगे। जो रहा वो सब हमने बता दिया।

फेकू काका ने बतलाया कि हम लोग भाट जागाओ मे जो ठाकुरो के सपर्क मे रहे, उन्ही की सन्तानें जगैल कहलाती हैं।

मैंने लवकुश 'कचन जाति के सम्बन्ध मे भी जानकारी प्राप्त करने के लिए कहा था। जगैलो का पता तो चल गया, पर कचनो के सम्बन्ध म कुछ न मालूम हो सका।

*सीने मे जैसे कोई दिल को मला करे है

मेरी ये भेंटें चल रही थी। तवायफा के बाजार मे इनकी चर्चा भी ज़ोर-शोर से हो रही थी। मेरे कुछ-एक मित्रो के मित्र और परिचित इन तवायफो मे से कइयो के सरक्षक भी हैं। हाट-बाट मे आते-जाते किसी न-किसी से इस सम्बन्ध मे भी मुस्काना-मिली चर्चा भी हो जाती थी, "हूँ-हूँ आजकल तो आप जाँच कर रहे हैं। सुना है पुलिस वालो से भी ज्यादा कडे सवाल आप करते हैं। वो ' ' कहती थी मुझसे। तो गुरुजी, वाक्ई सबको गौरमेन्ट पकड ले जाएगी ? अब आप ही के हाथ लाज है। आप जिसकी सिफारिश कर देगे वह तो बच ही जाएगी। जरा उसका खयाल रखिएगा। गुरुजी बहुत अच्छा गाती है।"

इस तरह की सिफारिशें भी पहुँचने लगी। एक और भी मजे की बात होने लगी। कुछ वेश्याओ के आशिक अपनी-अपनी प्रेमिकाओ को बचाने के फेर मे दूसरियो की शिकायतें सुनाने के लिए आने लगे। एक-आध छोटी उमर की वेश्या भी अपनी टोली से अलग आकर दूसरा की शिकायतें करने लगी। मैं अपने इन खुफ़िया सूचना देनेवाले-वालियो के नाम नही बतलाऊँगा। कारण स्पष्ट है, नाम लिख देने से इन लोगो मे आपसी सिर-फुटव्वल होना अनिवार्य है।

एक तवायफ, जो अपनी लडकी के लिए स्थायी सरक्षक प्राप्त कर चुकी है, अपने पेशे वालियो के विरुद्ध छिपकर गवाही देने आई। उसने समय की बलिहारी ली, जग का रोना रोया। अपनी पाक-साफ स्थिति का पुर-तक्ल्लुफ ढिंढोरा भी पीटा और बोली, "हुज़ूर, ये जिन्होंने आपको यह सिखवाया है कि मैं शराब नही पीती और मेरे यहाँ पेशा नही होता, वह सब झूठ है। फलाँ और फला, और फलाँ, खूब शराब पीती है। फला की तो लडकी भी बहुत पीती है। वह क्या पीती है उसकी माँ पिलाती है और बुरी तरह से पेशा कराती है। हुज़ूर, वो पैसे के लालच मे अपनी लडकी को बुरे काम से फुर्सत ही नही लेने देती। मैंने तो हुज़ूर, अपनी लडकी को एक शरीफ आदमी के साथ बाध दिया है, वह भी खुश, वह भी खुश। न हमने लालच लगाया और न पुलिस का दुख पाया। और ये लोग हुज़ूर, ऊपर से तो ढोग करती हैं कि हमारे यहाँ पेशा नही होता और सब के यहाँ होता है। अब नाच मुजरे की आमदनी तो ऐसी कुछ होती

नही, अच्छी-अच्छियो के यहाँ पेशा चलता है, इसीलिए पुलिस के छापे से घबराती हैं।"

नायिकाओ अर्थात् वेश्या-अम्माओ के धाधपन का विवरण देते हुए इस वृद्धा ने मुझे यहा की एक बडी तवायफ का हाल बतलाया। उस तवायफ़ की एक बहन पास ही के एक कस्बे मे रहन वाले एक बूढ़े रईस की रक्षिता है। एक दिन उन दोनो बहनो ने बुढढे से रकम ऐठने की ठानी। बूढी वेश्या ने अपनी बहन के दोनो हाथो मे भर-भरकर सोने की चूडिया पहना दी। थोडी देर बाद बुढऊ आये, उनके साथ तवायफ की बहन अपने कमरे मे हँसने-बोलने लगी। कुछ देर बाद बूढी तवायफ कमरे के दरवाजे पर आयी और गरजने लगी, "क्या री फ़लानी, तू मेरी चूडियाँ पहन आई है?' इसी पर दोनो बहनो की गरमा-गरमी शुरू हुई। बात यहाँ तक बढी कि तवायफ ने अपनी बहन से कहा कि जो तुम्हे ऐसी ही चूडिया पहनने का शौक है तो अपने आदमी से क्यो नही माँगती? यह सकेत था, इसी पर बहन ने रोना-धोना शुरू किया चूडियाँ उतारकर पटक दी और कोहराम मचा दिया। रईस बुढऊ अपनी जवान चहेती का मन रखने के लिए तुरत ही ताव खाकर उठे और पाँच हज़ार के जेवर लाकर उसे पहना दिए। इस प्रकार दो बहना की नकली लडाई घर मे पाच हजार की नई रकम लाने का साधन बनी।

उस स्त्री ने मुझे इस ढग से बातें बतलाइ जैसे रूप के बाज़ार मे वही एक सत्यवादी हरिश्चन्द्र की अवतार हो। मैं समझ रहा था कि ये किस्से रूपजीवाओ की आपसी जलन के कारण ही मेरे सामने आ रहे हैं। स्वार्थवश मैंने भी उनकी इस वृत्ति को उभारा। मुझे अपनी समस्या का, जहाँ तक बने हर पहलू देखना था, यही मेरा स्वार्थ था। एक परिचित वेश्या-प्रेमी के द्वारा उनकी रक्षिता वेश्या को मैंने बुलवाया। मैंने उसे आश्वासन दिया कि उसके यहाँ की काई बुरी रिपोट तो अभी तक मेरे सुनने मे नही आई, परन्तु उसके साथ अमुक तारीख को इटरव्यू देने के लिए आयी हुई अमुक और तमुक बाईजी और जानो के खिलाफ मेरे पास गदी रिपोर्टें आई हैं। इसके माने ये हुए कि आप लोगा ने जो कुछ मुझे लिखाया है वह झूठ है, असलियत कुछ और ही है।

मेरे कहने के ढग ने बाईजी के चेहरे पर एक झलक तो हवाइयाँ उडा ही दी। देखकर मुझे स्वय अपने पुलिस ढग पर लज्जा आई, पर फिर अपने को सम्हाल लिया। उधर बाईजी ने भी अपने भय को नाटकीय उत्तेजना का रूप दे दिया और बोली, "हुज़ूर, पाँचा उँगलियाँ बराबर नही होतीं। सबका इसाफ

अलग-अलग ही होना चाहिए। यह सच है कि कइयो ने आपको झूठे बयान दिये हैं, मगर सबने नही दिये। अल्लाह का करम है जिसने मुझे ऐसे मालिक दिये हैं—मुझे तो इनकी वजह से कोई खौफोखतरा ही नहो है। आज आठ बरस से, जब से इन्होंने मेरा हाथ पकडा तब से सच मानिएगा न दीन जानू न दुनिया जानूँ, बस इनको ही जानती हूँ। ये गवाह हैं, इनसे पूछ लीजिए कि मैंने अपनी तरफ से आज तक इन्हें शिकायत का मौका दिया हो? मगर हा, जो आपने ' ' के और ' ' के बारे मे सूना है, झूठ नही है।"

मैंने बात फेंकी, कहा, "मसलन मैंने सुना है। कि ' ' बहुत शराब पीती है जब कि उसने लिखवाया है कि नही पीती।"

"अब यह तो पडितजी, ऐसी बात है जो कोई भी आपको सही नही लिखाएगा," मेरे परिचित वेश्या-प्रेमी बाल उठे। "मैं इनके सामने ही पूछता हूँ, इन्होने आपको लिखाया था कि पीती हैं?"

बाईजी बुरी तरह से झेपो और नाराज़ी का भाव दिखाते हुए अपने प्रेमी से कहा, "हटिए भी, मेरी भला यह आदत है! खाइए कसम भगवान् की कि आपके बार-बार इसरार करने पर या "

"वही मैं भी कह रहा हूँ कि यार की सोहबत मे रहेगी तो रडी पिएगी भी और पिलाएगी भी। अरे मैं पडितजी से क्या छिपाऊँ, शुरू से यह मुझे जानते है, मैं इन्हे जानता हूँ—(मेरी तरफ देखकर) पडितजी महाराज, सवाल अकेला इनका नही हमारा भी है। हम आखिर इनके यहाँ जाते हैंगे तो क्यो जाते हैंगे। हमारे घर-दुआर क्या नही हैगा, पर हम इनकी सोहबत का मजा लेन जाते हैं—अपने शौक पूरे करने जाते हैं। शाकिया जब अपने हाथो से जाम भरके पिलाता है "

इसके बाद मामला रोमांटिक हो गया, लालाजी की नज़रा मे छेड और मस्ती आ गई तथा बाईजी की नज़रो म झेप, हँसी और बनावटी गुस्से का कॉक-टेल छलकने लगा।

मैंने फिर बात घुमाई, कहा, "यह तो ठीक है, मगर उस ' ' के बारे मे आप अपनी सच्ची राय बतलाइए।"

बाईजी गम्भीर हुइ, बाली, "देखिए वो हमारी कौम की हैं, हमारी बहन है, कुछ हममे भी ऐब होगे, कुछ उनम भी हैं। बाकी इतना ज़रूर कहूँगी बाबूजी, कि खानदान का कुछ-न-कुछ असर तो पडता ही है। हम तो नानी-पडनानी की कई पुश्तो से डेरेदार हैं, मगर उसे तो शाहजहापुर से बदमाश भगाकर लाए थे।

एक जगह ठहराया, फिर वही तैयार की गई। जौहरी ' ' ने उसकी नथ उतारी थी। उन्ही से दो बच्चे हुए। उनके साथ घर की तरह रहती थी। उनके पास से बडी ज्वेलरी पाई, फिर हरामज़ादी उन्हे धोखा देकर और काफी लम्बी रकम लेकर मुज़फ्फरपुर चली गई। पाच साल बाद फिर लौटकर आई। अब एक पण्डितजी हैं, वे उसे काफी पैसा देते है। आठ-नौ सौ रुपये महीने का खर्च उठाते हैं, मगर ' ' की नीयत दुरुस्त नही। आजकल वह एक तीसरे को फँसा रही है। माँ से उसकी रोज़ लडाई होती है। मा कहती है कि तू अपनी जिन्दगी बरबाद कर रही है। इस तरह फिर कोई तेरा न रहेगा। मगर उसकी समझ मे कुछ नही आता।"

मैंने बाज़ारू हवा मे हाथ लगा एक सनसनाता तीर छोडा, पूछा, "कानपुर के कोकेनवाले बुड्ढे को फँसा रही है ?"

"जी नही, वो तो ' ' के यहा जाता है। ' ' ने अपनी भतीजी से फँसा रखा है।"

"मगर मैंने सुना है कि वह कइयो के यहाँ जाता है और पानी की तरह से रुपया बहाता है। बल्कि माफ कीजिए मैंने तो सुना है कि वह आपके यहाँ भी जाता है। पुलिस को यह रिपोर्ट मिली है।" कहने के बाद ही मुझे लगा कि अपने स्वार्थवश मैं बाईजी को करारी चोट दे गया। इस कोकेन वाले बुड्ढे की बात मैंने बाज़ार मे सुनी थी। यह भी सुना था कि पुलिस उसका पीछा कर रही है। दसवे-पन्द्रहवें वह लखनऊ आता है, किसी वेश्यालय मे छिपकर बसेरा करता है। वही उसके चेले या एजेंट मिलते हैं, उनसे सौदे की बात करके वह चला जाता है। मैंने यह भी सुना था कि उसने एक नही वरन् कुछ-एक वेश्यालयो के घरो मे अपना अड्डा बना रखा है। अपने इसी तीर को मैंने अनजाने ही अपनी चतुराई के फेर मे छोड दिया। बाईजी के चेहरे पर बरफ की-सी सफेदी छा गई, लालजी की त्यौरियाँ चढ गइ। वे घूरकर अपनी भाड़े की प्रेयसी की ओर देखने लगे। मुझे चट से लगा कि यह प्रश्न मुझे इस समय नही करना चाहिए था। तुरन्त ही बात पलट दी, कहा, "आपके यहाँ नही, मेरा मतलब था कि आपके सामने वाली के यहाँ आता है।"

बाईजी के चेहरे पर फिर से सन्तोष का सघाव आया। लालाजी भी बोल उठे, "हाँ गुरुजी, इनके यहाँ ऐसे दन्द-फन्द नही होते, यह शुरू से ही सीधी रही हैगी और अब तो छापे के बाद से रात मे कोई इनके यहाँ रहता ही नही। न जाने कब पुलिस का छापा पड जाए! पुलिस वाले ससुरे पैसा भी ले लेत हैं और

बाज-बाज दफा तो इज्जत भी ले डूबते हैं। आप पूछ लीजिए इनसे, अब मैं खुद नही जाता रात मे। ये ससुरे ऐसे कानून चले हैं कि रडीबाजी का मजा ही चला गया है गुरुजी ! इसमे इन बेचारियो की बडी आमदनी मारी गई। अरे, जिनका ऐश पूरा न होगा वो काहे को मर-मर हाथो इन लोगो को देंगे।"

बाईजी सुर-मे सुर मिलाकर बोली, "हाँ हुजूर, कम-से-कम बारह बजे का टाइम हो जाता तो भी गनीमत होती। अब आप ही बतलाइए कि नौ-दस बजे तक ये लोग अपने कारबार-धधे से फारिग हुए, फिर हमारे यहा उठने-बैठने के लिए घटा-सवा घटा भी तो नही मिलता। जी नही भरता हुजूर !" अन्तिम वाक्य में वेश्या बोल उठी थी।

थोडी देर बाद लालाजी चले गए। चूकि वे अपनी बाईजी के साथ-साथ बाहर नही निकलना चाहते थे, इसलिए बाईजी को बैठना पडा। मैं उस दिन पुलिस शाही मूड मे ही था। लालाजी के जाने के बाद मैंने फिर कहा, "कोकेन वाला आपके यहाँ आकर ठहरता है, यह मुझे अच्छी तरह से मालूम है। याद रखिए आप किसी दिन धोखे मे फँस जाएँगी।"

कुरसी पर आगे की ओर खिसक, हल्की खखार के बाद रँगे हाथो पकडे गए चोर की तरह वह बोली, "एक रात जरूर ठहरा था हुजूर, वो भी अम्मा ने ठहराया था। क्या करें हुजूर, अब तो खाने के भी लाले पडते है।"

"क्यो ?" मैंने पूछा, "लालाजी आपको खर्चा तो देते होंगे। कितनी तनख्वाह पाती हैं इनसे ?"

"अरे हुजूर, अब दुनिया अपने पैसे की सयानी हो गई है। छापे के बाद से इनका भी आना-जाना कम हो गया है। रात मे आते नही, या कभी आए भी तो घटा भर बैठकर चले गए। दिन मे कभी-कभी आते हैं। आपसे अभी-अभी कह तो गए कि जब शौक पूरे न होगे तो देने वाला पैसे देगा ही क्या। इनसे एक लडका है मेरा, सो उसकी बदौलत शर्म-लिहाज मे कुछ न-कुछ दे तो देते है, मगर उससे पूरा नही पडता।"

मेरे जी मे आई कि पूछूँ, क्या रात म लोग अब भी छिपकर रह जाते हैं, मगर फिर बचा गया, और सच पूछिए तो मुझे अपनी बात का उत्तर मिल गया था। दो रोज पहले इस पेशे स तटस्थ हो जाने वाली एक वेश्या अम्मा ने शायद ठीक ही कहा था कि अब हर डेरेदार तवायफ के यहाँ पेशा होने लगा है। आज बहानेसिर यह बाईजी भी आखिर कबूल ही गइ।

इण्टरव्यू के बाद इनकी कथाओं का दसरा पक्ष जानने-सुनने के लिए मैं

स्वाभाविक रूप से उत्कंठित था। अपने वर्षों पहले के कुछेक वेश्या-विलासी मित्रों से मैंने सम्पर्क स्थापित किया। एक पुराने घाघ मित्र बोले, "तुम भी यार, किनकी इस्टोरियों के फेर में पड़े हो। ये लोग खाली ऐक्टिंग ही नहीं करतीं ऐक्टिंग का बाप भी करती हैं और फिर भी सच्ची! मानो इनकी अब वैसी आमदनी नहीं रही जैसी पहले थी। अरे अब तो हमारे-तुम्हारे ज़माने की नामी रंडियों के यहाँ भी वो बात नहीं रही, उनके यहाँ भी नई लौंडियों में वो तमीज़ वो बात नहीं। अब तो सबके यहाँ पेशा होता है। न सालियों में गाने का सहूर रहा है न नाचने का, और न बात करने का। हमारी तो जब से वो ' ' मर गई, मैंने फिर बँध के किसी से रिश्ता ही नहीं रखा।"

मैंने पूछा, "अच्छा दोस्त, इन तवायफों के लुटेरेपन के क़िस्से तो बहुत सुने, मगर यह बतलाओ कि तुमने कभी इन्हें लूटने वाले भी देखे हैं?"

"अमा लुटती ही नहीं तबाह भी हो जाती हैं। अरे लाख रंडियाँ हों, बुरी हों, सब-कुछ हो, पर है तो आखिर को औरत ही न, मर्दों से भला जीत सकती हैं! हम तुमको बतलाते हैं, आजकल जो हमारा फेर चल रहा है उसी की बात सुनाते हैं। फैजाबाद की एक रंडी, भली थी, चार पैसे वाली थी। एक वकील साहब से उसका पुराना मेल-जोल रहा। यह कोई दस-बारह बरस पहले की बात सुनाता हूँ तुम्हें। वो रंडी बेचारी अपनी लड़की को पढ़ा-लिखा के उसकी शादी करना चाहती थी। वकील साहब ने पढ़ाने-लिखाने की बात कहकर उस लड़की को लखनऊ में लाकर रखा, घसियारी मण्डी में मकान लेकर रहे। उनका अक्सर लखनऊ आना-जाना होता था, उसी लड़की के पास रहते थे।

"ज़रा सोचने की बात है नागर कि वो वकील साहब की लड़की के बराबर थी। उसकी माँ से उनकी भी दो औलादें थीं और यहाँ लाकर ससुरी लौंडिया पर भी हाथ साफ़ कर दिया। उनके एक दो बच्चे माँ से थे और एक इससे भी हो गया। माँ बेटी में झगड़ा करा दिया और दोनों को ऐसा काबू में रखा कि न वो बुढ़िया ही इनके पंजे के छूट पाई और न यह। अब साले पैसे वाले बनते हैं। ये तो हाल हैं ज़माने के!"

मैंने पूछा, "फिर उस लड़की को पढ़ाया?"

"हाँ पढ़ाया तो ज़रूर, अब वो मास्टरनी है। न अपनी माँ से मेल-जोल रखती है और न इनसे। मगर ये उसकी जान साँसत में किये रहते हैं। मेरा उस औरत के यहाँ आना-जाना है। इन्हीं वकील साहब के कारन मेल-जोल हमारा क्या रहा, सो हम जानते हैं। तो वकील साहब उससे कहते हैं कि इस्कूल में

रपोट कर देंगे कि ये मास्टरनी अच्छे खानदान की नही बल्कि रडी है मैंने भी कह दिया कि अगर वो बुड्ढा तीन-पाच करेगा उसकी और इनकी फोटू दाखिल करके कहूँगा कि साहब इन्होंने लडकी मगाई थी, यह फोटू उसका सबूत हैं। ससुरा इसी वजे से बोल नही पाता।"

"मैंने पूछा, "उस औरत के बच्चे कितने बडे हैं ?"

"दो लडके हैं—एक दस-बारह बरस का होयगा, एक आठ-दस बरस का।"

"तुम्हारा उस औरत से सम्बन्ध है ?"

मित्रवर हँसने लगे, बोले, "झूठ कहू कि सच ?" मैंने कहा कि सचाई ही जानना चाहता हूँ। वे बोले कि अभी तक दाव पर नहीं चढी। कहता है ब्याह कर लो। अब ब्याह रडी साली से कौन करे। हा बचन मैंने जरूर दिया कि जिदगी-भर का ठेका लेता हूँ। जो अपनी बात से निकल जाऊँ तो असल बाप का नही। वो कहती है कि इसमे बदनामी होगी, नौकरी से हाथ धोना पडेगा। बच्चे भी जान जायेंगे कि रडी की औलाद हैं।

मैंने पूछा, "उस औरत की क्या उम्र है ?"

"अरे यही सत्ताईस-अट्ठाईस बरस की है।"

"तुम उससे शादी क्यो नही कर लेते ? तुम्हारी पत्नी तो शायद "

"हाँ मर चुकी, मगर भैया शादी से मामला कुछ और ही हो जाता है। बाल-बच्चे हो तो फिर रिश्तेदारी भी होगी।"

"मगर तवायफ़ो से भी तो शरीफो के बच्चे होते हैं ?"

"वो दूसरी बात है। उसमे मरद से जो फ़रज बन पडा वो अदा किया, नही तो नही। उसमे रिश्तदारी के झगडे-टटे तो नही खडे होते, मन तो साफ़ रहता है।"

मैं उस स्पष्टवादी मित्र का दृष्टिकोण समझ रहा था। यह औसत दुनियादारी बुद्धि थी। वे उस औरत का जीवन-भर भार उठाने के लिए तैयार थे पर विवाह की वैधानिकता से बँधना नही चाहते थे। उधर वह वेश्या-पुत्री मास्टरनी भी अपनी नई सामाजिक स्थिति से गिरने के लिए तैयार न थी। वकील साहब पिछले पाँच-छ वर्ष से नही आते, जब-तब धमकियाँ भिजवाते रहते हैं।

"तुम कितने बरस से उस औरत के यहाँ जाते हो ?" मैंने पूछा।

"मेरी जान मे यही छै-सात बरसें भई। माल ले के बेचने गया था। वकील साहब उन दिनो हम पर निहाल थे, सो धीरे-धीरे इनकी जरूरत की सारी चीजें ला देना, इनकी तकलीफ़-आराम का खयाल रखना उन्होंने हमारे जिम्मे कर

दिया। वो तो यहा रहते नही, आते-जाते रहते थे, सो हमारा आना जाना बढ गया।''

''फिर वकील साहब ने मास्टरनी की तरफ से किनाराकशी क्यो कर ली?''

''बुढापे की सफेदी की लाज बचाने के लिए। उस हरामजादे ने मा-बेटी मे सौत का रिश्ता बाँध दिया। वो पहले तो बडी अम्मा को धोखे मे रखे रहा, फिर जब प्रेम, इनका पहला लडका भया, तब बडी अम्मा ने बडा बावेला मचाया, मगर उस दम वकील साहब से उसकी कोर दबी भयी रही। अपनी बडी बहन से उसका जैजाद का मुकदमा चलता रहा। बुढिया कडुवा घूट बना के बात को पी गई। उसमे भी वकील साहब उनकी मनमानी रकम खाय गए। वह कुछ न बोली। इधर यह भी अपने सहारे स्वारथ के लिए वकील साहब को साधे भये, पर ज्योही तीन-चार बरस मे अम्मा मुकदमा जीत-जात के पोढी भयी त्योही वकील बुढऊ की गदन दबाई। जो कुछ कहा-सुना होगा इनके सुनने मे तो यह आया रहा कि अम्मा ने यह धमकी वकील साहब का दी कि तुम्हारी नीची करतूत शहर-भर के रईसा से कहूँगी। वकील साहब और अम्मा का रिश्ता सबको उजागर था। जो कुछ भी होय, राम जाने करने वाले जाने, बाकी पाँच-छ बरस से वकील साहब एक धेला खर्चा नही देते, कभी कभी दिन मे आ जाते हैं, उनकी एक फोटू इनके साथ पहले बच्चे को गोदी मे लिये भए खिची रही सो उसे ही मागने आते हैं। वो इन्होने मेरे पास रखवा दी है, इसलिए मुझसे भी तपते हैं।''

''अच्छा यह बतलाओ दोस्त कि तुम अब तक उस पर कितना खर्च कर चुके हो?'' मैंने उनकी बात का पुछल्ला काटकर प्रश्न किया। पुराने मित्र हसने लगे। बोले, ''अऽरे भैया ह ह ह बाकी कोई लालच तो है नही हमारा, फिर भी मुसीबत मे इसान-से-इसान की जो मदद हो जाती है वही हम भी करते रहते हैं। बाकी एक सौ पच्चीस ता वह आप कमाती है, बी०ए०बी०टी० है। बडे कायदे से आप रहती हैं अपने बच्चो को रखती हैं। पास-पडोस मे स्कूल मे कोई यह नही कह सकता कि रडी की औलाद है। बडी शरीफ औरत है।''

''अच्छा तुम्हारे खच करने का वह एहसान मानती है?''

''एहसान भी न मानेगी?'

''तुम अपना एहसान जतात जरूर होगे। आखिर हो तो सौदागर ही ''

''देखो यार नागर, हम तुमसे झूठ नही कहेगे। हमने सब ऐश कर लिये, ठोकरें खाइ, अपना कारबार भी घर से अलग करके सम्हाला, सब मजे ले लिये। इतनी ही उमर म ब्याही भई लडकी हमारी मरी। एक-ही-एक लडकी, धूमधाम

से ब्याह किया और ब्याह के दस दिन बाद बीमार पडी, म्यादी बुखार बिगडा सो डेढ महीने मे रुलाके चल दी। उसके साल-सवा साल मे वाइफ हमारी हाट फेल मे चल बसी। फिर लोगो ने बहुत घेरा कि ब्याह कर लो मगर हमने कहा अब ये सब झझट नही पालेंगे। भाई के बच्चे हैं सो हमारे ही हैं और अब इधर हमसे जो कुछ बन पडता है कर देते हैं। अब रही स्वारथ की बात सो भाईसाब, दिल तो हमारा उन पर फ़िन्न है और वो भी हमे बहुत मानती हैं ''

''तो क्या तुम दोनो आजकल ब्रह्मचारी हो ?'' मैंने पूछा।

''तुमने तो यार बडा बल्लमनोक सवाल पूछा ! जान पडता है हमारी भी इस्टोरी बनाओगे। क्या ?''

''हाँ, मगर तुम्हारा या किसी का नाम तब तक न दूँगा जब तक कि तुम उसके लिए राजी न होगे,'' मैंने उत्तर दिया।

''हाँ नाम न लिखना, बाकी बात ये है साफ साफ़ कि वो इस्तिरी तो साक्षात ब्रह्मचारनी है। मैं उसके मुकाबले की तपस्या नही कर सकता। कहती है कि जी ता हमारा भी चाहता है पर हम अपने बच्चा का खयाल है। हा, किसी से शादी हो जाए ता मैं बच्चा को समझा सकूंगी।''

मुझे उस अनदेखी स्त्री के प्रति आदर हुआ। सहसा मैंने पूछा, ''क्यो जी, वह तुम्हारी मदद क्या समझकर स्वीकार करती है ?''

''अरे क्या बोलेंगी बिचारी! इनकी नौकरी तो ढाई-तीन बरस से है। हमारा साथ तो तब से है जब ये निराधार हो गइ। फिर अपने गहने हम बेचने को धीरे-धीरे दिये। मैंने अपने पास रख लिये और खर्चा देता रहा। बाद मे मैंने कहा भगवान् हमे सब-कुछ दे रहा है। उन्होंने कहा कि शादी से पहले आप मुझसे काई लालच न रखें। मैंने कहा मुझे कोई लालच नही, बाकी अपनी तरफ़ से अब हम तुम्हारा साथ नही छोड सकत, हा आप चाहे निकाल सकती है। उसके बाद हमारे दिल साफ हैं। अब हमारे लिए भैया नागर, सच मानो उनसे उनके बच्चो से मोह-ममता का रिश्ता हो गया है, सो अब टूट नही सकता। हमे कोई लालच न हा, पर वहाँ जाना अच्छा लगता है। यही क्या कम बडा लालच है ?''

अपने मित्र के प्रति मेरे मन मे आदर-भाव जागा। अपने पुत्रों की चिन्ता करने वाली मास्टरनी वेश्या-पुत्री की कथा सुनकर मुझे लूलू की मा की याद आई, 'अबी से लूलू का क्या होगा।' यह प्रश्न मा की दृष्टि से देखिए, कितना गभीर है। बच्चा का भविष्य सुधारने के लिए वेश्या भी सयम साध सकती है। माँ बनकर उसका व्यक्तित्व अपने उत्तरदायित्व के बोध से यो निखर उठा।

मैं अपने पुराने वेश्या-प्रेमी मित्र के प्रति भी मन-ही-मन आदर से झुक गया। यह व्यक्ति, जिसे मैं लगभग चौबीस-पचीस वर्ष से जानता हूँ, आज मेरी दृष्टि मे नया-नया-सा लग रहा था। इस मित्र के बारे मे मित्र जानते हैं कि अपने विषय-विलास के हेतु इन्होंने हजारो रुपया फूका। किसी समय अपने पडोस की एक धनी की बाल विधवा नवयुवती बहू को हस्तगत करने मे इन्होंने अपने आस-पास के वातावरण मे बडी ख्याति पाई थी। यारो को खिलाने-पिलाने म यह सदा के उदार रहे। नगर की प्रसिद्ध वेश्याओं के ऊपर भी इन्होने काफी रकम खर्च की। नशा-पानी भी खूब करते हैं, धन्धा भी भगवान् की दया से अच्छा चलता है, सब-कुछ करते हुए भी अपने रोजगार के प्रति वे कभी गाफिल न हुए। अपने रोमाटिक लगाव में मित्रवर अपने रस-स्वार्थ की आशा पूरी न होते हुए भी मास्टरनी वेश्या-पुत्री और उसकी दोना सतानो का खच निबाहते चले जाते हैं। यह छोटी बात नही। वे मास्टरनी वेश्या-पुत्री की तरह ब्रह्मचय तो नहीं धारण कर सकते, किन्तु उसके अनुराग मे जीवन-भर क्षीण आशा की ज्योति जगाये वे प्रतीक्षा कर सकते हैं। वे उस पर जोर भी नहीं डालेंगे, कभी ऊबकर उसका साथ भी न छोडेंगे, मानसिक रूप से उसके प्रति पूण निष्काम न होते हुए भी निष्काम-सेवा करने से न चूकेंगे, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अपनी कामिनी की प्रशसा म वे अत में बहुत-कुछ बुदबुदाते रहे। धीमे स्वर किन्तु भरी साँस की शक्ति के साथ उनके उद्गार अपनी प्रेयसी की प्रशसा मे फूटते रहे। मैंने अत म मुस्कराकर कहा, "यह ढलती उमर में अच्छी फाँस चुभी है तुम्हारे दिल मे! बकौल किसी शायर के, सीन में जैसे कोई दिल को मला करे है।"

मित्रवर की ठडी आह सहानुभूति से गरमी पाकर उमग उठी। बडे भाव से मेरा हाथ पकडकर वह बोले, "ठीक कहते हो भैया, हूबहू यही हालत है अपनी। मगर एक बात कह दें, जो मजा अब पाया वो जिन्दगी-भर म कभी नही पाया। हम तो समझते है कि किसी को पा लेने मे वो बात नही जो किसी पर मर मिटने में है।'

इस मास्टरनी वेश्या-पुत्री का चरित्र उन्ही दिनो आस-पास से बटोरी हुई अन्य वेश्याओ और वेश्या-पुत्रियो की चरित्र-कथाओ मे बार-बार चमककर मेरे सामने आता रहा। सच है, न सभी स्त्रियाँ एक सी होती हैं और न सभी पुरुष ही। अच्छे-बुरे सब ओर हैं।

एक वेश्या मुझे इटरव्यू देते समय एकाएक बिगड पडी। यह वेश्या सगीत

कलाकार यूनियन की सदस्य नही। जब मैं यूनियन की मेम्बरो की इटरव्यू ले रहा था तब यह यही आई थी, बाद मे इटरव्यू देने वालियां मे से ही एक स्त्री से उसने स्वय इटरव्यू देने की प्रार्थना की। उस स्त्री ने आकर मुझसे कहा। मैंने कहा ले आओ। वह बोली, "हुज़ूर, उससे क्या पूछेंगे, एक बात भी सच नही बतलाएगी। वह तो खाली इसीलिए लिखाना चाहती है कि जिससे उसका भी हिस्टरी मे नाम हो जाए। चारो तरफ़ यह खबर तो उड ही गई है कि आप हमारी हिस्टरी तैयार कर रहे हैं।"

मैंने पूछा, "आप तो उसकी सही हिस्ट्री जानती हैं, बतलाइए वो कैसी है ?"

"ऐ हुज़ूर, मैं क्या बतलाऊँ, उसके घर म दिन-भर आदमियो का क्यू लगा रहता है। अब की गरमी मे उसने एक दिन खूब शराब पीकर बलवा मचाया। पुलिस पकड ले गई थी। तब भी हुज़ूर वो बाज नही आती। उसके यहाँ सारे ऐब होते हैं। तीन-तीन सरपरस्तो को धोखा देती है। एक ठाकुर साहब हैं, एक रेलवे वाले बाबू हैं और एक और हैं—सबको धोखा देती है।"

मैंने कहा, "कोई हज नही, मैं मिलूगा।"

दूसरे दिन दोपहर मे वह आयी। असु दर नही किन्तु फीकी अवश्य पड गई थी। चेहरे पर एक प्रकार का गुमान भी बोलता था। मैं नोटबुक लेकर बैठ गया, मैंने पूछा, "आप यूनियन की मेम्बर क्यो नही बनी ?"

बोली, "यूनियन म इसाफ तो होता नही, जिसको मरजी मे आया भरती किया, मन मे न आया तो भरती न किया।"

मैंने और नियमित प्रश्न किय, सबके ही विधिवत् उत्तर मिले। उस पक्का गाना पसद है, मुजरे की आमदनी मामूली होती है, एक सरपरस्त के साये में गुजर करती है, मगर वे बेचारे बहुत पैसे वाले नहीं इसलिए तकलीफ़ से ही गुजर-बसर हो पाती है, शराब-सिगरेट का शौक नही—यह सब उसने लिखाया।

मैंने कहा, "सुनने मे आया है कि आपके यहाँ शराबियो का मजमा जुडता है, पुलिस तक आ चुकी है ?"

वह बाई चौंकी, मगर इसका उत्तर देने के लिए वह मानो पहले ही से सधी हुई थी, उत्तेजित होकर बोली, "शराब किसके यहा नही पी जाती, क्या यूनियन वालियाँ नही पीती ?"

मैंने कहा, ' मगर आपने ता अभी लिखवाया कि आप नही पीती।"

बाईजी को उत्तेजना और बिफरी, कुछ-कुछ कुरसी से उछलकर बोली,"जो तो क्या और सबने आपको सच लिखवाया है ? और क्या ऊँची सुसाइटी की औरतें नहीं पीतीं, शरीफ़ लोग नहीं पीते ? फिर हमें ही क्या ऐब लगाया जाता है ?"

मैंने कहा, "ऐब लगाने की बात नहीं, एक काम को करते हुए भी जब कोई शख्स इंकार करता है, तब यह मानी हुई बात है कि वह खुद ही उसे ऐब मानता है। आप मुझे अगर यह लिखा देतीं कि आप पीती हैं तो मैं बुरा न मानता।"

वह एक क्षण सिर झुकाए बैठी रही। फिर बोली, "सबके यहाँ यही हाल है। वो कानपुर ' ' है। यूनियन की मेम्बर भी है, उसके यहाँ क्या नहीं होता ? दो भाई हैं उसके, एक दलाली करता है और दूसरा जा अठारह साल का है, बदमाश है। उसके यहाँ भी शराब पी जाती है, लड़कियाँ उड़ा कर लाई जाती हैं और खराब की जाती हैं। छोटा भाई यह सब बदमाशी का काम करता है और बड़ा भाई ग्राहक फँसाता है। उसकी बड़ी बहन है, उसका यार चोर है। अपने बीबी-बच्चों को छोड़कर वह उसी के पास बना रहता है।"

इसके बाद दोनों ही स्त्रियाँ पारस्परिक सहानुभूति में बँधकर अपने पास-पड़ोस के किस्से सुनाने लगीं। एक लड़की—हिंदू वेश्या—लगभग सोलह सत्रह वर्ष की है, सुन्दरी है। उसकी फूफी उसके पास रहती है। उसके यहाँ भी दिन-रात पेशा होता है। चौक के एक सर्राफ से उसे बहुत पैसा मिला, मगर वह उनकी वफादार न रही। इसी पर उनका इतना झगड़ा हो गया कि ' ' ने ' ' सर्राफ को चप्पलों से मारा। उसके यहाँ बहुत आदमी आते-जाते हैं। *जिस दिन पुलिस ने छापा मारा था उस दिन भी उसके यहाँ एक आदमी* आया था। उसने सौ रुपये दिये थे। ' ' ने कहा कि गाने के पैसे दिये हैं। वह आदमी भी पकड़ा गया। इसकी एक बहन भी है। इसका पुराना आशिक ' ' सर्राफ अब उसके यहाँ जाता है। उसके यहाँ भी पेशा होता है।

एक पहाड़िन वेश्या है। उसकी उमर अभी कुल बारह साल की है और दो साल से पेशा करती है। उसके यहाँ कई-एक आते हैं। दलालों के साथ होटलों में भी पेशे के लिए जाती है। उसकी माँ बहुत पीती है, हरदम नशे में रहती है।

एक मुसलमान वेश्या आयु में लगभग पन्द्रह-सोलह वर्ष की होगी। उसके

यहाँ भी आदमियो का क्यू लगा रहता है। जब से छापा पड़ा उसकी माँ ने समझा कि गाने-बजाने की इज्जत है तो एक उस्ताद रख लिया है, मगर यह सब धोखा है। उसके यहाँ जबरदस्त पेशा होता है।

इन दोनो वेश्याओ ने मुझे तीन-चार दलालो के नाम भी बतलाए। इनमे से एक ने सैराबाद की तरफ के कई लडकियाँ मगाई है। ग़रीब माँ-बापो को कुछ ले-देकर भी लडकियाँ ले आता है। यहाँ ' ' (एक वेश्या) के यहाँ ठहरायी जाती हैं। वे सात बहनें हैं, सातो एक-से-एक बढकर जालसाज़ हैं। ' ' लड़कियो को खूब मारती-पीटती हैं, उन्हें अपने काबू मे रखती है।

६ सितम्बर '५६ को दिन मे एक बुरकापोश स्त्री मेरे यहाँ आयी। वह मेरी पत्नी से मिली, बातें की। व उसे लेकर मेरे पास आयी, गुजराती भाषा म मुझसे कहा, "इसकी सुनो। जितनी अब तक तुम्हारे पास लिखान आयी उन सबसे यह अगल है। बडे बड दु ख हैं भाई।" मेरी पत्नी की आँखे छलछला उठी। वह स्त्री भाषा न समझने के कारण पहेली भरी कनखी से कभी मेरी पत्नी की ओर और कभी सकपकाई दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी। गारा रग, तिकोना मुख मण्डल और सीक सलाई-सी देह, खडे होने के ढग मे सादगी, सकपकाहट इतनी देर मे वह दीवार की तरफ सिमटती ही चली गई, रग गारा होने पर भी पिलास मारता हुआ है, चेहरा उदासी से अधिक भावुक हो रहा है, आखें निराश व्यक्ति-सी फीकी पथरायी हुइ, मैंने आखें मिलाइ, उसने दृष्टि नीची कर ली, मैंने कहा बैठ जाओ, वह पास ही सोफा पर बैठ गई। उसकी आयु मुझे तीस के अन्दर-ही-अन्दर जँची।

मेरी पत्नी ने कहा, "ये कहती हैं कि मैं बाबूजी को सब हाल लिखा दूगी, मगर वो मेरा नाम न लिखें, क्योकि नाम देने से इनकी जान तक को खतरा हो सकता है।"

वह युवती बाते पूछने पर पहले तो खूब फूट-फूटकर रोई, हिचकियाँ बँध गईं। मेरी पत्नी उसे खूब सात्वना देती रही। मैं चुप बैठा रहा, जानता था कि यह हिस्टीरिया की-सी लटक है, जब तक एक दौड खलास नही होगी तब तक चुपेगी नही। क्रमश उतार आते-आते बीस-पच्चीस मिनट बीते। मैंने नौकर से चाय बनाने के लिए कहा, वह ना करने लगी, यो वाणी फूटी।

खैर चाय आयी, पी, फिर बातें आरम्भ हुइ। युवती का नाम मैं प्रकट न करूँगा। कहानी इस प्रकार है—

"मेरे वालिद का घर यही ' ' चौक के पास था। मेरे शौहर रोशनुद्दौला

की कचहरी मे किसी इजलास मे पेशकार थे। सन् '५६ मे वे एक जाने-पहचाने साहब को पचास रुपये मुख्र तक पहुँचाने के लिए देकर कराची चले गए। फिर मैंने बडी मुसीबतें उठायी, कोई सहारा नही था। दो बच्चे भी छोटे-छोटे थे। हमने बहुत तक्लीफें सही। मैके मे भी कोई नही था। हम लोग शिया मुसलमान हैं। हमारी बिरादरी मे बडे-बडे लोग हैं, मगर ग़रीबों का कोई पुरसा हाल नही होता। इधर-उधर काम करने वाली औरतो के पास दौड-धूप कर उनकी खुशामद-दरामद कर कुछ-न-कुछ काम अपने वास्ते लाती रही। मैंने काग़ज़ के लिफ़ाफे बनाये, कामदानी ग़रदोज़ी का काम किया, लिहाफो की तगाई का काम किया—महीना भर-पेट खाने को न मिला। शकरकन्द उबाल-उबालकर खायी। चार-चार फ़ाके किये। उन्ही दिनो लडकी को फोडा निकल आया था, उसका आपरेशन कराना था। मैं बडी फ़िक्र मे थी। चौक मे, ' ' मे एक जरदोज़ी के कारखाने दार रहते हैं। उनके यहाँ मैं काम लेने जाया करती थी। वहाँ एक कानपुर वाली के नाम से मशहूर ' ' नाम की औरत रहती थी। उससे मेरी जान-पहचान हो गई थी। परेशानो की हालत मे मैं उसके यहाँ गयी। बातचीत के सिलसिले मे सारा हाल कहा। उसने बडी-बडी तसल्लियाँ दी, बोली कि ' ' वाली सराय मे मेरे भाई रहते हैं, उनकी शरीफो म उठक-बैठक है। मैं तुम्हारा निकाह कर दूँगी, तुम्हारी जिन्दगी सुख से कट जायगी।

"मैं उसकी बातो मे आ गई। बच्चो को साथ लेकर ' ' वाली सराय मे चली गई। बडा-सा मकान था, अलग-अलग कमरे बने हुए थे। एक कमरे मे मेरे लिए भी इन्तजाम हो गया। शुरू मे बडी खातिरदारी रही। चार-पाच रोज तक मैं अन्दाज़ न पाई कि चकलेखाने मे आ गई हूँ। एक दिन वही कानपुर वाली आयी, उसने कहा कि तुम्हारे लिए आदमी तलाश कर लिया है, शरीफ है। हमारे पुराने जान-पहचानी हैं, इन्हे खुश रखोगी तो तुम्हारा निकाह भी इन्ही के साथ हो जाएगा। मुझे इन बातो पर शक हुआ, मैंने इतराज़ किया। कानपुर वाली लड झगडकर चली गई। कानपुर वाली के भाई भी मुझे समझाने आये, कहा कि ज़िद न करो। आदमी शरीफ है, लेकिन ज़िद्दी है। अगर तुम उसे खुश करके पटा लोगी तो तुम्हारे साथ निकाह भी हो जाएगा। मैं इस चारसौबीसी मे आ गई। बाद मे साबित हुआ कि हर रोज नये-नये आदमियों स मेरा निकाह होता रहेगा। फिर तो मेरे लिए कोई राह ही न रह गई थी।

"बहुत से लोग तो मेरा फ़िक्र और उदासी से पीला चेहरा देखकर ही मुझे नापसन्दर कर देते थे और शराब के नशे में आये हुए नफ़सपरस्तों को तो चाहे

लड़की की भी औरत मिल जाए चल जाती है। मेरा भी गुजारा होने लगा। मैंने उस चकले में बड़ी तकलीफें सहीं। इधर आठ महीने से एक पंजाबी मेरे मेहरबान हो गए हैं। उनसे सब दुखड़ा रोया तो उन्होंने कहा कि तुम अलग घर ले लो, मैं तुम्हारा खर्च चलाऊँगा। मैंने फ़ौरन ही अपने गिरस्ती वाले जमाने की एक जानी-पहचानी औरत की मदद से एक घर ले लिया। अब वहीं रहती हूँ और उनकी मुलाजमत में हूँ। यह मकान खुशकिस्मती से मैंने छापा पड़ने के चंद रोज़ पहले ही से ले लिया था, वरना मैं भी पकड़ी जाती। वो ' ' वाली सराय का अड्डा पुलिस के छापे की वजह से टूट चुका है मगर वह गिरोह तो मौजूद है ही। इसी वजह से मैंने बहूजी से अर्ज़ किया था कि बाबूजी मेरा या किसी का नाम न दें। सुन पाएँ, नाराज़ हो जाएँ तो कत्ल तक करा सकते हैं। वैसे भी खुदा न करे, मगर कभी इन ऐसों से फिर काम पड़ सकता है। हमारे पेशे का क्या ठिकाना, कभी सीधी सड़क, कभी खाई खंदक।"

चकलेखाने के सम्बन्ध में पूछने पर उस युवती ने बतलाया, "वहाँ दिन-भर औरतें आया करती थीं और उनके लिए आदमी आया करते थे। अच्छे-अच्छे खानदानों की औरतें वहाँ आती थीं। किसी का नाम न लूँगी, मगर उन्हें देखकर मुझे यही हुआ कि ज़िन्दगी की असलियत जो कुछ भी है यह है, खानदान और शराफ़त के उसूलों की बातें कोरी बातें हैं। मगर वहाँ आनेवालियों में अस्सी फीसदी औरतें ग़रीबी की मारी हुई ही आती थीं। हविस की गुलाम तो अमीनाबाद हजरतगंज में ही जाती हैं। इन चकलेखानों में ऐसी चारसौबीसी होती है कि उसका कोई हद-हिसाब नहीं। गाहक से पचास रुपये तय करेंगे, हमें बीस ही बताएँगे और उस बीस में से दस पर तो उनका कानूनी हक होता ही है।

"अब सिलाई-बुनाई का काम भी सीख रही हूँ, क्योंकि इस पेशे में सर-परस्त का कोई भरोसा नहीं। जब शौहर छोड़ सकता है तो सरपरस्त को छोड़ते क्या देर लगती है! और चकलेखानों में लौटकर जाना अपनी ओर से नामुमकिन ही है। मजबूरी चाहे जो करा ले! वहाँ जो गालियाँ सुननी पड़ती हैं, पैसे के लिए हमारी नोच-खसोट होती है, नंगपन पर वे लोग उतर आते हैं—जान-बूझकर अपनी तरफ़ से कोई औरत चकलेखाने की ज़िन्दगी में रहना कबूल नहीं कर सकती।

"मैंने सुना कि आप तवायफ़ों का हाल पूछ-पूछकर लिख रहे हैं। आपकी बड़ी तारीफ़ सुनी। मैंने सोचा, नागर साहब के पास ये सब खानदानी तवायफें तो पहुँच जाएँगी, मगर हमारी जैसियों का हाल उन तक न पहुँच सकेगा।

मैंने सोचा, हमारी भी तकलीफें पब्लिक तक पहुँचें और हमें कोई बतलाए कि हम क्या करें।"

उस युवती के सवाल का जवाब मेरे पास भी नहीं। मैंने चकलेखाने के जीवन का निकृष्टतम रूप बाईस वर्ष पहले 'बद्रेमुनीर' के बहाने स्वयं देखा था। ऐसे अड्डों के सम्बन्ध में सुन चुका था। एक आश्रम टाइप चकलेखाने का कुछ-कुछ निकट परिचय भी वर्षों पहले मुझे प्राप्त हुआ था। नखास के पास किसी पुराने ताल्लुकेदार की कोठी में उनकी रखी एक तवायफ़ दिन में अपने यहाँ खानगी चकलाखाना चलाती थी, शायद वहाँ अब भी चलता है। परददार औरतें दिन में वहाँ कमाई करने आती थीं। एक बार वर्षों पहले चौक के तत्कालीन थाना-इंचार्ज श्री जगदीशप्रसाद मुंशी ने मुझसे कहा था "नागर साहब, जिस दिन जी चाहे सुबह चार बजे मेरे साथ पाटेनाले की चौकी पर चलकर सीन देखिए। रात में पेशा करके बुर्केवालियों के झुण्ड आते हैं। वे सब अपने शौहरों की जानकारी में पेशा करती हैं। किस-किसकी इज्जत का परदा फ़ाश कीजिएगा।"

मुंशीजी की बात तह तक तिलमिला देती है। मेरे या किसी के भी घर के आस-पास, दो-चार-दस दीवारों के हेर-फेर में, न जाने ऐसी कितनी कहानियाँ बिखरी हुई हैं। उन सबका निचोड़ क्या है? ये स्त्रियाँ क्या अपनी कामेच्छा के वश में होकर जाती हैं? वे जायाजीवी पति कैसे हैं, किन परिस्थितियों में अपनी पत्नियों की यह स्थिति स्वीकार कर पाते होंगे? बहुत से तो स्वार्थवश अपनी पत्नियों को इस पथ पर बढ़ाते हैं और बहुत से पेट भरने का अन्य कोई साधन न देख बेकारी और कष्ट की हालत में उन्हें इस राह पर ढकेलते हैं। औरत पुरुष की तरह आज़ाद होकर अपनी कामेच्छा से खसम करती फिरे तो और बात है, पर पेट के लिए औरत बिके, कोड़े मार-मारकर साधी जाए, नफ़्सपरस्त मर्दों के बाज़ार में किराये पर उठने वाली जिन्स बने तो क्या कहूँ, तुफ़ है मर्द तेरी मर्दानगी पर, तेरी ऊँची सभ्यता पर!

* बनारस की गायिकाएँ

मैं अपनी इंटरव्यू की कड़ियों में समस्या को सही ढंग से समझने की राह पा गया। इच्छा थी और यदि धन तथा अवकाश की सुविधा होती तो मैं कई जगह जाकर ऐसी भेंट करता। 'गदर के फूल' नामक पुस्तक में भी मैं अपनी मजबूरी निवेदन कर चुका हूँ, साहित्यिक कार्यों की इच्छा और इस महँगाई के जमाने में गृहस्थी के खर्च की दौड़ मुझे एक साथ और हरदम दो सिरों पर दौड़ाती रहती हैं। ईमान तो कहता है कि अभी नहीं, और आगे और आगे, मगर व्यावहारिक रूप में यह आज संभव नहीं हो सकता। इसलिए अपने-आपको अज्ञानवश पूरी तौर पर बेईमान बनाने के बजाय कुछ कम ही सही, पर ईमानदार बनना अच्छा समझा। मैंने अपनी स्थिति से समझौता कर लिया। जब तक उठी हुई समस्या का समुचित समाधान नहीं पा जाऊँगा तब तक तो उसका पीछा अवश्य करूँगा। यथाशक्ति धन भी व्यय करूँगा और उसके बाद पेट-पालन हितार्थ अपने ज्ञानार्जन प्रोग्राम में कटौती कर जाऊँगा।

अनेक मित्रों ने कहा और ठीक भी कहा कि मुझे औरैया, इटावा तथा बरेली आदि कुछ जगहों पर अवश्य जाना चाहिए। मैं नहीं जा सका, मैं और भी कई जगहों पर न जा सका। जिस तरह छानबीन करने की सुविधा अपना घर होने के कारण मुझे लखनऊ में थी वह और नगरों में सुलभ न थी। यहाँ मुझे बात के हर पहलू निकालने में ढाई महीने जूझना पड़ा। दूसरे नगरों में यहाँ के अनुभव के बाद यदि कम समय भी लगाऊँ तो कम-से-कम हर जगह पंद्रह-बीस रोज का काम है। आर्थिक पक्ष से मेरे लिए यह साध्य न था। हाँ, काशी गये बिना मेरी मुक्ति भी न थी। काशी जाने के लिए यों भी मन में लोभ था। काशी, प्रयाग बुड्ढों के तीरथ तो हैं ही, नौजवानी-काल से मेरे भी साहित्यिक तीर्थ रहे हैं। लखनऊ में तब था ही कौन, मिश्रबन्धु थे, वे बहुत बड़े आदमी थे। अलावा इसके ज्येष्ठ मिश्रजी को छोड़कर कनिष्ठ मिश्रबन्धु प्रायः बाहर ही रहते थे। पण्डित रूपनारायण जी पाण्डेय की स्नेह-छाया अवश्य प्राप्त थी। तब तक निरालाजी भी लखनऊ वासी नहीं हुए थे। काशी में प्रसाद थे, प्रेमचन्द थे, श्यामसुन्दरदास, रायकृष्णदास, हरिऔध, रामचन्द्र शुक्ल, रामचन्द्र वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा

'उग्र', विनोद शंकर व्यास, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, रामलाल गौड़, सम्पूर्णानन्द, अन्नपूर्णानन्द आदि हमारे प्रायः सभी प्रमुख और प्रतिष्ठित लेखक वहाँ रहते थे। मैं यदि भूलता नहीं हूँ तो सन् अट्ठाईस की गरमी की छुट्टियों में पहली बार काशी गया, फिर सन् तीस-इकतीस से सन् अड़तीस तक तो नियमित रूप से प्रति वर्ष काशी जाता था। अपने अग्रज पंडित विनोदशंकरजी व्यास के यहाँ मान-मंदिर में ठहरता था। प्रायः भाई ज्ञानचन्द जैन भी साथ ही जाते थे। उसके बाद फिर ऐसे बानक बने कि वर्षों तक चाहकर भी काशी न जा सका। अस्तु।

पाँच दिसम्बर को काशी पहुँच गया। आदरणीय कृष्णप्रसादजी गौड़ के घर पर अतिथि बनकर डेरा डाला। छः दिसम्बर को प्रातःकाल काशी में रेडियो की ओर से एक संगीत-गोष्ठी का आयोजन था, वहीं अनेक मित्रों से भेंट हो गई। श्रीयुत आनन्दकृष्ण मिल गए। मैंने अपने काशी आने का प्रयोजन बतलाकर उनसे श्रद्धेय रायकृष्णदासजी से मिलने के लिए उनकी सुविधा का समय पूछा। श्रद्धेय रामचन्द्रजी वर्मा भी वहीं मिल गए। भाई आनन्दकृष्ण ने उन्हें और मुझे दूसरे दिन शाम को अपने घर भोजन पर बुला लिया। इन दो तीर्थरूप साहित्यिक गुरुजनों से एक साथ बहुत-कुछ पाने का सुयोग मिला जानकर मैं अपनी अच्छी बाहनी पर परम सन्तुष्ट हुआ।

सिद्धेश्वरी देवी

उसी दिन तीसरे पहर आदरणीय बेढबजी भारत-विख्यात गायिका श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी से मेरा परिचय कराने के लिए उनके घर ले गए। कबीरचौरा में जनाने अस्पताल के आगे डी० ए० वी० कॉलेज के दूसरे फाटक से लगा हुआ ही सिद्धेश्वरी देवी का घर है। लगभग बारह-तेरह वर्ष अपना पुराना मुहल्ला छोड़कर वे अपनी बच्चियों के नये एवं यशस्वी भविष्य की भावना के साथ यहाँ मकान बनवाकर रहने लगी हैं। उस दिन विशेष बातें न हो सकीं। तीसरे दिन निश्चित समय पर मैं सिद्धेश्वरी देवी के यहाँ फिर पहुँच गया।

उनकी आयु अर्धशताब्दी के लगभग है। बदन दोहरा, रंग सांवला और स्वभाव बहुत ही अच्छा पाया है। अपनी वंश-परम्परा के सम्बन्ध में पूछने पर वे बोलीं "पुरानी हिस्ट्री के लिए तो आपको विद्याधरीबाई से मिलना चाहिए। वो मेरी मां की उमर की हैं। पुरानी बातें जितनी उन्हें मालूम हैं उतनी भला मैं कैसे बतला सकूंगी!"

पुरातत्त्वविदों को प्राचीन इतिहास के अवशिष्ट चिह्नों का पता पाकर जो प्रसन्नता

होती है प्राय वही मुझे किंवदंतियो की नायिका परम-विख्यात विद्याधरीबाई के जीवित होने की खबर सुनकर हुई। पूछने पर मालूम हुआ कि लगभग पन्द्रह-सोलह वर्ष से वे अपने गाव मे ही रहती हैं। सिद्धेश्वरी देवी ने मेरे साथ चलकर उनसे भेंट कराने का वचन दिया। मैं बडा प्रसन्न हुआ। मैंने फिर अपने प्रश्न को स्पष्ट करके दुहराया।

अपनी वश परम्परा के सम्बन्ध म सिद्धेश्वरी देवी ने बतलाया कि लगभग सौ-सवा सौ वर्ष पूर्व उनकी पुरखिना मे रतीबाई ने बडा नाम कमाया था। फिर उनकी गद्दी उनकी भतीजी मैनाबाई ने सँभाली, मैनाबाई की पुत्री राजेश्वरी देवी ने अपने समय म बडा नाम पैदा किया। सिद्धेश्वरी देवी की माता राजेश्वरी की छोटी बहन थी। उन्होने अल्पायु पाई। सिद्धेश्वरी देवी का लालन-पालन राजेश्वरी ने ही किया—"बस यहा से ही हमारी हिस्ट्री खत्म हो जाती है। मेरी लडकियाँ दूसरे सस्कारो मे पली हैं और नया जीवन पा रही हैं। बडी लडकी बाल बच्चो वाली होकर भी अपना नाम बढाने के लिए हरदम बावली बनी रहती है। मैंने कहा कि तेरे बच्चे मैं पाल लूगी, तू टापमोस्ट' पहुँच। मेरी इच्छा है कि मेरी दोनो बच्चिया टापमोस्ट पहुँचे। बडी लडकी आजकल खैरागढ सगीत यूनीवर्सिटी म पण्डित रातनजनकरजी के चरनो मे बैठकर सीख रही है और दूसरी को भी मैंने बी० ए० पास कराया है।"

मैंने पूछा, "आपने पुरानी महफ़िलें भी देखी हैं और नई सगीत-सभाएँ भी। दोना मे आपको क्या खास भेद नजर आता है ?"

"जी, खास भेद क्या बतलाऊँ, दोनो मे बहुत फ़र्क है, दोना के रग ही अलग-अलग हैं। अब सगीत का प्रचार तो बहुत हो गया है पर पहले के सुनने वाले कुछ और ही थे। अब जो मैक्रोफ़ून रहते है उनमे गाने वाली आर्टिस्टें पुराने ढग की महफिलो म गाएँ तो उनके कलेजे फट जाएँ।"

"आपको अपने समय की किन महफ़िलो की याद आती है ?"

सिद्धेश्वरी जी हँसने लगी, कहा, "अरे नागरजी, कहाँ तक बयान कर सकूगी! बाबा विश्वनाथ की दया से गुरुचरना की कृपा से हिंदुस्तान की ऐसी कोई बडी रियासत नही बची जहाँ मैं न गयी होऊँ। लेकिन सबसे अच्छे कलाकार मैंने नवाब रामपुर के यहाँ ही पाए। मैं वहाँ बीस बरस तक जाती रही। उनके दरबार मे हमेशा अच्छे-अच्छे गुणीजन और कलाकार आते थे। फ़ैयाज खाँ साहब, अहमदजान थिरकवा, हाफ़िज़ अली खा साहब—बडे-बडे आर्टिस्टो से वहीं भेंट हुई। जयपुर घराने के धुरपदिये को भी वहीं सुना। मुसलमानी रियासत के

होते हुए भी जैसा बिना भेद-भाव का व्यवहार वहाँ देखा, वैसा और कहीं नहीं पाया। खाँ साहब नज़ीर खाँ वहाँ खास गायक थे, खानदानी उस्ताद थे। क्या कहना था उनका! नाम लेते से ही मन में गान-भण्डार सा खुल जाता है। नवाब अलीरज़ा खाँ के पहले उनके पिता जी थे, उन्होंने संगीत की सैकड़ों-हज़ारों किताब इकट्ठी की थी। वैसी लायब्रेरी मैंने कहीं नहीं देखी। वो और उनके भाई दोनों ही संगीत के बड़े माहिर थे यानी यह हाल था कि हम—जिनका दिन-रात का गाने-बजाने का पेशा है—हम भी मान जाते थे कि वाह क्या दिमाग पाया है। मगर ये कि नागरजो, था सब थ्योरी की बातें थीं और प्रैक्टिकल में गुरु कृपा से हमारा अपना रियाज़ भी चमकता था। मैंने वहाँ बहुत इज़्ज़त पाई, हमारे सामने नवाब साहब किसी की नहीं सुनते थे। हमारी माता राजेश्वरीबाई ने भी उस दरबार में बड़ी इज़्ज़त पाई थी।

जोधपुर महाराज भी बड़े गुणी थे। उनके यहाँ भी अच्छे-अच्छे गुणीजन मैंने देखे। इन्दौर के महाराज भी गाने-बजाने के अच्छे शौकीन थे। उनके बाद सर सेठ हुकुमचन्द भी गुणियों की बड़ी आवभगत करते थे। कश्मीर महाराज भी कला के शौकीन थे, इज़्ज़त करते थे और प्रेम से सुनते थे। दस वर्ष तक हर साल मैं वहाँ सालगिरह के जलसे पर बुलायी जाती थी। मैं, बम्बई की केसरबाई, यहाँ की काशीबाई, रसूलनबाई, शलकुमारी वहाँ जाती थीं। ग्वालियर की महारानी साहिबा भी बड़े गौर से सुनती थीं।"

मैंने पूछा, "आपको अपनी सहयोगिनी कलाकारों में किन-किनकी महफ़िली प्रतियोगिताओं की याद आती है?"

सिद्धेश्वरी देवी हँसी, कहने लगीं, "यह तो आप मेरे लिए मुश्किल खड़ी कर रहे हैं। किसी का नाम याद आया और किसी का भूल गई तो यह बुरी बात होगी। और फिर प्रतियोगिता तो सभी अच्छी आर्टिस्टों को करनी चाहिए। मैं तो, आप सच मानिए कि अपनी माता राजेश्वरीबाई और अपनी माता-समान विद्याधरीबाई से भी प्रतियोगिता करती थी। इसमें कोई बुराई नहीं थी। बस खाली यही रहता था कि जैसी इज़्ज़त उन्होंने हासिल की है वैसी ही मुझे भी मिले। वैसे आपने पूछा है तो याद आ गया, पंजाब की खुरशीद खूब गाती थी। वाह क्या कहना है उसका! महाराज हरीसिंह के दरबार में एक बार छायानट गाया, बाकायदा दो ढाई घण्टे तक सुनाया—आय-हाय अब तक कानों में उसकी गज सुनायी पड़ रही है। कलकत्ते की नूरजहाँबाई भी खूब गाती थी। वह एक पट की गायिका थी, मैं चारों पट की गायिकी गाती हूँ और बम्बई की

कमरबाई का भी क्या कहना है—जिस महफिल मे विद्याधरीबाई, केसरबाई और नूरजहाबाई हो और मैं होऊँ तो ऐसा समा बँधता था कि अब देखने-सुनने को नहीं मिलेगा। लखनऊ की अच्छनबाई भी बहुत उम्दा गाती थी। नन्हीबाई मुन्नीबाई ग्वालियर की पुरानी गायिकाएँ थीं, अच्छी थी। अब तो वो सब बातें आपके लिए ही नही हमारे लिए भी किस्सा हो गइ।'

सिद्धेश्वरी देवी बीते दिना की स्मृतियो से भावुक हो उठीं। यह स्वाभाविक भी था। मानव-सभ्यता के इतिहास मे किसी भी युग की किसी भी पीढी ने ऐसा तीव्र गतिशाली काल नही देखा जैसा हमे देखने-बरतने को मिल रहा है। यह हमारे लिए शाप भी है और वरदान भी। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिवतनो से एक ओर जहा विश्वव्यापी महँगाई, नागरिक चारित्रिक पतनशीलता तथा ग्रामीण उद्दण्डता और काइयापन बढातरा पर आए हैं, वहाँ ही हमे मानव-विकास के इतिहास के दूसरे खण्ड का प्रथम अध्याय, एटॉमिक सभ्यता का आगमन पहचानने वाली नई शक्तियां भी उठती-उमगती हुई दिखलायी पडती हैं। जो समय को पहचानकर समय के साथ बढना जानत है वे भी उसका सुफल पाकर एक जगह बीते जीवन की स्मृतियो के पीछे भावुक हो जात हैं। बचपन से लेकर बुढाप तक एक ही जन्म मे मनुष्य के तीन जन्म हो जाते हैं, एक ही जन्म म पाये हुए इतने जन्मो का लगाव तो हो ही जाता है। मैंने प्रसग को दूसरी ओर मोड दिया, पूछा, "आपको यह नोटेशन पद्धति पसन्द आती है?"

"जी हाँ, नोटेशन तो अच्छी बात है। गुरु थे, राग बतलाया कि बेटी यहाँ धैवत् मत लगाना, गधार से बढाना। इस तरह गुरु ने विधि बता दी, कहना चाहिए कुछ लटके-से हो गए। ये बात नही कि गुरु लोग विद्या नही देते थे। चाहे पाच ही राग सिखाएँ मगर जिस शागिर्द पर कृपा कर दें उसे भरपूर देते थे। फिर भी उनके देने की विधि से नोटेशन मे यह बडी बात है—यानी नोटेशन से यह होता है कि दिमाग खुल जाता है।"

मैंने पूछा, "पहले की और अबकी खयाल की गायकी म भेद है, इतना तो मैं सगीत-शास्त्र को नासमझ होते हुए भी समझ लेता हूँ। मगर उसम क्या कमजोरी या शक्ति है, इसे आप बतलाइए।"

"खयाल की गायकी अब कमजोरी पर है। आजकल की गायकी म अलाप-चारा कम है, तानें अधिक हो गई हैं। इसके के तारे तोडने के लिए लोग दौडते हैं, इसलिए गायकी मे रस कम हो गया है। अलावा इसके अगर कोई कन्त

करता भी है तो पब्लिक उस पर ऊब जाती है, इसलिए लोग उधर कम ध्यान देने लगे हैं।"

"यह तो दो युगों के चलन की बात हो गई। रस की मान्यता ही दूसरी हो गई, ऐसा लगता है," मैंने कहा।

इस समय सिद्धेश्वरी देवी के पति श्री पंडित कहीं बाहर से पधारे। हम परिचित तो उसी दिन हो चुके थे जिस दिन गौडजी के साथ पहली बार यहाँ मेरा आना हुआ था। पंडित महोदय पंजाबी ब्राह्मण हैं, लगभग साठ की आयु है फिर भी अच्छे तन्दुरुस्त हैं। सिद्धेश्वरी देवी से उनका सिविल मैरेज पद्धति का विवाह अनेक वर्ष पूर्व हुआ था। पंडित महोदय जलंधर में मिलिट्री में काम करते हैं। अपनी बेटी को खैरागढ संगीत विश्वविद्यालय में भरती कराने के लिए उसका तार पाकर वे वहाँ पहुँचे थे, इधर से लडकी की माता पहुँची। वहाँ से दोनों यहाँ आ गए। अपने सौभाग्य पर सिद्धेश्वरी देवी इस समय प्रसन्न थीं। फिर चाय-प्रसंग चला और १० दिसम्बर को उनके साथ विद्याधरीबाई के गाँव चलने की बात निश्चित कर मैं अपने डेरे पर लौट आया।

* जसुरी
*

विद्याधरी का गाँव

बृहस्पतिवार १० दिसम्बर। अपना हिन्दी परिवार भगवान् की दया से बहुत बडा है तथा बहुत सी बातो मे नया होकर भी मैं पुराने सयुक्त परिवार का परम भक्त हूँ। लखनऊ, दिल्ली, कानपुर, आगरा, इलाहाबाद, बनारस--पिछले कुछ वर्षों म जहाँ कही भी जाने-आने का अवसर मिला मैने साहित्यिको की बडो और छोटी पीढिया से सदा प्रेम और मान ही पाया है। बनारस मे भी टैक्सी आदि की व्यवस्था के लिए मुझे चिन्ता नही करनी पडी, सुधाकर पाण्डेय से कह देना ही काफ़ी हुआ। वे माल भाव कर एक टैक्सी किराये पर ले आए। मुझे परदेशी जानकर अधिक पैसा उगाहने के लिए टैक्सी ड्राइवर अपनी कोई घ ये वाली तिकडम न करे, इसलिए सुधाकर ने ड्राइवर को कुछ बनारसी धमकिया मेरे सामने ही दे डाली, मुझसे कहा कि जितने रुपये मैंने बतलाए हैं उससे एक धेला भी अधिक न दीजिएगा। चलत-चलते सुधाकर ने ड्राइवर को फिर एक डोज दिया। मुझे उनका इस तरह बार-बार ड्राइवर को रोब दिखाना अच्छा नहीं लग रहा था, पर इसके साथ-ही-साथ यह भी समझ रहा था कि सुधाकर जो कुछ भी कर रहे हैं मेरी सुख-सुविधा के लिए ही कर रहे हैं। रास्ते-भर इसका असर भी देखा, अक्खड-सा लगने वाला पहलवान किस्म का टैक्सी-ड्राइवर मेरे प्रति अत्यन्त आज्ञाकारी और विनम्र बना रहा।

रास्ते मे सिद्धेश्वरी देवी बोली, "आप यह बडे उपकार का काम कर रहे हैं। आपकी माया ने अपने स्कूल मे जो एक ऐसी औरत के जीवन को सुधारने का होसला दिखलाया है इससे मैं कह नही सकती कि मेरे मन मे कैसे-कैसे भाव आ रहे हैं। महामृत्युञ्जय आप दोनो का, आपके बाल-बच्चो का कल्याण करेंगे। नागरजो, मैं आज से नही पन्द्रह-बीस बरस से यह सोचती थी कि अब से लडकियों को इस काम म डालना अच्छा नही होगा। अब समय दूसरा आ गया है।"

मैंने कहा, "आप ठीक सोचती थी, पर सवाल यह आता है कि इस धन्धे

का समाप्त कैसे किया जा सकता है। जो गुण्डा व्यापारतन्त्र लड़कियों-औरतों से बुरा पेशा कराता है उसे सरकार यदि चाहे तो बहुत जल्द ही खत्म कर सकती है, परन्तु परम्परा से जो गायिकाएँ अथवा नर्तकियाँ हैं उन्हें क्योंकर सही रास्ते पर लाया जाए ?" मैंने कहा 'लखनऊ के एक बहुत प्रसिद्ध वकील हैं, प० श्री शंकर शर्मा। मेरे बचपन के दोस्त हैं। वे एक दिन मुझसे कहने लगे कि तुम इन्हें कलाकार कहकर और भी सिर चढ़ा रहे हो। इनके पास कला-वला चाहे जो कुछ भी हो मगर इनका कमीनापन भी हद दर्जे तक बढ़ा हुआ है और दोषी इनकी बूढ़ियाँ हैं। अगर इन तमाम बूढ़ियों को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया जाए तो यह पेशा आज खत्म हो जाए। मेरे खयाल में आप तो मेरे मित्र के इस सुझाव से सहमत न होंगी।

सिद्धेश्वरी देवी छूटते ही बोली, 'मैं एकदम सहमत हूँ। इन लड़कियों को सुधारने का एक ही तरीका है कि उन्हें जबरदस्ती होस्टल में रखा जाए और उनकी बूढ़ियों को उनके पास तक न फटकने दिया जाए। जो कहती हैं, मैं कलाकार हूँ, वे परीक्षा दें। अगर वे निपुण हैं तो उनको सिखाने के लिए रखा जाए। मगर इसमें भी एक काम जरूर किया जाए कि जो लखनऊ की हों उन्हें कहीं दूर इलाहाबाद, पटना जयपुर ऐसी दूर-दूर की जगहों में पढ़ाने के लिए भेजा जाये और इन मास्टरानियों के ट्रांसफर होते रहें, जिससे कि ये लोग कहीं भी जमकर कोई उत्पात न करने पाएँ। हाँ, उनकी विद्या का संग्रह अवश्य होना चाहिए। जो लड़कियाँ नृत्य संगीत में होशियारी दिखाएँ उन्हें ये कलाएँ सिखायी जाएँ और बाकियों को सिलाई बुनाई, कढ़ाई या और कोई मजदूरी के काम, जो जिस लायक हो उसे सिखाया जाए। और उनके ट्रेनिंग स्कूल से एक मिनट को भी छुट्टी न दी जाए। ये बड़ी मुश्किल से काबू में आएँगी नागरजी। लड़कियाँ अगर हाथ बेहाथ होती हों तो उन्हें यही सजा दें कि मिलिटरी में भरती करके उनसे चौकाबासन करवाया जाए, आरे की मशीन चलवाई जाए, तब कहीं जाकर ये राह पर आएँगी। बहुत-सी नर्सें बन जाएँगी, सेवा के अन्य कारज करने लगेंगी। और बाम्बे साइड की जो औरतें हैं, फिमाचर गल, उन्हें पुलिस में काम दीजिए। इस तरह ये सब बड़ी मुश्किल से काबू में आएँगी। अगर आप वाली ये समझें कि इन्हें गैर कानूनी कर देने से ही काम चल जाएगा तो यह बात झूठी है। पहले जब खुला पेशा था तब बुराइयाँ होकर भी इतनी नहीं थीं जितनी आज बढ़ गई हैं। अब तो पेशा अण्डरग्राउण्ड हो गया है, नागरजी! इससे बुराइयाँ बहुत बढ़ गई हैं।"

सहार बडे-बडे लागो मे रसाई हुई, इस प्रकार पियाजूजान के इश्क और अपनी बुद्धि-चतुराई के बल पर वे होते-करते अवध राज के महामन्त्री हो गए। पियाजू अन्त तक उन्ही की होकर रही।

अनेक तवायफें किसी के प्रेम मे अपना सर्वस्व निछावर करती हुई देखी-सुनी गई हैं। इन रूपजीवाओ के बाजार म मिटने और मिटाने का ही धधा होता है। यह स्थिति ही घातक है, इस चिकनी भूमि पर सामाजिक नैतिकता के पैर बार-बार और बराबर फिसलते ही रहते हैं। शायद सिद्धेश्वरी देवी का सुझाव ही ठीक है सख्ती किये बिना यह पेशा खत्म न होगा। लेकिन सख्ती नीति-मात्र ही हो, सख्ती करने वाले शिक्षक मानवीय सहानुभूति न खो बैठें।

हम मुगलसराय पार कर चदौली पहुँच गए, यहाँ बाजार मे जसुरी ग्राम का दिशा ज्ञान कर हम लोग ऊँची-नीची खाचेदार कच्ची सडक पर बढ चले। आध घट मे जसुरी पहुँच गए।

गाव म पूछने पर एक न बतलाया कि विद्याधरीबाई बाग वाले घर मे होंगी। दूसरा बोला, नही अपने घर मे होगी। चूंकि मोटर गाँव की गलियो मे स्वच्छन्दतापूर्वक विचर नही सकती थी, इसलिए हम एक जगह रुक गए। सिद्धेश्वरी दवी के साथ आया हुआ कर्मचारी एक गाव वाले के साथ विद्याधरीबाई का पता लगाने चला गया। हम चुपचाप बैठे उन आदमियो के लौट आने की राह देख रहे थे। एकाएक सिद्धेश्वरीजी कहने लगी, "ये तपस्या नही है, नागरजी? जितने हिन्दुस्तान-भर के बडे-बडे रईस-रजवाडो की महफिलें दखी, इतनी शान-शौकत पाई, वह अब इस तरह सब कुछ त्यागकर यहाँ रहती हैं। मेरे लिए तो ये माता के समान ही हैं। आपको एक बात बतलाऊँ, शुरू मे मेरी माता यानी बडी मौसी राजेश्वरीबाई मुझसे एक बार बिना बात-की-बात पर इतनी तन गईं, इतनी तन गईं, कि मेरा जीना दूभर हो गया। चार लाख की सम्पत्ति छोडकर बिलकुल बे-आसरा होकर मुझे अपनी माता के घर से निकलना पडा। तन पर जो कपडे थे, बस वही थे। बडे कष्ट के दिन बिताये, फिर एक महफिल म बुलावा आया तो मैं यह सोचने लगी कि कैसे जाऊँ। मैं विद्याधरीबाई के पास गयी। मुझे बडा रोना आया। विद्याधरीबाई ने मुझे कलेजे से लगा लिया, कहा कि बेटी तू क्यो घबरा रही है, मैं तो हूँ। उन्होने अपना पिशवाज मुझे दिया, उसी का पहनकर महफिल मे गयी। मैं इन्हें अपनी माता से बढकर मानती हूँ।"

उनकी बात पूरी होते-न-होते तक आदमी लौट आए और हम लोग विद्याधरीबाई के मकान की ओर चल दिए।

वर्षों पहले लखनऊ की एक बडो महफिल मे विद्याधरीबाई को देखा-सुना था, मगर उसकी एक धुँधली-सी याद ही इस समय शेष थी, बहुत ध्यान करने पर भी न तो उनकी सूरत ही ठीक तरह से ध्यान मे आ रही थी और न उनका स्वर ही। हाँ, उनकी प्रशसा में सुनी हुई बाता की गूज उस समय मन मे फिर ताजे तौर पर उठने लगी। उत्तर भारत में तीन नाम किंवदन्तियो की ऊँची-ऊँची मीनारा पर प्रतिष्ठित हैं, नतका मे महाराज बिन्दादीन तथा गायिकाओ मे गोहरजान और विद्याधरी के नाम नृत्य-सगीत के प्रेमिया मे बडे ही प्रख्यात हैं।

काई-भरे पोखर के किनारे-किनारे चलते हुए एक छोटा टूटा-सा दो-मजिला मकान हमारे सामने आ गया। विद्याधरीबाई के भतीजे श्री भगवतीप्रसाद राय कढाव मे रस पका रह थे। ये गुड बनाने के दिन हैं न! वह हमे ऊपर ले चले, पत्थर की कमजोर सीढिया सँभल-सँभल कर ही पग रखने लायक थी। सहारे के लिए लगी हुई लोहे की छडें अधिकतर गिर चुकी थी, एक-आध पुराने कठघरे का परिचय देने के लिए मुडी तुडी सी लटक रही थी, मगर सहारा लेने लायक न थी।

ऊपर एक झुर्रियो भरा तेजस्वी चेहरा हमारा स्वागत करने के लिए सामने आ गया। उसे देखकर सिद्धेश्वरीदेवी इतनी गद्गद् हो उठी कि सीढी पर ही खडी होकर देखने लगी।

ऊपर एक छोटा-सा दालान और उसके अन्दर कोठरी बनी थी। दालान म एक ओर चूल्हा बना था, रसोई का सामान था। मा-बेटी गले मिली, दोना की आँखें भर आइ। विद्याधरीजी और सिद्धेश्वरीजी लगभग पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद एक-दूसर से मिल रही थी।

कोठरीनुमा उस कमरे मे दो खिडकियाँ ठण्डी हवा के झाके और दिन का प्रकाश ला रही थी। एक ओर एक चारपाई और दूसरी आर एक कोने से दूसरे कोने तक गृहस्थी की चीज कुछ सँजोई, कुछ बिखरी-सी पडी थी। मुझे चारो ओर नजर डालत हुए देखकर विद्याधरीजी हँसी, बोली, "इतने मे दुनिया समाई है बाबू साहब। ढूढेगे ता जुशाँदा भी मिल जाएगा।"

मैंने कहा, "आपको कष्ट देने आया हू।"

वे हँसकर बोली, "खैर, यह आये तो, और कष्ट ता आप लोगा को हुआ। गँवई गाँव के कच्चे रास्ते, ये टूटी-सी मढैया भला कही आप लोगा के लायक हैं। क्या खातिर करूँ आपकी? मैं तो अब सब-कुछ छोडकर यहा पडी हूँ। उम्र-भर

दुनिया को रिझाया, अब तो बस राम को रिझाने मे लगी हूँ, वे रीझ जाएँ तो मेरी बिगडी बन जाए।"

सिद्धेश्वरी देवी ने बात चलाकर कहा, "मैंने अभी इन्हे वो पिशवाज वाली बात सुना दी कि कैसे अम्मा से लेके महफिल मे गयी थी।"

'बडा भागवान साबित हुआ हम तो कहते हैं, उसे पहनने वाली ने इतना नाम हासिल किया। परमात्मा तुम्हारी और तरक्की करे।" विद्याधरीबाई ने मगन मन से सिद्धेश्वरी देवी को आशीर्वाद दिया। मुझे वह दृश्य तन्मय कर गया।

गेहुँआ रग, मँझोला कद दुबली-पतली झुर्रिया-भरी देह, बडी-बडी आखें, पोपला मुँह, जिसमे कत्थे-रँगी एक दाढ हसने पर बार-बार झलक जाती थी—विद्याधरीबाई के उस तेजस्वी व्यक्तित्व का मुझे कुछ कुछ आभास करा रहे थे जो कभी बडी बडी महफिलो को प्रभावित किया करता था। सिर की सफेदी और झुर्रियो के बावजूद उनके चेहरे पर एक प्रकार की दमक थी। उसे देखकर मुझे ही क्या किसी को भी यह सहज विश्वास हो सकता था कि यह आब-ताब हारे हुए व्यक्ति की नही, वरन् उस सामर्थ्यशालिनी की ही हो सकती है जिसने स्वेच्छा से नगर के मान-वैभव का त्याग कर गाँव का शान्त जीवन अपनाया हो।

मैंने पूछा, 'आपके बचपन मे बनारस की किन-किन गाने वालियो के नाम प्रसिद्ध थे?"

"सरस्वतीबाई थी, गन्नो थी, बन्नो थी—गन्नो बन्नो खयाल की गायकी मे सरनाम थी। उसके बाद फिर शिव कुँवर थी, जो गन्नो-बन्नो के मुकाबले की तो न थी, पर अच्छा गाती थी। हमारे वक्त मे हुस्ना ने भी बडा नाम पैदा किया। हमारे खानदान मे एक चन्द्राबाई थी उन्होने भी उस जमाने मे इज्जत हासिल की।"

मैंने पूछा, "आपके बाद वाली पीढी मे कौन-कौन गायिकाएँ आपके विचार से श्रेष्ठ हैं?"

विद्याधरीजी हँसी, कहने लगी, "अपनी और अपने बच्चो की तारीफ करना बडा मुश्किल काम होता है। अब मैं कैसे कहूँ—यह लडकी मेरे सामने बैठी है, इसने भी बडा नाम पैदा किया है। काशीबाई भी अच्छा गाती थी, कमलेश्वरी ने भी नाम कमाया और रसूलन ने भी शाहरत पाई। और शायद बुढापे की वजह से किसी का नाम मुझसे छूट गया हो तो माफ कीजिएगा।"

मैंने पूछा, "आपने तालीम किससे पाई ?"

"रामसुमेरजी से। वे सुमेरू उस्ताद के नाम से मशहूर थे। फिर रामसेवकजी से सीखा, दरमगे में खां साहब, नसीरखां, बसीरखां से सीखा और अखीर में दरगाही महाराज से तालीम पाई।"

"आपकी आयु इस समय कितनी होगी ?"

"अरे आयु क्या पूछते हैं, बहुत होगी। हमारा जमाना तो अब कहीं ढूंढने से भी नहीं मिलता। गौहरजान, नन्हुआ, बचुआ, अच्छनबाई, ये जो हमारी सहेलियां थी, सब चली गईं। वो जमाना ही चला गया। मेरे खयाल में सौ में दस-बारह बरस ही कम होंगे मेरी उम्र में।"

"आपके जमाने में बनारस के बाहर की किन-किन तवायफों के नाम मशहूर थे ?"

"नाच में आपके शहर की नन्हुआ-बचुआ मशहूर थी। आपके यहां की अच्छनबाई भी खूब गाती थी, कलकत्ते की गौहरजान, आगरे वाली मलका, चुनचुले वाली मलका, जद्दनबाई, बम्बई की अजनीबाई और केसरबाई भी खूब गाती थी।'

"किसी महफिल में आपका और गौहरजान का साथ भी हुआ ?"

'अरे कई बार। तीन-चार दफे कलकत्ते में, बनारस में, बलरामपुर में— कई जगह साथ हुआ।"

"उनके गाने में खास बात क्या थी ?

"खास बात क्या बतलाऊँ, उनके गाने का तरीका गवैयों का तरीका तो था नहीं, मगर हां गाने बजाने में खूबसूरती थी और वो हर जबान में गाती थी। वैसे भी भगवान् ने उसे बड़ी खूबसूरती दी थी। बड़ी भागवान थी। गौहरजान की मां मलका क्रिश्चन मेम थी, बाद में मुसलमान हो गई थी।

बतलाये हुए नामों में औरों की विशेषताएँ पूछने पर उन्होंने बतलाया कि अजनीबाई खयाल उम्दा गाती थी। केसरबाई भी खयाल की गायकी में उस समय भी सरनाम थी। लखनऊ की नन्हुआ बचुआ गाने में तो कुछ नहीं थी, मगर नृत्य में बेदाग थी। "जो ज्यादा नाचती हैं वे गा नहीं सकती, उनके गले की नस खराब हो जाती है। अच्छनबाई सब चीजें खूबसूरती से गा लेती थी। आगरे वाली मलका रंगीन थी, खूबसूरत थी और गाती भी खूबसूरत थी।

मैंने पूछा, "आपको किस महफिल में बहुत सफलता मिली ?'

विद्याधरीबाई खिलखिलाकर हँस पड़ी, कहा, "अरे इसकी कहां तक याद

करूँगी ! भगवान् ने सभी जगह बड़ी लाज रखी । हिन्दुस्तान की तो कोई रियासत बची नहीं जहाँ मैं न गयी होऊँ । और फिर पशावर, पटियाला " सिद्धेश्वरीजी ने कहा । "पंजाब," वे बोलीं, "अरे पंजाब में तो बहुत घूम ली बहुतो घूम ली—पच्छमुत्र गुजरात तक गये हम, ढाका गये, रतलाम, जावरा कहाँ तक गिनाएँ !'

मैंने अपना प्रश्न फिर स्पष्ट किया, कहा, "या तो आपको हर जगह सफलता मिली ही होगी पर कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी जगह पाई हुई सफलता स्वयं अपनी ही दृष्टि में बहुत मूल्यवान मालूम होती है । आपको अपनी किसी ऐसी महफ़िल की याद आती हो तो कृपा करके उसके सम्बन्ध में कुछ बतलाएँ ।"

विद्याधरीबाई सिर झुकाकर सोचती रहीं, फिर बोलीं "बुढ़ापे की वजह से अब सभी बातें याद नहीं आती । ऐसा हुआ अक्सर है । इसी गौहरजान का साथ बलरामपुर में हुआ था । तब मेरे सिर में ऐसा दर्द, ऐसा दर्द था कि मैं गिरी-गिरी पड़ती थी, पर जब गाने के लिए खड़ी हुई तो ऐसा समाँ बँधा कि आपसे क्या बतलाएँ, बड़ी तारीफ पाई मैंने । एक बार ऐसे ही आपके यहाँ लखनऊ में चौधरायन के यहाँ जलसा हुआ । हिन्दुस्तान की सब तवायफ़ें थीं । एक से एक आयी थी । मैंने मालकौंस का खयाल, तराना गाया । सारा लखनऊ गौहरजान, गयावाली, सारे तायफे झूम झूम उठे । दिल्ली कलकत्ते से आयी थीं, मगर परमात्मा ने ऐसी आबरू रखी, ऐसी आबरू रखी कि क्या बतलाऊँ आपको !" विद्याधरीबाई की आँखों में पूर्वकालीन स्मृति की चमक इतनी तेज थी कि मानो वह पुराना दृश्य उस समय ही उनकी आँखों के सामने घटित हो रहा हो ।

मैंने काशी में प्रचलित गंधर्व, रामजनी और गौनहारिन वर्गों का भेद पूछा । उन्होंने बतलाया, "गंधर्व सनातनी हैं । हम लोग श्राप के वश होकर मृत्युलोक में आये । हम लोगों के गंधर्व-कुल में ज्यादातर शादी-ब्याह होता है । जहाँ तक हो सके एक आदमी के साथ वक्त गुजारना अच्छा माना जाता है । जो अच्छे घरों की स्त्रियाँ किसी वजह से पैर ऊँचा-नीचा पड़ जाने की वजह से इस पेशे में आ गईं, वे रामजनी कहलाती हैं । इनमें भी खानदानी होती हैं, अच्छी-अच्छी गानेवालियाँ भी होती हैं । और गौनहारिन तो हम लोगों से बिलकुल ही अलग होती हैं, छत्री, ब्राह्मण, डोम, चमार जो घर से निकली वो गौनहारिन हो गईं । ये लोग रीतकाज में घरों में गाने जाती हैं, गंगा-पुजैया वगैरा में आगे-आगे गाती

हुई जाती हैं। अब हम लोगो ने तो निश्चय कर लिया है कि लडकियो को गवाते नही, शादी कर देते हैं। मेरी लडकी की भी शादी हो गई। तभी कर दी थी, क्योकि हमारे ही टाइम से यह उपद्रव दुनिया मे शुरू हो गया था और अब तो जो हो रहा है उसे देख ही रहे है। मैं अपनी लडकी को सिखाती, अपनी गद्दी का खयाल करती तो खराबी आती। मैं तो सबको यही सलाह देती हूँ कि शादी कर दो।"

दूध और रस आया। विद्याधरीबाई कहने लगी, "गाव मे और किस तरह खातिर करूँ, समझ म नही आता।"

मैंने कहा, "हम शहर वालो को यह रस भला नसीब कहा। गुड बनने के मौसम में गरमगरम रस पान करने की बातें उसकी बडी-बडी महिमाओ के साथ सुनी अवश्य थी, पर आज तक मुझ अभागे शहरी को कभी उसका स्वाद नही मिला था। दूध के साथ तो रस मे अजब लज्जत आ जाती है। छककर दो गिलास रस पिया, पान जमाये। सिद्धेश्वरी देवी ने कोठरी मे इधर-उधर दृष्टि दौडकर उनके तानपुर के सम्बध मे पूछा। उत्तर मिला कि एक ब्राह्मण बालक दो-तीन रोज के लिए उसे बाहर ले गया है। विद्याधरीजी उसे सगीत की शिक्षा देती हैं। सिद्धेश्वरीजी न उनसे कहा कि अपनी सब चीजे अब नोटबुक पर लिखा दीजिए। व बोली, "ई लडका का हम कुल लिखउली है। खयाल टप्पा सब लिखउली है। भजन सरगम लिखउली है। ठुमरी तो हमे नही भई " एक अदाज का मुक्त किन्तु सहज गुमान भरी हँसी फूटी। तम्बाकू की चुटकी मुँह मे डालकर बोलीं, "हाँ एकाध ठुमरी वडपेंच की " कहकर फिर हँसी और बात बढा ले गईं, "विद्यादान का बडा पुण्य होता है सो हम दान कर रहे हैं।"

"मैंने पूछा, "लखनऊ और बनारस की ठुमरी मे क्या फर्क है ?"

"बनारस मे खूबसूरती और लोच ज्यादा है। लखनऊ वाले पछाँह की तरफ झुके है। हमारे यहाँ ठुमरी म टप्पा का रगपेंच मिलाकर खूबसूरती बढ जाती है।"

"टप्पा आया तो पजाब से ही है न ?" मैंने पूछा।

"टप्पे की गायकी आयी तो पजाब से ही, मगर खरादी गई यहाँ बनारस मे।'

मैंने कहा, "खयाल की पुरानी गायकी और नई गायकी मे अतर तो है, पर क्या अतर है यह आपसे जानना चाहता हूँ।"

"पुराने खयाल की गायकी जो था अब वो बात नही है। कभी मह हो

है क्या हम बनाएँ आपस, अब यो बान यो रग यो गाने वाला के बनजे रहे।"

मैंने ध्रुपद धमार की गायन-कला की बात उठायी तो खिलखिलाकर हँस "अर जब बूढ़ों को ही नही पूछा जाता आजकल, तब ये ता और भी बूढ़े द से बदतर ! ह ह-हः!"

मैंने कहा "अब तो बूढ़ा का महत्त्व बढ़ गया है, क्योंकि हमें उनसे नये युग ति देन के लिए पुराने अनुभवा का सार लेना है।"

किंवदंतिया की नायका मत्तार्गी अट्ठासी वय की स्वस्थ, कर्मठ और सनेज धरीबाई से मिलकर मुझे अपार आनन्द हुआ। फकीरी और अमीरी में एक-शान रखने वाले पुरुष भी अब जरा कम ही दिखलायी देते हैं, स्त्रियाँ तो भी कम। कोई खेडावान ब्राह्मण धनी इनके संरक्षक थे। तीस-बत्तीस वर्ष उनका देहान्त होने पर ये चमक-दमक के जीवन से अलग हट गईं। भाई देहान्त होने पर उनके बच्चा की देख भाल करने के लिए काशी छोड़कर यहाँ ाईं। अब जमींदारी तो है नही, खेती-बारी होती है उसी से उनकी गुजर हो ा है।

विद्याधरीबाई की समवर्ती गायिका अंजनीबाई मालवेकर राष्ट्रपति द्वारा ान प्राप्त कर चुकी हैं। उनके बाद की पीढ़ी की बनारस की रसूलनबाई को म्मान प्राप्त हो चुका है। काशी से दूर रहने के कारण ही विद्याधरीबाई का शायद लागा की स्मृति से भी ओझल हो गया है। सुप्रसिद्ध लेखक बघुवर ाशिकेय ने मुझे बतलाया था कि विद्याधरी से जयदेव के गीतगोविन्द की ाएँ जिसने सुनी हैं वह उन्हें कभी भूल नही सकता। विद्याधरी और राजे ने गोस्वामी दामोदरलालजी से कामसूत्र पढ़ा था। काशी की एक सुप्रसिद्ध गायिका बड़ी मोतीबाई विद्याधरी का नाम आने पर बोली, "पुरानी मे धरी, आहा!" काशी मे मैंने अनेक से विद्याधरीजी के सम्बन्ध मे सुना। धरीजी ने अपने समय मे सम्पूर्ण उत्तराखण्ड का अपनी गायन कला स प्रभा-कर कभी रस बरसाया था। समय रहते यदि उन्हे राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त के तो सर्वथा उचित ही होगा।

*बडी मोतीबाई

काशी की अन्य प्रसिद्ध गायिकाओं में मुझे रसूलनबाई, टामीबाई और बडी मोती-बाई से भी मिलना था। टामीबाई के वर्तमान निवास स्थान का पता बहुत चाहने पर भी न मिल सका। रसूलनबाई, जो अब बेगमसाहिबा कहलाती हैं, अपने समधियाने गयी हुई थी, अत उनसे भी भेंट न हो सकी। श्री रामकृष्ण वैद्य के साथ बडी मोतीबाई के यहाँ गया। बडी मोतीबाई ठुमरी गाने के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध रही हैं। पडित रामकृष्णजी ने बतलाया किसी समय में मोतीबाई के यहाँ हर कोई प्रवेश भी नहीं कर पाता था, ड्योढी पर दरबान बैठे रहते थे। अब उनकी बहुत बुरी दशा है। सिद्धेश्वरी देवी ने भी बतलाया था कि उत्तर प्रदेश सरकार से उन्हें कुछ पेंशन मिलती है जिससे उनकी गुजर-बसर होती है।

ऊँची चारदीवारी से घिरे हुए एक पुराने बाग़ में बने हुए मकान में बडी मोतीबाई रहती हैं। एक दालान में उनकी छोटी सी गृहस्थी बिखरी हुई थी। मोतीबाई का वर्ण गोरा, चेहरा-मोहरा सुन्दरता के खण्डहर जैसा और करुण लगा। उनकी आयु इस समय साठ-बासठ के लगभग होगी। वे आँखों की पीडा से परेशान थीं। मेरे स्वागत-सत्कार की चिन्ता ने उन्हें और भी परेशान कर दिया। मैंने इस चिंता से उन्हें यथासम्भव मुक्त किया, बातें आरम्भ कीं।

सबसे पहले उन्होंने अपनी रेडियो की असफलता की ही चर्चा छेडी—उन्होंने अर्जी भेजी, इलाहाबाद रेडियो केन्द्र से बुलावा आया, वे मेरे बुखार में गयीं। "उसके पहले ही मुझे लकवा मार गया था। उससे मेरी याददाश्त कमजोर पड गई। क्या करूँ—खैर! वहाँ जाकर पता चला कि मेरा इम्तिहान होगा। मैं घबरा गई, नापास कर दी गई।" बडी मोतीबाई को अपनी इस असफलता का अपार दुःख है। कहने लगीं, 'मैं सोचती थी कि रेडियो में काम लग जाने से कभी कभी आमदनी होती रहेगी, उससे मेरा बडा सहारा हो जाएगा। खैर, यह बात तो थी ही, मगर इससे भी ज्यादा मेरे मन में यह बात थी कि उस्तादों से सीखी हुई जो विद्या मेरे पास है उसकी कुछ कदर हो जाएगी। मगर भगवान् को मंजूर नहीं था। अब तो भगवान् ही का सहारा रह गया है मुझे। जिसका

कोई नही होता उसके वो ता हाते ही हैं। अब मेरा जमाना सो रहा नहीं, हुजूर! वो वक्त भी देखा, यह मा दम रही हूँ—क्या करूँ? अब तो समझती हूँ कि मुझे गाने बजाने का भूल जाना चाहिए, लेकिन कैसे भूलूँ बाबू साहब, बचपन में सीखने के पीछे बहुत मार खाई। अब उसी विद्या से अपने भगवान को रिझाती हूँ।"

मोतीबाई के स्वर की करुणा हृदय को छूनी थी। लेखक की हैसियत से मैं फिल्मी दुनिया म सात-आठ वर्ष काम कर चुका हूँ। पहले की बडी शान शौकत वाली हीरोइना और हीरो बनने वाले कलाकारो का पराभवकाल मैंने वहाँ खूब-खूब दखा। जवानी मे दस पाँच बरस चमक जाने वाले जब बुढ़ापे में दर-दर के मुहताज बनत हैं तब उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। मूक चित्रपटा के युग की एक बडी ही शानदार वाली हीराइन बुढ़ापे मे और कही सहारा न पाकर बम्बई की सडको पर भाख माँगा करती थी। दुनिया का दिल बहलाने वाले कलाकारो का उनकी ढलती उम्र मे अक्सर यही हाल होता है। खैर, मैंने मोतीबाई से उनके जीवन के सम्बध मे प्रश्न पूछना आरम्भ किये।

मोतीबाई के पितामह राय विदेशाजी अपनी दो लडकियाँ और दो लडको के साथ गोरखपुर की ओर से बनारस आय, कबीर चौरा म टिके। बडी लडकी राजेश्वरी की तालीम शुरू हुई। बलदेव उस्ताद के पिता भैरासहायजी राजेश्वरी-बाई के साथ सगत करत थे। "एक बार हमारे दादा बाबा किनाराम के स्थल पर हमारी फुआ, राजेश्वरीबाई को लेकर गये थे। वहाँ के गुरुजी ने देखते ही कहा कि अरे यह तो रानी है, इसे दरभगा ले जाओ। बस उसके बाद भैरोसहाय जी और मथुराजी को सारगी पर सगत करने के लिए साथ लेकर राजेश्वरीबाई को हमारे दादा दरभगा ले गए।"

फिर क्रमश सारा परिवार वही चला गया। राजेश्वरीबाई की छोटी बहन दौलबाला का एक अच्छे घराने म विवाह हो गया। मोतीबाई के पिता का भी वही विवाह हुआ। उनके पाच लडकियाँ हुईं—पूटी, किशोरी, इन्दुमती, कमलाबाई और मोतीबाई। पूटी और किशोरी को हैदराबाद दक्षिण मे रईसा-सामन्ता का सरक्षण मिल गया। इन्दुमती को काशी मे ही एक राजा का आश्रय मिला। कमलाबाई दिल्ली के किसी रईस की रक्षिता होकर वही बस गइ। और मोतीबाई ने अपने अच्छे बुरे दिन काशी म ही देखे। ये जब चार वर्ष की थीं तब इनका परिवार दरभगा स काशी लौट आया था। यही मिठाईलाल बीनकार और मोज-उद्दीन खाँ साहब स इन्होंने सगीत की शिक्षा पाई। मिठाईलाल उस्ताद अस्सी

वष की आयु में मरे । उस समय मातीबाई लगभग बीस-बाईस बरस की थी । अपने समय म मातीबाई ने बडा यश और धन-वैभव अजित किया । लगभग चार-पाच लाख रुपये की जायदाद इन्हे अपन पुरखा से भी प्राप्त हुई ।

मैंने पूछा, "आप हिंदुस्तान म किन-किन शहरा और रियासता म गान के लिए बुलायी गइ ?"

"बासवारा, कश्मीर, कहाँ-कहा तक याद करूँ, बडी-बडी जगहा मे गयी, अब मेरी याददाश्त कमजोर हो गई है । दो-चार दिन सोच-साचकर कागज़ पर लिखू ता सब बातें याद आएँ । अब तो सत्रह-अठारह बरस से सब छाड दिया मैंने । पहले दस-दस दिन की महफ़िलें हुआ करती थी और तोल के रुपया मिलता रहा । अब वो सब बाते जाने कहा चली गईं, अब तो बस भगवान् की ही शरन म पडी हूँ ।"

"महफ़िलो म अपने ज़माने की और किन-किन मशहूर गानेवालियों का साथ आपने किया ?"

"आगरेवाली मलका, चिलबिलेवाली मलका रही । केसरबाई खूब गाती रही—आहा ! अलीगढ की नवाब पुतली एक दफ़ा चमककर बैठ गई, खूब गाती रही । नाहन सिरमोर इस्टेट मे एक बार हमारा-इनका साथ भया रहा । [illegible] एक बार तो ऐसा भया कि चौधरी साहेब की महफ़िल में नवाब [illegible] के बाद जानकीबाई इलाहाबाद वाली ने गाने से इकार कर दिया । [illegible] का हुस्नाबाई बडी नामी रही । गोहर यहाँ आयी थी, हुस्ना उनसे [illegible], हम सब भी हुस्ना के साथ उनस मिलने गए । तब मैं छोटी था । [illegible] ने इज़्ज़त पैदा की वैसी किसी ने नही की । और पुराना म [illegible] का, आहा । अब नई लडकियो मे यहाँ गिरजादेवी अच्छा गाती है, [illegible] ताराबाई भी अच्छा गाती है ।"

मैंने पूछा, "पुराने गुरुआ मे और अबके [illegible], कोई फ़र्क नज़र आता है ?"

ने सारगी बजाना छोड दिया, कहा कि या तो ऐसी बजाएँगे वरना नही बजाएँगे। फिर उन्होने विचित्र बीन साधी और ऐसी साधी कि हिन्दुस्तान मे कोई उनके मुकाबले का न रहा।"

मैंने पूछा, "अबकी गायकी और पिछले जमाने की गायकी मे आपको क्या खास भेद नजर आता है ?"

"पहले की गायकी थोडी-सी थी, मगर उसमे चोट थी। अब तो रातभर गाएँ, झमेला-ही-झमेला है असर नही। पहले बनारस मे था कि उस्ताद लोग जो गाने सिखाते थे वो पुराने थे और सिखखेकारी के सिखाते थे। बारा बारा तेरा-तेरा बरस तक तालीम चलती थी। अब कौन उस्ताद है कि जो एक बारा गले से 'आ-आ' कर दे तो कलेजा छिद के रह जाए। और अबके उस्ताद तो ऐसे हैं कि साल-भर म सिखाय दें—अरे छ महीने मे तालीम पूरी कर देते हैं। सिनेमा ने सब तबाह कर दिया बाबू साहेब, और अब वो जो सामने लगा दिया जाता है—वो माइकाफून, ई बडा चरखा है। मेरी तो रूह फना होती है।"

अपनी साखा की हैसियत बिगडने की कहानी सुनाते हुए उन्होने बतलाया कि जब घर के बुजुग न रह तब एक बार इनके यहा ऐसी भारी चोरी हुई कि नाक की कील और हाथ की चूडिया को छोडकर इनके पास कुछ न रहा। उसके बाद ही इनकी आर्थिक हालत बद से बदतर होने लगी। जब खच न चला तो इन्होने अपना बाग़ भी बेच दिया। वह भी बडी जायदाद थी, पर खाने वाले माल खा गए, इनके हाथ सिफ पैंतोस हजार रुपये लगे। फिर तबाही ही आती चली गई। बहन की दो लडकियाँ इनके पास रहती थी, उनको पढा लिखाकर मोतीबाई ने दोनो की शादियाँ कर दी—"बस इसी बात की मुझे बडी तसल्ली है। हमारा तो जो होना था वो हो गया, मगर लडकिया घर-गिरस्ती की हो गइ। नये जीवन मे चली गइ। इसकी मुझे बडी तसल्ली है। अब हमारी तो भगवान् के चरनो में ही गती है।"

बडी मोतीबाई के यहाँ से लौटकर आते हुए मेरा मन भारी हो गया। किसी को भी कष्ट मे दखकर मन को दु ख हाता है। कोई भी सिद्धान्त अथवा आदश इस दु ख को मेरे मन स टाल नही पाता। मैं पूजीवादी सभ्यता का पोषक नहीं हूँ। किसी काले बाजारिये सेठ के सत्यानाश होने पर एक ओर जहाँ मुझे राहत मिलती है वहाँ ही दूसरो ओर उसके व्यक्तिगत कष्टो को दखकर पीडा भी होती है। एक आध बार ऐसे अवसरो पर मेरे मित्र मुझे टोक भी चुके हैं। उनका कहना था कि जो दया का पात्र नही, उसे दयादान क्यो दत हा ?

अब तक इस बात का उत्तर न दे पाकर भी मेरा मन इसे पूरी तौर पर स्वीकार नही कर पाया। मैं किसी व्यक्ति के दुष्ट कर्मों से घृणा कर सकता हूँ, परन्तु व्यक्ति से नही कर पाता। मेरे जीवन मे अब तक दो व्यक्ति ऐसे भी आये हैं जिनके अपकारो का तथा उनसे पाये हुए कष्टो को पूरी तरह भूल जाना आज तक मेरे लिए असम्भव है। उनमे से एक व्यक्ति आज अपना पूर्व वैभव खोकर सकट ग्रस्त जीवन बिता रहे हैं। जब से उनके बुरे दिनो की बात सुनी है मैं उनके प्रति अपना क्रोध-भाव खो चुका हूँ। उनके प्रति सहानुभूति दिखलाने पर स्वय मेरे घरवाले भी मुझसे नाराज़ होते हैं। पर मैं मानसिक सहानुभूति देने से अपने आपको रोक नही पाता। अब तक समझ नही पाया कि यह मेरा गुण है अथवा दुर्गुण, फिर भी इतना तो कह ही सकता हूँ कि मुझे अपने इस स्वभाव से तनिक-सी भी शिकायत नही, एक प्रकार से अच्छा ही लगता है। मेरा मन तो बुरा नही हुआ, तब फिर मेरा नुकसान ही क्या ? हा एक नुकसान होता है, मैं किसी को उसकी बुराई के लिए दण्ड नही दे पाता। वेश्या जाति को स्त्री और पुरुषों के समाज के लिए असम्मानपूर्ण और घातक मानकर भी जब कोई वेश्या बुरी-टूटी हालत मे मेरे सामने आती है तो कष्ट होता है।

इसी तरह एक पुराना जमाना जो बीत चुका है उसे यदि लौटाकर लाने का प्रयत्न किया जाए तो मैं विरोधियो की अगली पक्ति म खडा होकर अपनी भरपूर शक्ति के साथ उसे आगे आने से रोकूगा, पर अपनी पुरानी संगति मे याद के तौर पर वो जमाना मुझे अब भी गुदगुदा देता है। यह विरोधाभास दरअसल होकर भी नही है। मैंने लडकपन और नौजवानी मे वेश्याओ की आन-बान-शानवाली जो तस्वीर देखी सुनी है और जो उस समय से ही मेरे मन मे एक प्रभाव बनकर जम चुकी है उसके प्रति एकदम वीतराग तो नही हो पाता। वो महफिलें, जिनमे हजारो रुपये खर्च कर रईस अपनी शान दिखाया करते थे, अपनी जगह पर स्मृति मे आज भी मुझे लुभाती है। हा आज कोई रईस अगर वैसी महफिलें करे तो बुरा न मानूगा। गायिका और नर्तकी के रूप मे वेश्या जाति की अब आवश्यकता ही नही रही, क्योकि इन दोनो ही कलाओ को पूरे समाज ने ग्रहण कर लिया है। इससे एक अच्छाइ भी पैदा हुई है। इन कलाओ का पूर्व-व्यावसायिक रूप नष्ट होकर इनमे एक नया निखार आ रहा है। नाच और गाने का विशेष लालच लेकर जो पुरुष अपने घरेलू वातावरण को छोडकर बाजारो म भटकते थे वे नये जमाने मे अब उधर रुख नही करते। इस तरह अब इन कलाओ का सामाजिक रूप निखर रहा है। इसके लिए अब वेश्या-वर्ग की

आवश्यकता नहीं रही। रहा वेश्या-वर्ग के अस्तित्व का दूसरा कारण, उसके लिए फिलहाल क्या कहूँ, सदा से ही उसका खुला और छिपा व्यापार रहा है, आज कोई नवाई नहीं आई। बहुत से लोग जोर देते हैं कि कामी पुरुषों की लालसाओं को एक सीमित क्षेत्र में बाँध रखने के लिए वेश्याओं का समाज में पालना चाहिए, वरना वो शरीफ औरतों को बिगाड़ेंगे। यह दलील पहले तो बरसों तक मुझे भी बहुत जोरदार लगती थी, पर अब ऐसा नहीं लगता। शरीफ समाज में जो औरतें बिगड़ने वाली होती हैं उन्हें कोई रोक नहीं सकता और जो नहीं बिगड़ना चाहतीं उन्हें उस राह पर कोई ढकेल भी नहीं सकता। व्यभिचारी-कामी पुरुष केवल उन स्त्रियों को ही अपने मतलब के लिए फुसला पाते हैं जो इस राग-रंग के लिए तबीयतदार होती हैं। वेश्याओं को समाज में कायम रखने वाले यह भूल जाते हैं कि उनकी काम तृष्णा के लिए अक्सर गुण्डों द्वारा ऐसी शरीफ लड़कियाँ और औरतें भी तिकड़मों से उड़ायी जाती हैं जो स्वेच्छा से छिपे या खुले तौर पर हरगिज़ इस राह पर कदम न रखतीं। पुरुष की वासना में तो ऐसे सुर्खाब के पर लगे हैं कि उसे वैधानिक और धार्मिक बनाने के लिए उड़ा और चुराकर वेश्याएँ बनाई जाएँ और बेचारी स्त्री की वासना को वैधानिक और धार्मिक बनाने के लिए क्या किया जाए? रही स्त्री या पुरुष के चरित्रों के अच्छे बुरे होने की बात, तो उसके लिए सामाजिक कारण अपने आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक रूप से आगे बदलेंगे। उनकी दुहाई देकर वेश्या संस्था को समाज में जीवित रखना गलत है, यह केवल एक बेवकूफी से भरा हुआ तर्क है। उस वर्ग के समाप्त होने की करुणा व्यक्तिगत रूप से मेरे या और किसी के मन को छुए, परन्तु सामाजिक रूप से वह बेईमानी हो जाती है। सामाजिक रूप से उस करुणा का अर्थ यही है कि हम पुरुष जाति के नीति-विधान शास्त्री स्त्री-जाति को वर्गों में बाटकर बढ़ती हुई मानवीय सभ्यता को अब अधिक कलंकित न करें।

* काशी की प्राचीन वेश्याएँ

महफिलें और मेले

काशी का सम्बन्ध केवल उत्तर प्रदेश से ही नही वरन् सम्पूर्ण भारत से है। काशी विश्व के प्राचीनतम नगरो मे से एक है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक यदि किसी को भारतीय नगर समाज में होने वाले विभिन्न परिवर्तनो एव उसके विकास को देखना हो तो उसे कुछ वर्ष तक काशी मे ही रहना चाहिए। काशी देगची के एक चावल टटोलने के समान ही सम्पूर्ण भारत का हाल बतलाने की क्षमता रखती है।

आठवी शताब्दी मे कश्मीर-नरेश महाराज जयापीड के एक मन्त्री दामोदर गुप्त-कृत प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ 'कुट्टनीमतम्' की कहानी भी काशी की ही पृष्ठभूमि मे रची गई है। अत काशी के और एक तरह से भारत के रसिक समाज को समझने के लिए मैंने वहाँ अपने साहित्यिक गुरुजनो का सहारा लिया। राय-कृष्णदासजी, रामचन्द्रजी वर्मा कृष्णदेवप्रसादजी गौड, विनोदशकरजी व्यास, दुर्गाप्रसादजी खत्री वाचस्पतिजी पाठक शिवप्रसादजी रुद्र काशिकेय, मोहन एल० गुप्त, लक्ष्मीशकर व्यास, डा० मोतीचन्द्र आदि सज्जनो से बहुत-सी बाते मिली। इनके अतिरिक्त 'आज' कार्यालय के श्यामदासजी, पडित रामकृष्ण वैद्य, पडित नृपेन्द्रशकर मिश्र, वल्लमजी, श्री वेनीप्रसाद अग्रवाल रिटायर्ड प्रिंसिपल, पडित गिरिजाशकर दीक्षित, त्रिगुणजी के पुत्र आदि से भी आवश्यक सामग्री पाई। वह सामग्री इस अध्याय म ज्यो-की-त्यो संजोए दे रहा हूँ।

रायकृष्णदासजी

"कई जातियो मे महफिले कराने की बडी भारी परम्परा थी। प्रसाद जी कहते थे कि काशी मे व्यापार के तीन युग आय, पहले गुजराती वैश्यो का जोर रहा, फिर खत्रियो का और बाद म अग्रवाल वैश्यो का काशी की लक्ष्मी पर आधिपत्य रहा। यही लोग महफिलें कराते थे। यहाँ रईसो के दो वर्ग थे—जमींदार और महाजनो का वर्ग तथा बडे व्यापारियो का वर्ग। कुछ रईसो के यहाँ तो साल की कुछ महफिले निश्चित रूप से होती ही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के घर के

पास एक बंगाली बसु परिवार भी रहता था। वे लोग भी बडे धनाढ्य थे। दुर्गा कालो-पूजा के अवसर पर उनके यहाँ निश्चित रूप से महफिलें होती थीं। यहाँ के रईस भी त्योहारों पर महफिलें कराते थे, पर जब से हमने होश सम्हाला तब से त्योहारों की महफिलें प्राय नहीं देखी। शुभ कार्यों के अवसर पर अवश्य होती थी। इन महफिलों की सजावट में मुगलई दरबारों का अनुकरण होता था। आगन साफ कर ऊपर सु दर चँदोवा ताना जाता था और झाड-फानूस लटकाए जाते थे। आगन के बीचोबीच मखमली मसनद तकिया आदि सजाया जाता था। आगे साज रखे जाते थे, एक जोड गुलाबपाश, एक जोड फूलचगेर, एक खसदान, एक इत्रदान, इलायची मसाले का एक चौघडा पान की तश्तरी और डमरू की आकृति का एक बडा सा उगलदान भी रखा जाता था। कायस्थों की महफिलों में हुक्का भी रखा जाता था। होली की महफिल में एक थाल में अबीर और कुमकुम भी रहते थे। महफिल की सजावट में पछियों के पिंजरे भी टाग जाते थे। रात के दो बजे के बाद एक ओर पछी चहकते थे और दूसरी ओर बाईजी। बडा समाँ बँधता था। मृच्छकटिक' के दूसरे अक में भी ऐसा वर्णन आता है। इसके अर्थ यह हुए कि यह पुराना चलन था। इन सब बातों के अतिरिक्त कहाँ जूते उतारना, कहाँ पाँव पोछना, इन सबके भी कायदे होते थे। महफिलों का चलन उठ जाने से कला का तो ह्रास हुआ ही, अदब-कायदे-संस्कृति का भी ह्रास हुआ, कसब बढ गया।

"अग्रवालों की महफिलों में रईस लटूदार पगडी पहने, पडित पडिताऊ पगडी पहने और नौकर साफे बाँधे नजर आते थे। महफिल और ज्यानार साथ-ही-साथ होती थी। महफिल में पहले भाडो का तमाशा होता था ताकि बच्चे वगैरह सो न जाएँ। महफ़िल में कई तवायफों का नाच होता था। लोग पूछते थे, कितने डेरों का नाच हुआ ? बडी बडी महफिलों में सात-आठ डेरों या इससे भी अधिक डेरों का नाच हुआ करता था। नृत्य यही अपना कत्थक होता था, सारंगी-तबले पर। भारतनाट्यम्, मणिपुरी आदि तो अब बहुत देखने को मिलने लगे हैं। हमारे यहाँ उत्तर प्रदेश में तो कत्थक का ही रिवाज था। नृत्य के उपरांत गायन आरम्भ होता था। ठुमरी, गजल आदि के साथ बाईजी भाव भी बतलाया करती थी। भाडों और रडियों की बडी नोक-झोंक चलती थी। भाँड रडियों को झेंपाते थे और रडियाँ उन्हें करारा जवाब देने की ताक में रहती थी। एक बड़ा अच्छा लतीफा है कि नृत्य करते हुए एक वेश्या का रूमाल गिर

गया। मोड बोला, 'हुजूर, बाईजी के अण्डा हुआ।' तवायफ ने चट से जवाब दिया, 'ए हुजूर देखिए, अण्डा पलकर बोलने भी लगा।'

"इसी प्रकार जब यह सब हो चुका तब पक्के गाना की बारी आती थी। रात में जब मोड छँट जाते थे, केवल रसज्ञ ही रह जाते थे, वास्तव में गायन तब जमता था। सबसे बाद में सबसे प्रसिद्ध गायिका गाती थी।

"हमारा पहला विवाह सन् १६०८ में हुआ। तब हम सोलह वर्ष के थे। विद्याधरी उस समय भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। उस समय वह लगभग चौबीस वर्ष की रही होगी। बनारस की महफिलों में बाहर की गायिकाएँ प्राय कम ही आती थीं। यहाँ तो स्वयं ही बड़ी-बड़ी गायिकाएँ रहती थीं। हमारे छुटपन की पुरानी तवायफों में सरस्वती और हुस्ना नामी थीं। हुस्ना से भारतेन्दु का पत्र-व्यवहार भी होता था। हमने जब होश सम्हाला और गायन विद्या को सुनने और समझने लगे, तब हुस्ना की आयु लगभग पचास वर्ष थी। एक बार हमको भारतेन्दु के पाँच छः चित्र हुस्ना से मिले थे। उसके हाथ की लिखत भी बहुत सुन्दर होती थी, पुरुषों की लिखत-जैसे सुन्दर अक्षर उसके होते थे। हुस्ना के एक लड़की थी, उसका विवाह किया, फिर वह मर गई। हुस्ना भी बाद में पागल हो गई।

'कलकत्ते की गौहर गायिका के रूप में तो बाद में प्रसिद्ध हुई थी। गौहर की माँ विक्टोरिया एंग्लो-इण्डियन थी, बाद में मुसलमान हो गई, उसका नाम मल्का हुआ। फिर गौहर बनारस में आ गई थी। हमारे राय छगनजी ने उसको नौकर रखा था। अन्त में गौहर ने एक ईरानी युवक को अपने पास रख लिया था। वह ईरानी गौहरबाई पर मुग्ध था। महफिल के बाद हरएक से पूछता फिरता, कहिये गाना कैसा था? सन् '११ की इलाहाबाद की नुमाइश में गौहर जान का सार्वजनिक गायन भी हुआ था। उसी समय वह अकबर इलाहाबादी के पास अपनी शायरी का दीवान और बड़ी-बड़ी सौगात लेकर गयी थी। फिर वह ईरानी युवक गौहरजान की तरफ से उनके पास यह प्रार्थना लेकर पहुँचा कि गौहर की प्रशंसा में कुछ लिख दीजिए। अकबर ने एक शेर लिखकर दे दिया, वह हम ठीक तरह से इस समय याद नहीं है "

मैं एक दिन पहले ही प्रसंगवश श्रीकृष्णदेव प्रसादजी गौड से वह शेर सुन चुका था, इसलिए तुरन्त सुना दिया—

आज 'अकबर' कौन है दुनिया में गौहर के सिवा।
सब खुदा ने दे रखा है एक शौहर के सिवा॥

रामचन्द्रजी वर्मा

"कार्तिक की लोलाक छठ का मेला यहाँ प्रसिद्ध है। बाबा किनाराम के स्थल पर नगर-भर की वेश्याएँ गाती थी। पुराने विश्वनाथ 'आदि विश्वेश्वर' म भी प्रति सामवार को वेश्याएँ दशन करने जाती थी। प्रति वर्ष गोपाष्टमी के दिन वहा वेश्याओ का मेला लगता था। इसलिए यहा के मनचले लोग आदि विश्वेश्वर को रडीबाज़ महादेव के नाम से पुकारते है।

"यहाँ के बुढवा मगल के मेले म भी वेश्याआ की बडी धूम रहती थी। वर्ष के अतिम मगलवार को बुढवा मगल कहते थे। मेरे बचपन म यह मेला तीन दिन हाता था—मगल दगल और झिगवा का मेला। पहले लोग झांझ-करताल बजाते हुए अपना नावो पर अस्सी-घाट से आते थे और दुर्गामदिर के दर्शन करके लौट जाते थे। बाद म वेश्याआ का समावेश होने से मला तीन दिन के बजाय छ दिन का हाने लगा। महाराज बनारस, महाराज विजयानगरम् और गोपाल मदिर वालो की नावे सजने लगी। मेले मे ज़िले भर की वेश्याए आती थी। पान की दूकानें नावा पर ही लगती थी। एक नाव का घेरकर तीस-चालीस नावे बँध जाती थी।

"मेरे बचपन में महफ़िलें वडी ज़ोरदार हुआ करती थी। एक अग्रवाल सज्जन के यहाँ तीन दिन की महफ़िल हुई। उसम इत्र का इतना प्रयोग हुआ था कि महफ़िल के बाद भी तीन-चार दिन तक गली महकती रही।

'पुरानी वेश्याओ मे बडी मैना अति प्रसिद्ध थी। जब मैंने देखा तब वह साठ-पैंसठ वर्ष की थी। वह गाँजा पीती थी, गाँजे का दम्पा लगाकर हो गाती थी। बुढवा मगल मे वह सवेरे रामनगर मे गाती थी और इस पार छ सात हज़ार लोगो की भीड खडी सुनती थी। बडी मैना के अतिरिक्त यहाँ शिव कुँवर, हुस्नाजवाहर, छोटी मैना, राजेश्वरी, विद्याधरी आदि के नाम भी बडे प्रसिद्ध हुए। यहाँ की प्राचीन वश्याआ के नाम आपको भारतन्दु बाबू हरिश्चद्र-रचित 'वेश्या स्तोत्र' म मिल जाएँगे।

'पजाब मे वेश्या को कजरी कहते हैं। उर्दू-साहित्य मे रडी शब्द युवती स्त्री के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। राजस्थान मे जयपुर के आस-पास सुन्दरी युवती को रडी कहते हैं। मराठी और बगला भाषाआ म रॉड शब्द वश्या का पर्यायवाचक है।"

वेश्याआ के अतिरिक्त अन्य गानेवालिया के सम्बन्ध म भी बातें चल पडी। रायकृष्णदासजी बोले, "विवाहिता कथकिनें घरा की स्त्रिया को गाना सुनाने

जाया करती थी। इनमे कोई-कोई किसी की रक्षिता भी हो जाया करती थी। मुसलमानो मे मीरासिनें होती थीं, उनमे भी विवाहिता और रक्षिता दोनो ही हुआ करती थी। मीरासी अधिकतर भांड का काम करते थे। डोम जाति भी गाने के लिए प्रसिद्ध थी। 'संगीत रत्नाकर' मे 'डुम्ब' वृत्ति का उल्लेख मिलता है। चौरासी सिद्धो मे डुम्ब भी हैं। डुम्ब से डोम, डोम से डोम फिर रोम हुआ। यूरोप में जिप्सियों की भाषा रोमनी कहलाती है।"

अमेरिका के पॉल आर्ट म्यूजियम के डायरेक्टर महोदय भी उस समय राय साहब द्वारा भोजन पर आमन्त्रित होकर वहाँ उपस्थित थे। उन्होने बतलाया कि जिप्सी जाति के लोग अमरिका मे भी हैं। वे बड़े बड़े नगरो मे आकर दूकानें खोलते हैं, चोरी इत्यादि भी करते हैं तथा उनकी स्त्रियाँ वेश्या वृत्ति करती हैं। कुछ वर्ष पहले 'न्यूयॉर्कर' पत्रिका मे इनके सम्बन्ध मे एक विस्तृत लेख भी प्रकाशित हुआ था।

रामचन्द्रजी वर्मा ने 'मुँह लगाई डोमनी गावे ताल-बेताल' की याद भी चट से दिला दी। उन्होने कहा, 'ये डोमनियाँ घर की स्त्रियो को भी गाना सुनाती थीं और पुरुषो को भी। इनके अतिरिक्त गौनहार और गौनहारिनें भी हुआ करती हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश मे, विशेष रूप से बनारस मे गौनहारिनो की परम्परा है। गौनहारिनो मे सब जातियो का समावेश होता है। ये स्त्रियाँ बधावे गाती हुई औरतो या मर्दों के साथ बाजार मे भी निकलती हैं। वेश्या कभी इस प्रकार नही गाती। हाँ अपने बधावो मे वे अवश्य गाती हैं। बधावे के जुलूस मुसलमानो मे भी निकलते हैं। गौनहारिनो की पंचायत भी होती है।"

यहाँ की गायिकाओं में 'गंधर्व' और 'रामजनी' नामक दो वर्ग होते हैं। वर्माजी और रायसाहब के मतानुसार रामजनी वर्ग बिहार से आया। (विद्याधरी जी इस बात को नहो मानती।) गंधर्व और रामजनी पहले परस्पर रोटी बेटी नही करते थे।

महफिल के सम्बन्ध मे वर्माजी को अंत मे एक बात और याद आई, बोले, "यह भी नोट कर लीजिए कि महफिलो के बाद 'जशन' होते थे। जितनी तवायफें आतीं थीं, वे सब जशन मे अपने कीमती पेशवाज पहनकर एक साथ नाचती थीं। जशन मे एक साथ गायन भी होते थे। इन जश्नो मे नृत्य और गायन-कला के दर्शन हुआ करते थे।

डॉक्टर मोतीचन्द्र

ख्यातनामा इतिहास वेत्ता और विद्वान् डॉक्टर मोतीचन्द्र से बम्बई मे भेट हो

गई। बनारसी भेंटा की कड़ी में उनके द्वारा प्राप्त जानकारी जाड़ने का लोभ सवरण न कर सका। डॉक्टर साहब ने हाल ही मे ईसा की चौथी पाँचवी शती गुप्तकाल के लिखे हुए सस्कृत मे चार-एक नट-नाटको का अनुवाद 'शृगार हाट' के नाम से प्रस्तुत किया है। शृगार हाट के चारो नाटक तत्कालीन वेश्याओ और उनके प्रेमियो के समाज का अनोखा चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस अनुवाद की सबसे बडी विशेषता यह है कि रूप हाट मे जो साकेतिक शब्द उस समय प्रचलित थे उनके अनुवाद हेतु बनारसी शृगार हाट की वतमान साकेतिक बोली के शब्द प्रयुक्त किये गए हैं। मोतीचद्रजी ने बतलाया, ' गुप्तकालीन 'दारिका सुदरी' आजकल 'नोचो' कहलाती है, नोची उस वेश्याबाला को कहते हैं जिसके कुँवारपन की प्रतीक नथनी न उतरी हो। 'बधकी' सबसे नीची श्रेणी की वेश्या को कहते थे, अब उसे 'टकहिया रडी' कहा जाता है। पुरुषद्वेषिणी प्रकृति की स्त्री को आज की बोलचाल में 'मरद मडकनी' कहते हैं। 'पात्री' को अब पतुरिया कहते हैं।

"चतुर्भाणी ('शृगार हाट') मे तुम वेश्या के अनेक नाम देखोगे—पुश्चली, कामिनी, बधकी, वेशयुवति गणिका, वार मुख्या, गणिका परिचारिका गणिका-दारिका, चामर ग्राहिणी, पताका वेश्या, कुम्भदासी रूपाजीवा, मदनदूती, नटी शिल्पकारिका—ये सब वेश्या के पर्याय हैं। शमली, कुट्टनी, गणिकामाता आदि 'वेश्या अम्मा या खाला' के पर्यायवाची शब्द हैं।

"बनारस की महफिलो मे एक से अधिक बाईजी भी गाती थी। ऐसे होड़-भरे गाने तीन वर्गों के होत थे—'गजरा', 'झूमर' और 'दगल'। गजरे म दो वेश्याएँ खडी होकर गाती थी, झूमर मे चार-पाच गायिकाएँ शरीक होती थी और दगल मे कम्पिटीशन होता था। प्राचीनकाल मे दगल का 'प्राश्निक' कहते थे।

"शृङ्गार हाट में बहुत से ऐसे शब्दा का प्रयोग होता था जिनके व्यग्यार्थ कुछ और होते थे। जैसे तथागत भगवान् बुद्ध को कहते हैं, मगर शृङ्गार हाट मे तथागत वह व्यक्ति कहलाता है जो वेश्यागामिता क व्यसन के कारण अपना पुसत्व खोकर भी खोखली अकड दिखाने के लिए आता जरूर है मगर जैसा आता है वैसा हो चला जाता है। ऐसे मद को बनारसी बाली मे मे 'गिरदमभा' कहत हैं। बनारस म वेश्याए अब भी इशारा म बात करती हैं। मान लो कि किसी बाईजी की किसी रईस पर नजर अटक गई है ता वह मज़ाक-मज़ाक मे उससे कह देगी कि अरे हम तोह खाय जाब, यानी तुम्हे अपन प्रमाकषण म हम बाध ही लेंगी। इसी प्रकार अनेक बातें बनाती ह।"

महफिलो में नाचने-गाने वालियो को लाने वाला दलाल बनारसी बोली मे 'दरोगा' और मदनदूतिया को लाने वाला दलाल 'टाल' कहलाता है।

दुर्गाप्रसादजी खत्री

"वेश्याओ के सम्बन्ध मे मेरी जानकारी प्राय नही के बराबर है। हमारे पिता (स्व० देवकीनन्दनजी खत्री) के समय मे एक वेश्या सप्रदाय 'घुडचढी' कहलाता था। ये घुडचढी वेश्याएँ घोडे पर चढकर एक जमीदार के यहाँ से दूसरे जमीदार के यहाँ नाचती गाती पेट भरती घूमती थी। मेरे पिताजी को चकिया के जगला में ऐसी घुडचढी वेश्याएँ देखने को मिली थी। जौनपुर मे ये विशेष रूप से पाई जाती थी, शायद अब भी वहाँ हो।

"एक किस्सा और सुना हुआ याद आ रहा है। इस कथा मे थोडी सी छिछोर वाली बात भी आती है, फिर भी सुनाए देता हूँ। महाराज ' ' के दरबार मे एक बडी सुन्दर वेश्या गा रही थी। मैनाबाई भी वहाँ उपस्थित थी। महाराज उस सुन्दरी वेश्या के रूप और हाव भाव पर अनुरक्त हो गए इसलिए उसके गाने की बडी प्रशसा की और बडा इनाम दिया। मैना को बुरा लगा। उसने भी बडा तडप के साथ एक ठुमरी गायी, भाव भी बडी बारीकी से बताए। महाराज बहुत प्रसन्न हुए। मैना का भी खूब इनाम इकराम मिला। चलते समय मैनाबाई ने रूपवती वेश्या से उठककर कहा, 'बीबी, नाफा जरा कसके बाँधा करो तुम तो महफिल म ही ढीला कर देती हो।'

"पहले का समय सस्ती का था। सर्वसाधारण के लोग भी नृत्य-संगीत मे रुचि और समझ रखते थे। अपने बचपन मे मैंने आखो देखा है कि खत्री ब्राह्मणो के लडके, जिन्हे कोई काम न मिलता था वे दलाली करते थे। दिन-भर मे यदि दो आने भी कमा लिए तो उनके घर-भर का पेट पल जाता था—छ पैसे घर मे दिये और दो पैसे म अपना सैर सपाटा हो गया। मुझे याद है कि एक पैसे मे चिलम, गौरैया, (गुडगुडी) तमाखू टिकिया और एक गधक की दियासलाई आ जाती थी। इसी प्रकार एक पैसे मे भाग, दो बादाम, दो इलायची और चार पाँच गोल-मिर्चे आ जाती थी। 'दुकडा' देकर नाव से लोग उस पार जाते थे छानत फूकते मस्ती लेते थे और लौट आते थे। फिर जहाँ कही नाच गाना होता वही पहुँच जाते थे। बडे घरो मे या बडी वेश्याओ के यहाँ तो अधिक आने-जाने का अवसर हरएक को मिलता नही था, गायिकाओ के घरा के नीचे पान वाला की दूकानो पर अक्सर ये लोग बैठते और सगीत का रस लेत थे।

"बुढवा मगल के मेले मे भी प्रसिद्ध वेश्याओ की बडी धूम मचती थी। छ-सात बडी-बडी नावें, जिन्हें पटेले कहा जाता है, एक साथ बाँध दी जाती थी। उन पर बालू और मिट्टी डालकर फर्श बनाया जाता था, चारदीवारी बनायी जाती थी। बास बल्ले के ढाँचे पर शामियाना लगाते थे, खुब सजाते थे। यह कच्छे पाटना कहलाता था। कच्छे सजाने मे आपस मे होड भी खूब चलती थी। महाराज बनारस और महाराज विजयानगरम् मे, जिन्हे यहाँ वाले महाराज ईजानगर कहते हैं, बडी होड चलती थी। यदि एक का कच्छा हरा सजता तो दूसरे का गुलाबी। झाड फानूस, कालीन और परदे सब एक ही रग के होते थे। अब तो ये सब बाते कहने सुनने की ही रह गई हैं। वह युग और था, अब और ज़माना और फिर यह तो नियति का चक्र है, घूमता बदलता ही रहता है। आज से लगभग चालीस बयालीस वर्ष पहले चन्द्रशेखर पाठक ने 'वेश्यागमन' नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी थी। यदि कही वह पुस्तक मिल जाए तो उसे भी पढ जाइएगा।"

श्रीकृष्णदेव प्रसादजी गौड

मैंने पूछा, "वेश्याओ द्वारा रईस युवको के लूटे जाने की बात तो प्राय सब जानते हैं, पर क्या ऐसे भी किस्से आपके देखने या सुनने म आए हैं जिनमे अपने प्रेमियो के लिए वेश्याओ ने सब कुछ लुटा दिया हो?"

"हा हाँ। यहाँ की भारतेन्दुकालीन प्राचीन वेश्याओ मे हुस्ना बडी प्रसिद्ध थी, टप्पा गायन की वह विशषज्ञ मानी जाती थी। एक हिन्दू थे। हुस्ना ने उन्हें रखा। उन पर बडा खर्च करती थी। हुस्ना ने उनके नाम पर धर्मशाला भी बनवायी थी। वे हुस्ना वाले ' दास' कहलाते थे। धनेश्वरी नामक एक सुन्दरी वेश्या ने एक युवक को अपने पास रखा। जीवनभर उसे खूब खिलाया, पिलाया और पाला। प्रतिष्ठित वेश्याएँ उचित अनुचित का ध्यान भी खूब रखती थी। यहाँ के एक रईस से विद्याधरी का सम्बन्ध था। एक दिन उनके पुत्र विद्याधरी के यहाँ पहुँचे। विद्याधरी ने पूछा, कहो कैसे आये? कहा, गाना सुनने। विद्याधरी ने कहा, जाओ, यह आन्त ठीक नही।

"अच्छे सस्कारो का परिचय इन वेश्याओ म भी प्राय लोगो को मिला है। अनेक वर्ष पहले यहाँ की एक वेश्या बाला का एक प्रोफेसर से प्रेम हुआ। वह वेश्या कुछ दिनो फ़िल्मो में भी हीरोइन रही थी। उसे अपने वातावरण से घृणा थी। उसने अन्त में अपने प्रोफेसर प्रेमी से विवाह कर लिया। आज उसे देखकर

कोई यह सोच भी नही सकता कि वह किसी समय वेश्या थी। उसके दो-तीन बच्चे हैं, बडी सुन्दर गृहस्थी है। इसी प्रकार बडी मोती की लडकी का एक युवक से रोमास हुआ। बाद मे दोनो ने विवाह करने का निश्चय किया। वह युवक मेरा शिष्य रह चुका था। उसके विवाह का बडा विरोध हुआ। जब मेरे पास न्योता आया तो लोगो ने कहा कि मत जाइए, परन्तु मैं गया, उन्हे आशीर्वाद दिया। उस युवक ने अपनी पत्नी को इटरमीडियेट तक पढाया। वे लोग अब तुम्हारे लखनऊ मे ही रहते हैं। बडा सुन्दर परिवार है और दोनो मे अब तक बडा प्रेम है।"

विनोदशकरजी व्यास

"पुरानी वेश्याओ को मैंने देखा-सुना नही, इसलिए उनके नाम नही बतलाऊगा। शहर-भर मे पचासो अदाई-गदाई तुम्हे उनके नाम बतला देगे। पुरानियो मे हुस्ना को देखा था। मेरे जनेऊ की महफिल मे हुस्ना का गाना हुआ था, बस तभी सुना था। राजेश्वरी-विद्याधरी का गाना तो पचासो बार सुना। मेरे होश मे यहाँ चार गायिकाओ ने बडा नाम पाया—हुस्ना, विद्याधरी, राजेश्वरी और टामीबाई। इनमे अतिम को मैंने इक्कीस वर्ष अपने पास रखा। इनमे हुस्ना, विद्याधरी आदि गधर्व रही और टीमाबाई रामजनी। रामजनियो मे भी खानदानी हैं और गधर्व तो पुराणो वाली जाति है ही। रामजनी उन्हे कहते हैं जिन्हें गायिकाएँ अपने पैसे से खरीदकर नाचना गाना हर तरह से सिखलाकर तैयार करती हैं।

"घरेलू गानेवालियो मे रजवन्ती नाम की कथकिन प्रसिद्ध थी। मेरे यहा, प्रसादजी, राय साहब आदि के घरो मे वही गाने जाती थी। श्यामा गौनहारिन थी, वह रजवन्ती की 'पालट' थी।—पालट यानी कि उसी ने सिखा-पढाकर अपने साथ लडकी की तरह रख लिया था।

"अरे तुम कहा तक पूछोगे, ई सब बडे टटे का शास्त्र है। अच्छा तुम्हारे लिए हम एक उपन्यास लिख देगे इस विषय पर। उसे पढ लेना, सब समझ जाओगे।"

मैंने कहा, "भैया, अगर आप आज से उपन्यास लिखने बैठ जाएँ तब तो मैं अपना दोहरा सौभाग्य मानूगा। लेकिन आप ठहरे मूडो के शाहशाह इसलिए मागने भूत की लँगोटी को ही भली मानता हूँ। इस विषय पर यदि आप उपन्यास

लिखेंगे त। वह नि स ंदेह सरस और घटनापूर्ण होने के साथ-ही-साथ इस विषय का थीसिस भी बन जाएगा। आप हिंदी को एक अच्छी देन दे जाएँगे।"

अपने तोते का पिंजरा साफ करते हुए व्यासीजी बोले, 'अरे यार, इनकी दुनिया ही बस क्या कहे ।' कटोरी मे चने भरे, उसे पिंजरे के अन्दर सरकाकर पिंजरा ब द करते हुए बाले, "ये वेश्याओ की दुनिया पुरुषो का ही बनाया हुआ जादू है और वह आप ही उससे बँधकर जि ंगी-भर अनुभवो के कडवे-मीठे घूट पीता है। वहा सब बनावट है। ये लोग 'फैशन' (वासना) को पक-अप करती हैं (उकसाती हैं)। पुरुष 'रियल लव' (सच्चा प्यार) देता है। इनके पैसा वसूल करने का टिके भी अजब-अजब हाते हैं। कभी कहेगी कि फ़लाने का इतना रुपया बाकी है, आठ-दस बार तगादा कर चुका है, अच्छा नही लगता। आशिक को तरह-तरह से कटवाती ही रहती हैं। नायिका का निर्देशन रहता है, वेश्या उसी तरह की बाते बनाकर अपने आशिक को काटती है। दोना के 'इंटिमेट मामेण्ट्स' (अ तरग क्षण) जब गुजर रहे हैं तब वेश्या फ़रमाइश करेगी कि हमे अमुक चीज तुम कल ही ला दा। पुरुष न यदि सोत्साह हामी भर ला तो ठीक, अन्यथा वही से छिटकेगी। दूसरे दि। लेकर न जाए तो नायिका ही सामने पडकर ललकारेगी कि लाए? अच्छा अब हटाओ इ सब किस्सेबाजी। वैसे कलकत्ते के फ़ारेन ब्रॉथेल्स (विदेशी चकलेखाने) भी एक अजब अनुभव देते हैं। मैं तुम्हे वह सब बाद मे लिख भेजूगा, तुम आज की मेरी इन बातो की नकल भेज देना। मैं उसमें सशोधन कर दूँगा और ये सब भी जोड दूँगा। इस समय देखो हम बडा महत्त्व-पूर्ण काम कर रहे हैं। सब साहित्यिको के सस्मरण लिख रहे हैं। बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हे मेरे सिवा और कोई लिख ही नही सकता।"

'आज' कार्यालय

एक दिन आज के सम्पादकीय विभाग मे ही मेरी भेंटा की मोटबुक खुल गई। मित्र-मडली घेरकर मुझे बातें-ही बातें सुनाने लगी। भाई मोहनलालजी गुप्त और भाई लक्ष्मीशकरजी व्यास ने प्रमुख रूप से मुझे सूचनाएँ देना आरम्भ किया। विज्ञापन-व्यवस्थापक श्री श्यामसुन्दरजी तथा त्रिलण्डीजी के पुत्र और उग्रजी के भतीजे जो अब स्वय भी सफ़ेद बालों के हो गए हैं, अपनी म द मुस्कान के साथ साथ कुछ अनुभव भी देते रहे। लेखको के मजमे म उस समय मैं अकेला लेखक था, बाकी सब बालक थे।

मोहनजी बाले, "बनारस की कच्ची सराय या हडहा सराय मे कस्बियाँ रहती थी। मुन्शीगर के टोला म, जिसे कुजी टोला भी कहते हैं, कस्बियाँ सडक

पर या अपने दरवाजों पर खडी रहती थी और ग्राहकों को पटाकर ले जाती थी। कभी-कभी इनके लिए दगे भी हो जाते थे। नक्खी घाट पर जुलाहों की बस्ती है, वहाँ भी कस्बिने रहती है। बनारस के पास ही मडुआडीह जकशन है, वहा कथकिनो गौनहारिनो का बहुत बडा अड्डा है। दरअसल मडुआडीह वेश्याओं का भरती-केन्द्र है। वहा गावो से औरतो को लाकर सिखाते हैं।"

मिश्रजी के पुत्र ने कथकिनो की वेश्या-वृत्ति का प्रतिवाद किया, बोले, "कथकिने यो वेश्या नही होती गधर्वों की भाति उनमे अपनी लडकियो को वेश्या बनाने का नियम नही है। हा, कोई-कोई चरित्र-भ्रष्ट होकर वेश्या हो जाती है, यह और बात है। पहले तो यहा तक था कि वेश्याएँ कथकिनो के पानदान तक को छूने का साहस न करती थी, क्योकि वे उनके गुरु-कुल की होती है।'

काशी के प्रसिद्ध गायको मे बडे रामदासजी महाराज तथा छोटे रामदासजी महाराज के नाम भी सुनने को मिले। बडे रामदासजी महाराज अब काफी वृद्ध है। छोटे महाराज काशी के सिद्धहस्त तबलावादक रहे है। बतलाया गया कि वह इतना रियाज करते थे कि जब तक उनकी उँगलियो से खून नही टपकने लगता था तब तक वे अपने रियाज को रियाज नही मानते थे। इन सूचनाओ के देने वाले सज्जन का नाम दुर्भाग्यवश लिखने से छूट गया, इसका मुझे दु ख है।

'सबके गुरु गोवर्धनदास'

भूतभावन भगवान् विश्वनाथ की सनातन नगरी काशी अपनी परम्परागत सभ्यता मे भौतिकता को यदि पूर्ण प्रश्रय न देती तो मुझे आश्चर्य ही होता। भोलेबाबा की नगरी केवल चना चबेना गगाजल या राँड-साड सीढी सन्यासी सेने वाले फक्कडो के रूप पर ही नही जीती बल्कि व्यवसाय, वाणिज्य का सनातन और प्रमुख केन्द्र भी रही है। गगा, यमुना, गोमती, असी और वरुणा द्वारा दूर-दूर से आया हुआ माल यहाँ एकत्र होता तथा आगे का चालान पाता था। ऐसी समृद्ध नगरी मे हर काम के लिए स्पेशलिस्टो यानी विशेषज्ञो का होना कोई अचरज की बात नही। महफिलो के आयोजन के लिए यहाँ कोई झाड फानूस का विशेषज्ञ है तो कोई एक-से रग-ढग वाले शहर भर के कालीनो को इक्ट्ठा करके लाने मे माहिर है। पत्तल सकोरो के लिए कोई प्रबन्धकार यदि अपना सानी नही रखता तो कोई महफिलो के लिए सुराल मिठबोल चिडियो के पिंजरे लाने मे बेजोड है। वेश्याओ का चुनाव करने और उन्हे लाने वाले दलाल भी यहाँ है। उनके अपने-अपने पेशो के नाम भी है। महफिल मे लाने वाले दलाल का नाम तो अपनी उस समय की घसीट लिपि को ठीक प्रकार से पढ और समझ न पाने के कारण दुर्भाग्यवश

आपको नही दे सकना, मगर इनके विपरीत जो दलाल स्त्रिया को सेज के लिए पहुँचाते है वे बनारस मे 'टाल' कहलाते हैं। अस्तु।

लक्ष्मीशकर माई और मोहनजी ने बतलाया कि इन तरह-तरह के विशेपज्ञो मे एक चक्रवर्ती विशेपन गोवधनदास गुजराती हुए है। उन्हे दिवगत हुए अभी आठ-दस वर्ष ही हुए होंगे। गावधनदासजी थे तो निधन मगर रौब यह पाया था कि बनारस की हर तवायफ उनके कण्टोल मे थी। वे महफिलो का पूरा प्रबध करते थे, महफिल सजाने से लेकर दावत, मुजरा आदि हर प्रबध मे पटु थे। वे निधन किन्तु गुणी वेश्याआ का सजावट के गहने-कपडो का प्रबध कर अन्य बडे-बडे नगरो मे होने वाली महफिला म यश और धन पाने का अवसर भी देते थे। महफिल-आयोजको के व्यवसाय-तन्त्र म गुरु गोवधनदास दूर-दूर तक सरनाम थे। भाई श्यामदासजी ने गोवधनदासजी की पत्नी के मुख से सुनी हुई बात बतलायी कि उन्होंने कभी अपनी पत्नी को किसी प्रकार का कष्ट नही दिया। आजीवन नृत्य और सगीत के फेर मे रहते हुए भी वे लँगाट के सच्चे बने रहे। काशी मे वश्याएँ उन्हे बहुत मानती थी, एक-आध से उनकी चख-चख भी चला करती थी।

वे केवल रईसो की महफिलो के ही आयोजक न थे, वरन् नगर के लिए भी प्रतिवप देवोत्थान एकादशी से पूर्णिमा तक जटार मन्दिर (बोलचाल मे जडाऊ मन्दिर) म सगीत-सम्मेलन आयोजित करते थे। बनारस की चुनी हुई वेश्याआ का गाना हाता था। बनारस के हर नये स्त्री-पुरुष कलाकार को वही से ख्याति मिली। कटे महाराज, बीरू महाराज आदि तबलावादक उसी सिद्ध भूमि पर यशस्वा हुए।

एक कलकत्ते वाले गुजराती रईस थे। उनके बगीचे म श्रावणी के प्रति सोमवार को गोवधनदासजी द्वारा आयोजित 'सैलें' हाती थी। सगीत उन सैलो का भी अनिवार्य अग था। गोवधनदासजी के जन्म-दिन पर सब वेश्याएँ मुजरा करने आती थी, जबरदस्त महफिल होती थी।

नगर के श्रेष्ठ हलवाई, झाड-फानूस, दरी-कालीन, शामियाने, कनाता वाले आदि सब लोग निधन किन्तु सिद्ध प्रबध विशेपज्ञ गोवधनदासजी की प्रजा थे। उन्हें हर बात का सलीका था। कहते थे कि ज्योनार म पत्तला की पगत एक-एक बित्ते का फासला छोडकर यदि बिछायी जाए तो पत्तलो में कभी घट-बढ न होगी।

अवसर वश्याएँ या अन्य कोई ईर्ष्यालु इनस लाग-डाट भी मान ले लेते थे।

स्वाभाविक रूप से इनका चक्रवर्तीत्व वेश्या को खलता भी रहा होगा। इनके जीते-जी ही कहावत बन गई थी कि 'सबके गुरु गोवधनदास'। एक बार इनके द्वारा आयोजित एक महफ़िल में कोई अच्छी गानेवाली इन्हें नीचा दिखाने के लिए धोखा देकर बाहर की किसी महफ़िल में चली गई। उसने अपने बाहर जाने की सूचना इनसे इतनी गुप्त रखी कि रात में जब उसके महफ़िल में आने का समय निश्चित था तभी गुरुजी को यह समाचार मिल सका। गुरुजी क्षण-भर के लिए तो हतप्रभ हो गए, किन्तु फिर मन में एक नई योजना बिठा ली। पड़ोस में ही एक अन्य रईस के यहाँ भी उसी दिन महफ़िल हो रही थी और मध्य-रात्रि के समय उनके यहाँ भी एक अच्छी गायिका आने वाली थी। गोवर्धनदासजी के मित्र, जो आमन्त्रित वेश्या के बाहर चले जाने का रहस्य पहले ही से जानते थे, बार-बार बाचकर पूछते कि गुरुजी, फलानी कब आवेगी? गुरुजी कुछ न बोले, बाहर चले आए और गली के नाके पर खड़े हो गए। ज्यों ही दूसरी महफ़िल वाली बाईजी का डोला आया त्यों ही उसके कहारों को हाँककर ले गए और बाईजी को अपनी महफ़िल में पहुँचा दिया। एक के जवाब में दूसरी अच्छी गायिका को लाकर गुरुजी ने अपने विपक्षियों को निस्तेज कर दिया। गुरुजी के बाहर चले जाने के बाद यारों ने ज़ोर-शोर से बाईजी के बाहर चले जाने की बात फैला दी थी। मुकुट-सी महफ़िल की मणि ही नदारद हो गई, तब फिर महफ़िल में मज़ा ही क्या रहा! इस समय उस गायिका के टक्कर की वेश्या का मिलना भी असम्भव था, क्योंकि सहालग के दिन थे। नगर में जगह-जगह महफ़िलें ज्योनारें हो रही थीं। सभी अच्छी गायिकाएँ उनके लिए पहले ही से निश्चित हो चुकी थीं, अनेक बाहर चली गई थीं। परन्तु ज्योंही गुरुजी एक ही एवज में दूसरी नामी को लेकर पहुँचे त्योंही महफ़िल में उल्लास की लहर दौड़ गई, इनकी साख रह गई। धोखा देने वाली वेश्या को इसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ा। परन्तु गोवधनदास दयालु थे, अन्त में उसे क्षमा भी मिल गई।

प्रोफ़ेसर रुद्र काशिकेय

"भारतेन्दुकाल की वेश्याओं में ग़फ़ूरन नगर-सुन्दरी मानी जाती थी। सरस्वती यहाँ की श्रेष्ठ नर्तकी थी। लाल कवि ने उसकी प्रशंसा में एक छन्द भी लिखा था, जिसकी एक पंक्ति मुझे याद है—'रमारती की कहा है गती, जहाँ आप सरस्वती नाच रही!'

"यहाँ की गायिकाओं में विद्याधरी और राजेश्वरी ने गोस्वामी दामोदर-

लालजी से कामसूत्र पढा था। जयदेव के गीतगोविन्द को जिसने विद्याधरी से सुना है वह कभी भूल नही सकता।"

अपने शिष्य उदीयमान कहानी लेखक चिरजीव रत्नाकर पाण्डेय द्वारा पत्र लिखवाकर यदुवर रुद्र ने मुझे अर्धशताब्दी पूर्व की तोकीबाई से सम्बन्धित बेनी कवि का एक छन्द भेजा है। भाई लक्ष्मीशंकर व्यास ने भी तोकी का नाम मुझे बतलाया था। मैना के साथ-ही-साथ वह भी बडी प्रसिद्ध थी। रुद्रजी द्वारा भेजा हुआ बेनी कवि का छन्द इस प्रकार है—

तिल भर तुलती नहीं तिलोत्तमा, रंग से रूप सवाई है।
है रती का रुतबा, रती वहा उवर्शी भी सुन शरमाई है॥
सुन तान पर होते हैं गलतान, सुर तानसेन की पाई है।
नर नाहर के दृग को पुतरी, काशी मे तोकीबाई है॥

वाचस्पतिजी पाठक

आदरणीय भाई पाठकजी विशेष रूप से मेरे काम के लिए एक दिन के वास्ते काशी पधारे।

"गायन विद्या की महिमा केवल सुननेवालियों की गुण-कला के कारण ही नही बढी, वरन् सुननेवालों की गुण ग्राहकता को भी उसका श्रेय देना चाहिए। काशी मे प्रसिद्ध गायिकाओं के होने का एक कारण मैं यह भी मानता हूँ कि यहा नृत्य-सगीत-कला के कुशल जानकार और पारखी रईस भी रहते थे। भारतेन्दुजी स्वयं बड़े जानकार थे। बंगाल की एक रियासत के पदच्युत महाराज यहा रहा करते थे। उन दिनों हुस्ना का बडा नाम था। एक बार हुस्ना ने उनके यहाँ बैठे हुए बात-बात मे किसी प्रसंगवश गाना आरम्भ किया। महाराज भी तबले की जानो खीचकर बैठ गए और फिर तो ऐसी संगत जमी कि रात बीत गई। हुस्ना जैसी श्रेष्ठ गायिका थी वैसी ही उदार भी थी। उसने अपने एक हिन्दू प्रेमी के नाम पर धर्मशाला भी बनवायी थी। अन्त मे बुढ़ापे मे वह पागल हो गई। उसका मुख वानरवत् हो गया था।

"यहा की वेश्याओं मे यदि हुस्ना जैसी वेश्याएँ रही हैं कि जिन्होंने अपने प्रेमियों पर सर्वस्व लुटा दिया, तो ऐसे वेश्या-प्रेमी भी रहे हैं, जो अपना धन-मान-गौरव सब-कुछ गँवाकर भिखारी हो गए। एक धनी व्यक्ति थे। वे एक वेश्या पर आसक्त हो गए। धीरे-धीरे उनकी सारी जमा-जायदाद वेश्या के यहाँ पहुँच गई। अन्त मे वेश्या ने उन्हे अपने यहाँ से निकाल दिया। परन्तु वे भी ऐसे धाकड़ प्रेमी थे कि धक्के खाकर भी उसके यहाँ से न टले। बहुत लग कि

मुझे अपना टहनुआ बनाकर ही रख लो।' वे उसके यहां आजीवन पड़े रहे, अपनी वेश्या और उसके यारों की सेवा करते थे और दूर से बैठे-बैठे अपनी प्रिया को निहारा करते थे।"

श्री बेनीप्रसादजी अग्रवाल

"भारतेन्दु बड़े भारी समाज-सुधारक थे। वे यहां के अग्रवाल समाज के चौधरी भी थे। एक बार विधवा-विवाह का समर्थन करने पर बिरादरी ने उन पर पांच रुपये जुर्माना भी किया था। भारतेन्दु ने एक मुसलमान तवायफ मलका को हिंदू बनाकर उसका नाम मल्लिका रखा। इस पर वे बिरादरी के चौधरी-पद से हटा दिये गए। इसी पर लिखा था—"वह यवनी को हिंदू कीन, वह भाई का साथ न दीन।"

पंडित रामकृष्ण वैद्य

काशी के प्रसिद्ध रईस श्री मुरारीलाल केडिया ने प्रिय भाई राय आनन्द कृष्ण के सुझाव पर वैद्यजी से मेरा परिचय कराया। रामकृष्णजी ने अपने एक परिचित वयोवृद्ध पंडित गिरजाशंकरजी दीक्षित के साथ-साथ निम्नलिखित सूचनाएं दीं। दीक्षितजी बोले, "अब ऊ मैफिलें कहां! उनका तो दरसन भी नहीं हुइ सकता। अब वैसी मैफिलें कराने की औकात किसी की नहीं रह गई। हमरे बचपन में बड़ी मैना, सरसुती औ' हुस्ना का बड़ा नाम रहा। इनसे पहले न ही पागल बड़ी नामी रही, ऊ हरदम उंगलिन पर कुछ गिना करती रहै पर गावै मा एक नम्बर रही। ऊको लोग एही बदे पागल कहत रहे। मैना औ' सरसुतीबाई से बढ़कर कोऊ नाइ रहा। जौन मैफिल म मैना न होय वह मैफिल सूनी। पुराने लोग सुनावत रहे कि एक बार मैना महराज के हियां पहुँची, महराज आम खाते रहे, मैना से बोले, 'अब क्या आयी? क्या कोयली (गुठली) लेओगी?' मैना बड़ी चतुर रही। कोयली एक गाँव का नाम भी रहा सो बोली कि महाराज के सिरी मुख से कोयली निकला है सो हमें वही चाहिए। महाराज ने कोयला गांव मैना को बक्स दिया।"

पंडित रामकृष्ण वैद्य ने मैना के सम्बन्ध में सुनाया कि एक बार दतिया वालों कोठी में, जिसमें आजकल 'संसार' कार्यालय है, किसी रईस की बरात टिकी थी। कोठी के अन्दर विशिष्ट जनों के लिए बाहर से बुलायी गई नामी वेश्याओं के गाने का प्रबन्ध किया गया था तथा बाहर मैदान में शामियाना लगवाकर सर्वसाधारण के मनोरंजन के लिए मैनाबाई के गाने का प्रबन्ध था। मैनाबाई गाने लगी तो बाहर की महफिल ऐसी जमी कि अन्दर की महफिल

वाली वेश्याएँ और उनका संगीत सुनने वाले सभी उठकर बाहर चले आए। बड़ी गुणी थी मैना!

अपने समय म विद्याधरी का भी बड़ा रौब था। एक बार बनारस के एक बड़े रईस राजा के प्राइवेट सक्रेटरी के लड़के का विवाह था। सभा रईस महफिल में आये थे, राजा साहब भी आये थे। रईस उन्हें घेरकर बतियाने लगे। विद्याधरी गा रही थी, लेकिन सुनने वाला का ध्यान उधर न था। जब बड़े-बड़े लाग ही सुनकार न थे तो छोटे लागो को क्या कहा जाए! विद्याधरीबाई ने जैसे-तैसे एक चीज़ गाई और फिर चुप हो गई। आगे बढ़कर राजा साहब से कहा, "हुजूर, मैं ग़रीब हूँ और ये सब बड़े बड़े आदमी हैं। ये आपकी कोठी पर जाकर भी अपनी बातें सुना सकते हैं, इसलिए आज मेरी ही सुनी जाए।" महफ़िल म एकदम सन्नाटा हो गया और विद्याधरीबाई न भी फिर ऐसा समाँ बाँधा कि सारी महफिल झूम झूम उठी।

पडित नृपेन्द्रशकर मिश्र 'बल्लनजी'

'नागरजी, आप बहुतो से बहुत कुछ पूछ आए, लेकिन एक बात मेरी भी नोट कर लीजिए। मैंने ऐयाशी म लाखा रुपया फूका, सब जानते हैं। अपने विलासी जीवन मे एक सबक मैंने पाया—जो लोग वेश्याओ के पीछे लगे रहते हैं, उन पर जान देते हैं वो यह समझते हैं कि वह मुझ पर जान देती हैं—बस यही साइकोलाजिक्ल (मनोवैज्ञानिक) बात आदमी के दिमाग़ को घुमा देती हैं। अपने ऊपर जान निसार करने वाली वेश्या के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग करने से भी नहीं चूकता। सच तो यह है कि वह उल्लू बन जाता है, फिर बच नहीं सकता। और जा आदमी यह समझता है कि वेश्या आखिर वेश्या ही है, वह पुरुष को रिझाने का पेशा करती है और हमने पेशा के लिए वेश्या को नौकर रखा है, तो वह किसी भी ऐसी औरत से दब नहीं सकता।"

काशी की वेश्याओं, वहाँ की महफिलो, रियासतों चोचला और जनता की मस्ती और फक्कडपन की कहानियों का यदि पूरे तौर पर संग्रह किया जाए तो महाभारत-जैसा एक पोथन्ना तैयार हो सकता है। मैं अपनी निश्चित अवधि मे वहाँ का सारतत्व यथामति यथाशक्ति पा गया। इससे चाहना होने पर भी स्वय अपनी इच्छा पर अकुश रखकर मैं लौट आया। तेज़ी से बदलते हुए समय मे पुराने समाज के पिछड़ते हुए चित्र मेरे काशी के मित्रा और वहाँ रहने वाली हिंदी परिवार की नई पाढी द्वारा अकित कर लिए जाएँगे, कइयो से इस सबध मे बात भी कर आया हूँ। इधर जनवरी सन् '६० के 'कहानी' नववर्षांक म

शिवप्रसादसिंह की एक कहानी 'वेहया' पढ़ने को मिली। चित्त प्रसन्न हुआ। हिन्दी का कथाकार अपने समाज की नई-से-नई समस्या की जानकारी रखता है। गन्धर्व जाति की वेश्याएँ अपनी लड़कियों को अब इस घृणित पेशे से निकालकर उन्हें घर-बारवाली बना रही हैं। 'वेहया' में आपको विद्याधरीजी, सिद्धेश्वरीजी की बात का प्रमाण मिल जाएगा। 'वेहया' की नायिका वेश्या अपनी लड़की को लेकर गाँव जाती है। वह अपना पूर्व इतिहास भूल जाना चाहती है, लेकिन गाँव के ठाकुर भला वेश्या को भली स्त्री बनने का अधिकार क्योंकर दे सकते थे। अपने रसीले प्रस्ताव पर वेश्या की ना सुनकर वे उससे अनोखा बदला लेते हैं। एक दिन जब वह अपने घर में नहीं थी तब उसके घर में घुसकर वे उसकी लड़की को बलात् वेश्या बना देते हैं। वेश्या भी बदला लेने पर तुल जाती है। अपनी लड़की का विवाह करने में वह भाग्यवशात् सफल हो जाती है। फिर ठाकुर से बदला लेने के लिए वह उनके कच्ची उमर के इकलौते बेटे को फँसाता है। ठाकुर का वश नहीं चलता, लड़का हाथ से बेहाथ हो जाता है, मना करने पर लड़का घर से अलग हो जाता है। ठाकुर के शुभचिन्तक एक पण्डितजी और स्वयं ठाकुर भी वेश्या से गिड़गिड़ाकर उस लड़के को अपने वेश्या-पाश से मुक्त कर देने की प्रार्थना करते हैं, परन्तु वह किसी की भी नहीं सुनता। वह तो स्वयं ही अपना वेश्या रूप नगर में छोड़कर आयी थी, उसे चुनौती देकर ठाकुर ने ही जगाया था, फिर वह किसी के लड़के-बच्चों की परवाह क्या करे। लेकिन उसी दिन उसे सूचना मिलती है कि वह नानी बन गई है। माँ का हृदय वेश्या के तर्कों को परास्त कर देता है, वह अपना शिकार छोड़ देती है।

बदलते हुए समाज के चित्र अनेक परस्पर-विरोधी बातें लेकर इस समय हमारे सामने आ रहे हैं। पौराणिक सदियों से वेश्या जीवन बिताने वाली जातियाँ अपना पूर्व रूप त्यागकर नया जीवन ग्रहण कर रही हैं। उनमें से अनेक सीता-सावित्री की परम्परा को नवोत्साह से निष्ठापूर्वक अपना रही हैं। और हमारी सीता-सावित्रियों की बेटियाँ अब कुछ तो अपनी नई आज़ादी के शौक में और कुछ आर्थिक कारणों से, विधिवत् कोठों पर न बैठकर भी छद्म किंवा खुलेआम वेश्या-जीवन बिताने में ही नई सामाजिक चेतना की सार्थकता समझती हैं। सरकार इन नई वेश्याओं को क्योंकर रोक सकती है।

*बाईजी नही कसबियाँ

श्रद्धेय रायकृष्णदासजी ने अपनी बाता मे एक उल्लेखनीय बात कही थी—"महफिलो का चलन उठ जाने से कला का तो ह्रास हुआ ही, अदब कायद, संस्कृति का भी ह्रास हुआ—कसब बढ गया।" यह बात अपने ढग से सही है। रईसो की महफिले अब अपना पुराना रग-ढग खो चुकी हैं। आम तौर पर अब वेश्याओ के नृत्य सगीत वाली बैठकें नही होती। शुभोत्सवो पर अब रईस लोग पार्टियाँ देते हैं पुरानी चाल की ज्योनारो का चलन उठ चला है। भारत-नाटयम्, कत्थक और मणिपुरी नृत्यो के नये फैशन के कलाकार, वादक, गायक और गायिकाएँ आदि इन पार्टियो मे अतिथियो का मनोरजन करने के लिए बुलाए जाते हैं, लोकनृत्य और लोकगीतो की टोलियाँ, कव्वाल तथा गलेबाज कविगण भी बुलाए जाते हैं बाईजी को अब नही पूछा जाता। उनका 'बाक्स ऑफिस' मूल्य अब नही रहा। पिछले किसी अध्याय मे मैं लिख चुका हूँ कि हमारे समाज मे सगीत और नृत्य अब जातीय कलाएँ बनकर नही रही, अब उनका व्यापक प्रचार हो गया है। स्कूल, कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे अब नृत्य-सगीत की प्रतियोगिताएँ होती हैं। सरकारी रेडियो, शिक्षा एव सूचना विभाग भी ऐसी प्रतियोगिताएँ कराते हैं। ऐसी दशा मे बाईजी वर्ग का पतन होना स्वाभाविक ही है। इसी कारण बाई जी वर्ग के लिए अब कसब छोडकर और किसी कला का सहारा नही रह गया। कसब के क्षेत्र में भी उनका प्रतिद्वन्द्विता आर्थिक दृष्टि से हीन नये समाज की लडकियो से चलती है। व्यभिचार का व्यवसाय अब नये ढग से चल रहा है।

लगभग सात-आठ वर्ष हुए, लखनऊ की खुफ़िया पुलिस ने यहाँ की एक बडी व्यावसायिक सस्था के मैनेजर के पास बगलौर से आने वाले कुछ अश्लील पत्र पकडे थे। वे पत्र मुझे भी देखने को मिले। पत्रो के साथ स्त्रियो के दो नग्न चित्र भी थे। पत्र इस प्रकार आरम्भ होते थे, "प्रिय मित्र, पिछले शनिवार की शाम को हमारे क्लब के दो सदस्यो द्वारा सुनाये गए मधुर सस्मरणो की एक एक प्रति आपके पास भेजी जा रही है। आशा है कि आप भी अपने क्लब के रोचक सस्मरण हमारे पास बराबर भेजते रहेगे।' उन सस्मरणो मे क्या-कुछ नही

था। मानव द्वारा नदिया से मान्य रिश्तों की पशुवत् अवहेलना उनमे की गई थी। अपने मित्रा विशेष रूप से क्रिश्चियन और मुसलमान मित्रा – के साथ अपनी पत्नी के समागम की चर्चा बड़े हौसले के साथ की गई थी। ऐसी पुस्तके भी आती हैं। हिन्दी उर्दू, बगला मराठी अग्रेजी, सभी म छपती हैं। अखबारी कागज और ऐसे ही एजेण्टो द्वारा पचास साठ पृष्ठों की रद्दी छपी किताबें भी छपे तौर पर दस पन्द्रह रुपये तक म बेची जाती ह।

सम्यता युद्ध नातो के सम्बन्ध में हमारे ऊँचे संस्कार जगा चुकी है। स्त्री पुरुष की अद्धशायिनी, रसन्वायिनी होकर भी विधिना के नियम से जगत्तारिणी भी है। मैं मानता हूँ कि वह दुनिया के लिए ईश्वरीय सन्देश अथवा उपहार लेकर आती है। कौन कह सकता है कि किस स्त्री की कोख स वशिष्ठ सत्यकाम, जाबाल, ईसा या बुद्ध, गाधी जैसा महापुरुष ऋषि विचारक कवि अथवा कलाकार अवतरित होकर मानव-सम्यता को नई गति दे जाएगा। यौन सम्बन्धो के विकृत रसिये स्त्री के प्रति नितान्त भाव शून्य होकर जब उसे अपना पशुवत् खिलवाड़-मात्र बनाते हैं तो मेरी इच्छा होती है कि उन्हे फासी पर चढ़ा दूँ। वे पत्र दिखलाकर एक सरकारी अधिकारी ने मुझसे पूछा, "आपका क्या विचार है, ये सस्मरण सच्चे हैं?" मैंने कहा "मुझे इनकी सचाई पर पूरा पूरा अविश्वास है। मैं यह तो नही कहता कि मनुष्य ऐसे हीन कारनामे नही करता फिर भी ऐसी बातें प्राय जीवन म कम ही होती होगी। ये पत्र किसी कामो मत्त काल्पनिक के प्रलाप मात्र हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि ऐसे पत्र तन-क्षीण मन मलीन बूढे लिखते होगे अथवा किसी अनुभवहीन अतृप्त नौजवान की विकृत काम कल्पनाओ से इनकी सृष्टि हुई होगी।" मेरी वह बात सच निकली। लखनऊ मे जिन महोदय के यहाँ वे पत्र आते थे वे आयु म पचपन-साठ वर्ष के थे।

अभी हाल ही मे एक विश्वविद्यालय के दो अध्यापको का किस्सा भी मेरी जानकारी मे आया। एक प्राध्यापक विवाहित थे, दूसरे कुआरे। व दोनो एक ही बिल्डिंग के दो फ्लैटो मे रहा करते थे। दोनो प्राध्यापक परस्पर गहरे मित्र थे। कुँआरे प्रोफेसर विवाहित प्रोफेसर क यहा ही भोजन करते थे तथा उनकी पत्नी के उप-पति भी थे और इस बहाने अपने वेतन का आधे से अधिक भाग वे अपने मित्र को सौंप देते थ। लगभग एक वर्ष पहले कुँआरे प्रोफेसर का ब्याह हो गया। वे अपने पुराने फ्लैट को छोडकर अपनी नई-नवेली के साथ किसी दूर मोहल्ले मे घर लेकर रहने लगे। पुराने मित्र को लगा कि व ठगे गए। उन्होने शायद यह आशा की थी कि जब मित्र की नई नवेली आयेगी तो वे भी

उनके साझे के पति बन जाएँगे। आशा फलवती न होने पर वे बौखला गए, उन्होंने उप-कुलपति को इस सम्बन्ध में शिकायती पत्र लिखा। नव-विवाहित प्रोफेसर ने उत्तर में कहा कि मित्र की रजामंदी से ही उन्होंने ऐसा किया और वे उसके लिए पैसा भी दिया करते थे। चारों ओर इस बात की चर्चा फैली, बड़ी बदनामी हुई। नव-विवाहित प्रोफेसर विश्वविद्यालय से निकाल दिए गए।

यह झूठ नहीं है कि कई विश्वविद्यालयों में कई प्राध्यापिकाएँ वहाँ के सत्तावान् प्राध्यापकों की रखैलें मात्र हैं। बहुत सी लड़कियाँ फर्स्ट डिवीजन लाने और अपना कैरियर बनाने की लालसावश प्रोफेसरों को अपने साथ मनमानी करने देती हैं। अफसरी सभ्यता में भी मातहतों का पत्नी, बहन, बेटी-दान अपना महत्त्व रखता है। एक भुक्तभोगी महिला की कथा मैं पहले ही लिख आया हूँ। व्यावसायिक सभ्यता में माल बेचने के लिए सुन्दर, जवान और चतुर औरतों का सहयोग अब आवश्यक हो गया है।

इनके अतिरिक्त आर्थिक कारणों से चलने वाला कसब दिनों-दिन बढ़ोतरी पर है। जो लड़कियाँ नौकरी करती हैं, उनका सम्बन्ध भी अधिकतर एक से अधिक पुरुषों के साथ हो जाया करता है। कुछ ही महीनों पहले एक मित्र ने आगरे में मुझे और बन्धुवर डाक्टर रामविलास शर्मा को अपने पड़ोस का एक किस्सा सुनाया था। एक परिवार की एक पढ़ी-लिखी लड़की नौकर हो गई। परिवार के कमाऊ लड़कों की भाँति वह मनमानी करने लगी, अपने मित्रों के साथ घूमने-फिरने जाने लगी, देर-सबेर से घर आने लगी। बूढ़े माता पिता को यह बुरा लगता था। एक दिन मित्रवर अपने कमरे की खिड़की पर खड़े हुए देख रहे थे—नीचे अपने घर में वह कमाऊ लड़की सजी बजी दालान में खड़ी थी और उसकी माँ कह रही थी कि तू कजरियों (वेश्याओं) की तरह लोगों के साथ बाहर घूमती-फिरती है, घर की आबरू खाती है।" लड़की झिड़ककर बोली, 'तैनू की ?' —तुझे क्या मतलब ?

उस लड़की के वाक्य में वर्तमान युग का अन्धा विद्रोह फूटा था। जिस प्रकार सोलहवीं शताब्दी से लेकर बाद की सदियों तक यूरोप में पतियों के विरुद्ध पत्नियों के व्यभिचार-विद्रोह का स्वर गूँजा था, वैसा ही अब इस देश में भी गूँजने लगा है। इस अन्धे विद्रोह से कोई भी शक्तिशाली सरकार मात्र डंडे के जोर पर नहीं लड़ सकती। जब तक समाज न बदले तब तक सरकारी कानून प्रायः निकम्मे ही साबित हुआ करते हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है कि समाज का आमूल परिवर्तन होने तक क्या सरकारें इस दिशा मे कोई कदम न उठाएँ ? उत्तर मे 'ना' तो कैसे कहूँ, पर एकाएक 'हाँ' कहने मे भी झिझक होती है। सरकार आखिर है तो हम ही लोगो की और हम समाजवादी लोकतन्त्र का आदर्श लेकर भी अधिकतर अपने व्यवहार मे सामन्ती पूजीवादी मान्यताओ को ही बरत रहे हैं। सत्ता जिनके हाथो मे है वे नैतिक रूप से नया भारत बनाना तो चाहते हैं परन्तु उनके सामने की राह साफ नही। वे पूजीपतियो को दबाना तो चाहते हैं मगर उनकी सत्ता को अपनी सत्ता से समाप्त नही कर पाते। अनेक सरकारी मन्त्रीगण और ओहदेदार इस बात से डरते हैं कि उन्हें समाप्त करने के फेर मे कहा कम्युनिज्म न आ जाए। जनता को नैतिक शक्ति का सगठन न कर पाने के कारण दूसरा कोई सबल उपाय उनके सामने नही। फिर क्या करें, मुँह से समाजवाद के नारे लगाते हैं और कर्म से पूजीपतियो के पिछलग्गू बनते चले जाते है। मैं शिकायत के तौर पर नही कह रहा, फिर भी यह सत्य है कि हमारे वरेण्य नेताओ मे देश के नवयुवको को अपने साथ लेकर चलने की वह अनुभवी बुद्धि ही नही थी जो इनसे एक पीढी पहले के नेताओ मे गाधीजी के नेतृत्व के कारण थी। गाधीजी अपने साथ जवाहर और सुभाष-जैसे विरोधी मत के नवयुवको को लेकर भी चल सकते थे, परन्तु हमारे आज के नेता नवयुवको के विद्रोह को न पहचानकर, उन्हे सहन न कर उनके कलयुगी असयम का रोना रोने बैठ गए हैं। हर विद्रोही स्वर का उन्होने कम्युनिज्म का प्रभाव माना। नतीजा यह हुआ कि हमारे लिए कम्युनिज्म भी निकम्मा हो गया और गाधीवाद भी—न इधर के रहे न उधर के रहे।

यह सब कहने-सुनने के बाद भी बात फिर वही-की-वही रह जाती है—समाज न बदलने तक क्या हम निकम्मे बैठे रहे ? सरकारी मशीन से तनिक भी काम न लें, उसकी शिकायत ही करते रहे ?—नही, समाज बदलने के दो ही उपाय हैं—या तो रूसी चीनी कम्युनिस्टो अथवा नाजियो के समान फौजी डिक्टेटरी के दम से उसे बरबस बदला जाए, या फिर सामूहिक चेतना को नये स्तर पर उठाकर नैतिक आदोलन को लगातार जगाय रखा जाए। जिन्होने सत्याग्रह-आदोलन के दिनो मे विलायती कपडा का बहिष्कार करने की लडाइयाँ देखी हैं, जिन्होने शक्तिशाली अग्रेज सरकार की लाठियो और गालियो को भी अपनी अद्भुत नैतिक शक्ति से सहन कर भय के हथियारो को निकम्मा बना दिया, वे मारतीय जन और उस समय के त्यागी गाधीवादी नेता अपने ही छोटे भाई-बहनों, बेटे-बेटियो को कोसते हुए उनके निकम्मेपन का रोना क्योकर रो सकते हैं ?

*सुधार-विचार

मेरे सामने सुधार का प्रश्न नही, दासता का है। स्त्री बल छल और अर्थ से दबाई जाकर पुरुष की काम तृप्ति का साधन बने, यह मैं एक क्षण के लिए भी सहन नही कर सकता। इस मोरचे को यदि सरकारी और गैर सरकारी तौर पर साथ साथ डटकर साध लिया जाए, तो फिर शौकिया वेश्याओ और व्यभिचारियो की आदत पर काबू पाने देर न लगेगी। स्त्री-पुरुषो की शौकिया बहुगामिता की नीव तो कायरता के दलदल मे धँसी है। उसके लिए नैतिक नारो और थोडी निगरानी से ही अच्छा उपचार हो सकता है परन्तु वेश्या वृत्ति सदियो तक हमारे समाज मे अथवा या कहें कि सम्पूर्ण मानव-सभ्यता के इतिहास म धर्म और शासन की पूर्ण स्वीकृति लेकर ही आगे बढी है। उसकी अनैतिकता मे भी हमारा नैतिक बल फँसा पडा है—महाजनी भाषा मे कहूँ तो पूजी वेसूद फँसी पडी है, उपजाऊ धरती बिना बीज के हमारे लिए निकम्मी है, जगली विषैली घासें और कँटेदार वृक्षो के जगल मने ही उसकी उर्वरा शक्ति को चूसकर फलते-फूलते रहे।

खुली और छिपी वेश्यावृत्ति

वेश्या-वृत्ति की समस्या को मैं मुख्यत दो रूपो मे देखूगा। एक वह वेश्या वृत्ति है जिसका सगठन छिपे तौर पर घर गिरस्तो के बीच में ही होता है। इनके सगठन दरअसल बडे टुटपुजिये होते हैं—दो-चार व्यभिचारिणी रॉड बवाएँ मिलकर आस पास मे अपना कुटनपना फैलाकर अमीर मर्दों और ग़रीब औरतो के बीच मे दलाली कर लेती हैं, अपने घरो म उनके मिलने का प्रबध कर देती है—बस, यही थोडा-बहुत दद-फन्द है। इनम कुछ सगठनकर्ता अथवा कत्रियाँ अपने कुछ नगर-व्यापी सम्बध भी रखती हैं, मगर इनके धधे का कोई उस प्रकार का गहन अयोजित जाल नही होता जिस प्रकार लडकियाँ भगाने, खरीदने और उन्हें मार-मारकर वेश्या बनाने वाला का जाल होता है। होटलो, चकलेखाना और खानगा अड्डा म औरतें सप्लाई करनवाले लोग यथा कभी इन मोहल्ला की दुनिया का लाभ ता अवश्य उठा लेते हैं, परन्तु पूरी तौर पर इनके क्षेत्र मे धस नही पाते। शायद उनका उग्र और हिंसात्मक स्त्री व्यापार इन

आधे शौकिया और दब्बू यानी आबरूदार (?) स्त्री-व्यवसायिनियों को मैं तौर पर सहन नही हो सकता। एक दृष्टि से यह समाज के लिए कलंक की बात है।

मोहल्ले के कुटन-चक्र मे कौन-कौन आती हैं ?

एक ऐसी युवतियाँ जिनका विवाह दहेज समस्या के कारण पच्चीस-तीस वर्ष की आयु तक भी नही हो पाता, ऐसी युवतिया की माताएँ और बड़ी-बूढ़ियाँ अधिकतर उनके दुर्भाग्य पर झल्लाने मे ही अपने व्यंग्य-वचनों से कठोर मानसिक प्रहार किया करती हैं। जवानी की सहज भूख, वर के अभाव, प्रेम के अभाव और व्यावहारिक रूप मे घरेलू स्नेह के अभाव से चिढ़कर ऐसे कुटन-चक्रों में वे आसानी से जा पड़ती हैं। अपनी छिपी कमाई से अपने शौक की कुछ-एक चीजें ले आने मे, घरवालों की नजरों से छिपाकर सहेलियों को दिखाने में उन्हें मानसिक संतोष मिलता है। हम यहाँ पर एक बात और स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस हद तक आगे बढ़ जाने वाली लड़कियाँ की अधिक-से-अधिक दस में चार ही होती हैं, शेष को प्राय पुरुष-समागम के अनिश्चित परिणाम, गर्भाधान से अपार भय लगता है। मुझे कुछेक समझदार कुटनियों से मालूम हुआ है कि मौके मिलने पर अधिकतर लड़कियाँ लड़कों के साथ सिर्फ छेड़छाड़ से ही मन बहलाती हैं, उनका अंतरंग भंग नहीं करतीं।

हैं कि छोटे-छोटे बच्चा वाली विधवाएँ अपनी गृहस्थी के पालनार्थ अन्य कामों के साथ-साथ इस काम का सहारा भी लेती हैं।

वैसा सच कर कामेच्छा तृप्त करने वाली कुछ पकी-पोढ़ी स्त्रियाँ भी इन कुटन-चक्रा के सहारे अपने रस-साधन प्राप्त करती हैं। इनमे भी ऐसी ही स्त्रियाँ आती हैं जो अपने घरो म ऐसे काम के लिए साधन, अवसर या स्थान नही जुटा पाती, या ऐसी आती हैं जिन्हें विभिन्न पुरुषों की चाट पड जाती है।

इन चारा प्रकार की स्त्रिया म प्राय खुले खेल खेलने का साहस किसी में भी नही होता। इसलिए जो लोग यह दलील देते हैं कि कसबियो के खुले बाजार बन्द कर दने से ये छिपे अडडे बढ जाएगे, व समस्या को केवल ऊपरी सतह पर ही देखत हैं। यह सभव है कि वेश्यालया और चकलेखानों पर लगातार पुलिस के छापे पडने के कारण कुछ लाग मोहल्ला के इन अड्डो द्वारा जीन का प्रयास करे, पर ऐसी दशा मे वे बडी मुश्किल से ही सफल हो पाएँग। जा लोग आबरू-दारी की आड लेकर पाप करते हैं वे बे-आबरूई के व्यापार तन्त्र को अपने क्षेत्र म हरगिज प्रवेश करने देना नही चाहते। अलावा इसके जब खुले बाजार का व्यापार घेर-घेरकर समाप्त किया जाएगा तो ये कायरो के व्यापारिक अड्डे उसकी सहम के मारे ही बहुत-एक उजड जाएँगे और यदि कही एक भी ऐसा अड्डा पकड लिया गया तो फिर ऐसे अन्य अड्डो के उजडन देर नही लगेगी।

जहाँ इन अड्डो का समाप्त करना हमारा लक्ष्य हो वहाँ ही मोहल्लों मे सिलाई-बुनाई-कढाई आदि के कम फीस वाले अथवा मुफ्त शिक्षा देने वाले स्कूल भी खोले जाएँ। उनको आर्थिक कमाई के लिए घरेलू उद्योगो के सहकारी कार खाने भी खाले जाएँ। उपयुक्त मनोरजन और बौद्धिक प्रतियागिताएँ भी करायी जाएँ। गरीब और दहेज समस्याग्रस्त घरा की लडकिया के लिए सामूहिक कन्यादान-यज्ञ का आयोजन भी होना चाहिए। एक वार्ड मे विशाल मण्डप रचकर अनेक युवक-युवतियो के विवाहो का आयोजन किया जाय। विभिन्न क्षेत्रो मे विचारवान पढे लिखे लोगो और दानी धर्मात्मा धनिको के सहयोग से यह कार्य सभव हो सकता है। सामूहिक कन्यादान-यज्ञो से प्राइवेट मे दहेज तय करने वाले निधन वरपक्षीय लोग सहज ही प्रगतिशील समाज के वश में आ जाएँगे। इससे जाति और वर्णसमस्या की खण्डहर दीवारें भी ढहकर नये समाज की जमीन को चौरस बना जाएँगी।

गायिकाओ और नर्तकियो को एक विशेष जाति की अब आवश्यकता नही रह गई। जो वेश्याएँ परम्परा से सगीत नृत्य की जीविका कमाती हैं, उनके लिए

श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी द्वारा प्रस्तावित छात्रावासो का विचार मुझे बहुत हद तक सही लगता है। ऐसी वेश्याओ मे अनेक पैसे वाली भी हैं। वे यदि अपनी सतानो को लेकर स्वय ही इस वातावरण से अलग हट जायँ तो अच्छा होगा। मेरा निजी मत है कि नाच-गाने का पेशा करने के लिए व्यक्तिगत अड्डे अब नही रखने चाहिए। क्लबो और रेस्तराओ मे सगीत नृत्य के आयोजन हो सकते हैं। गाने-बजाने के नाम पर यदि व्यक्तिगत कोठे रहेंगे तो वहाँ कसब अवश्य होगा।

झमेले की जड कुटनी नायिका

मैं अपने मित्र लखनऊ के प्रसिद्ध एडवोकेट पडित श्रीशकर शर्मा की इस बात से सहमत हूँ कि वेश्या से अधिक वेश्या नायिका घातक है। हम यह न भूलना चाहिए कि ईसा के जन्म से भी कई शताब्दियां पूर्व मौर्य साम्राज्य के महामत्री आचार्य कौटिल्य सरकारी तौर पर वेश्याओ के पोषण का विधान बना गए थे और प्राय तभी पाटलिपुत्र की वीरसेना आदि वेश्याओ के लिए मुनिवर दत्तकाचार्य ने वेश्या-शास्त्र रचा था। ईसा की तीसरी शताब्दी मे रचे गए 'कामसूत्र' के 'वैशिक अधिकरण' म वेश्याओ को धन कमाने के लिए अनेक मनोविज्ञान-सिद्ध लटके बताये गए है।

दामोदर गुप्त का 'कुट्टनीमतम्'

ईस्वी सन् ७५८-७८६ मे काश्मीर-नरेश जयापीड के प्रधान मत्री दामोदर गुप्त ने इन कुटनियो की चालबाजियो का गहरा अध्ययन कर 'कुट्टनीमतम्' नामक एक अनोखा काव्य ग्रथ रचा था। दामोदर गुप्त ने एक कहानी से कुट्टनीमतम् का आरम्भ किया है—

काशी की एक नतकी मालती को अपने रूप-गुण का कोई ग्राहक न मिलता था। हारकर वह अपने नगर की एक कुटनी के यहाँ गयी। उस कुटनी का नाम विकराला था। विकराला का रूप वर्णन भी बडा मजेदार किया गया है। मालती जब विकराला के यहाँ गयी तो उसने उसे बेंत के बने एक आसन पर बैठे देखा। विकराला के दात बडे-बडे थे, ठोडी झुकी हुई और नाक बडी पर चपटी थी। विकराला के शरीर की खाल झूलने लगी थी। उसकी अनगिनत झुर्रियां-पडी सूखी छातियो के चूचुक लम्बे और मट्टे थे। कानो की लोरियाँ बिना आभूषण के लम्बी लम्बी लटक रही थीं। उसकी आँखें गडढे म धँसी हुई नशे से लाल हो रही थी। उसके गले म पत्थरा और जडी-बूटियो की मालाएँ पडी हुई थी। विकराला अपने द्वारा पाली जाने वाली सुन्दरी वेश्याओ से घिरी हुई बैठी थी। उन सुन्दरिया की चाह रखने

वाले नगर-पुत्रों ने खुशामद में विकराला के पास जो मूल्यवान् उपहार भेजे थे, वह उन्हीं को देख रही थी।

मालती ने विकराला की बड़ी खुशामद की। विकराला ने भी सोचा कि माल अच्छा है, काबू में रहेगा तो लाभ कराएगा। उसने मालती की सुन्दरता की तारीफ की और कहा कि उसे एक बड़े राज्याधिकारी के पुत्र चिन्तामणि को फाँसना चाहिए। विकराला ने मालती को प्रेमी फँसाने के लटके सिखलाए, उसने मालती को कुछ ऐसी कहानियाँ सुनायी जिन्हें अपने प्रेमियों को सुनाकर वह उन्हें वेश्याओं के प्रेम का भरोसा दिला सकती है।

कथा सरित्सागर का 'आल-जाल'

हम देखते हैं कि नायिकाओं यानी वेश्या-अम्माओं तथा कुटनियों का जाल नया नहीं, उस पर सदियों के अनुभव का गहन ताना-बाना बुना हुआ है। 'कथा-सरित्सागर' में भी *वेश्याओं की चालबाजियों का परिचय देने वाली एक मजेदार* कहानी मिलती है।

चित्रकूट का एक सेठ था। उसने अपने लड़के ईश्वर वर्मा को दूसरी विद्याएँ सिखलाने के साथ ही साथ कुटनी-शास्त्र की शिक्षा भी मकरकटी नाम की एक घाघ वेश्या से दिलवाई। ईश्वर वर्मा पाँच करोड़ रुपये लेकर तिजारत करने के लिए विदेश गया। मार्ग में किसी वेश्या ने उसे लुभा लिया और ऐसा फाँसा कि वह आगे कहीं जा ही न पाया। वेश्या तथा उसकी माँ ने धीरे-धीरे करके उसके ढाई करोड़ रुपये हड़प लिए। इसके बाद ईश्वर वर्मा रुक न सका। उसने शेष धन से व्यापार करने का निश्चय कर लिया। वेश्या और उसकी माता ईश्वर वर्मा को किसी प्रकार भी रोक न सकीं।

ईश्वर वर्मा नगर की सीमा तक पहुँचा। *वेश्या और उसकी माता उसे वहाँ* तक छोड़ने के लिए आयी थीं। वेश्या अनवरत आँसू ढलकाती जा रही थी। ज्योंही नगर की सीमा के बाहर कुछ दूर तक ईश्वर वर्मा का काफिला बढ़कर पहुँचा, त्योंही उसकी प्रेयसी वेश्या पास ही बने हुए एक कुएं में विरहाकुल होकर कूद पड़ी। उसकी अम्मा ने हाय-तोबा मचायी। बेचारा ईश्वर वर्मा लौट पड़ा। वेश्या कुएँ से निकाली गई। ईश्वर वर्मा फिर छोड़कर कहीं न जा सका। साल-छः महीने में उसके बचे-खुचे ढाई करोड़ रुपये भी माँ बेटी ने छीन लिए, फिर उसे गरदनिया देकर निकाल दिया।

लज्जित एवं दुखी होकर वह अपने घर पहुँचा। उसके पिता ने सब हाल सुनकर उस कुटनी मकरकटी को बुलवाया, जिसने एक हजार रुपया लेकर ईश्वर

वर्मा को कुटनी-शास्त्र मे प्रशिक्षित किया था। मकरकटी ने सारा हाल सुना और बोली कि उस वेश्या ने पहले ही से कुएँ म जाल तनवा िया होगा। इसी से वह कुएँ मे कूदकर भी नही डूबी और ईश्वर वर्मा उसको डूबते देखकर चक्मे मे फँस गया। खैर, मकरकटी ने कहा कि तुम एक बार उसके यहा फिर जाओ। उसने अपना 'आल नाम का एक बन्दर भी ईश्वर वर्मा के साथ कर दिया। उस बन्दर की यह विशेषता थी कि अपने मुँह के अन्दर की दोनो थैलिया म एक-एक हजार रुपये भर लेता था और आदेश देने पर रुपये अपन मुह से निकालकर दो-चार-दस-बीस या सौ-दो सौ रुपया का भुगतान चट से गिनकर कर देता था। देखने वाला यही समझता कि बन्दर वरदानी है और मागने पर इच्छानुसार धन देता है।

मकरकटी के आदेशानुसार ईश्वर वर्मा उस बन्दर को लेकर पुन उसी वेश्या के यहाँ गया। वह रात म चुपचाप ब दर को दो हजार स्वण-मुद्राएँ खिला देता और दिन-भर उससे भुगतान करवाता। वेश्या और उसकी मा एसे वरदानी बन्दर का हस्तगत करने के लिए विकल हो उठी। ईश्वर वर्मा इस बार पीढे मन से कुछ ठाने हुए बैठा था, उसने एसा दाव खेला कि अपन गये हुए पाच करोड रुपय ही नहीं बल्कि उस वेश्या की भी सारी जमा-पूजी उस बन्दर के बदले मे लेकर चलता बना। बन्दर भी बाद म रहस्य खुल जाने पर खिजलायी हुई वेश्या और उसकी माता द्वारा मारे जाने पर उनके नाक कान खसोटकर भाग आया।

शास्त्रो द्वारा वेश्या को धन लूटने का आदेश

साने की चूडिया का कलह नाटक करके बुड्ढे आशिक से पाच हजार रुपया के गहने झटकने वाली वेश्या की कहानी मैं पहले लिख आया हूँ। उसने सच पूछिए तो कोई नया या अजब काम नही किया, उसने दरअसल धर्म की ही कमाई की क्योंकि धन-सग्रह करना ही वेश्या का धम है। 'कामसूत्र' के 'वैशिक अधिकरण' मे महर्षि वात्स्यायन ने 'वेश्याओ' के ऊपर 'कृपा करके' उनके हित की अनेक बातें लिखी है। 'वेश्याना पुरुषाधिगमे रतिर्वृत्तिश्च सर्गात्' अर्थात् पुरुषो की प्राप्ति हान पर रति और जीविका के लिए ही वेश्या की सृष्टि है। इसीलिए उसका दोहरा व्यक्तित्व भी होता है। वे एक ओर जहाँ रति के कारण स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त होती हैं वहाँ ही धन के लोभ म नाटक भी साधती हैं। नकली का असली दिखलाना ही उनका धर्म है। वेश्या अपने प्रेमी ग्राहक के प्रति आरम से लोभ दबाकर भी प्रेम अधिक दरसाये, यह कामसूत्र का आदेश है। पुरुष तभी फँसता

है जब कि उसे यह मालूम हो कि वेश्या उस पर जान देती है। 'अलुब्धता च ख्यापयेत्तस्य निदशनार्थम्' – अपने प्रमानुराग को सच्चा सिद्ध करने के लिए वेश्या निर्लोभपने का दिखावा अवश्य करे। अपने प्रभाव को कायम रखने के लिए धन तरकीबो से ही लूटे—'न चानुपायेनार्थान साधयेदायत्ति सरक्षणार्थम्।'

दत्तकाचार्य लिख गए हैं कि वेश्याओ के पास दो प्रकार के पुरुष आते हैं—एक तो वे जिनसे कि उन्हे प्रीतिरहित धन की प्राप्ति होती है और दूसरे वे जिनसे रति और यश सिद्ध होता है। धन पाने के लिए वेश्या को ऐसे ही प्रेमियो का चुनाव करना चाहिए जो अपने माता-पिता के अधीन न होकर इच्छामत धन दे सकें। दूसरे रईसो की होडाहोडी मे अपनी शान जताने के लिए अधिक खच करने वाला भी वेश्या का उपयुक्त धनी हो सकता है। खुशामद चाहने वाला मूख, अपने को पुरुष सिद्ध करने की इच्छा रखने वाला नपुसक, धनी माँ-बाप का इकलौता लाडला, धार्गी महन्त और अपनी वेश्यागामिता को छिपाकर रखने वाले दम्भी जन वेश्या को अधिक पैसा द सकते हैं। राजदरबार मे कुछ ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं जो स्वय तो खच नही करते, पर राजदरबार से पैसा दिला देते हैं। शास्त्रकार वेश्याओ को ऐसे व्यक्तियो से भी घुल-मिलकर चलने की सलाह देता है। बहुत से लोग सिद्धातत यह मानते हैं कि सपत्ति भोग से नही वरन् भाग्य से मिटती है, ऐसे लोग भी अधिक धन झटकने के लिए वेश्या के सुपात्र होते हैं। शूरवीर छैला अपने स्वभाव के कारण उदार होता है, वेश्या को उससे भी माल झटकना चाहिए। वैद्य लोग पैसा तो नही देते, परन्तु इलाज मुफ्त कर देते हैं, इसलिए उनसे भी स्वार्थवश वेश्या को मेल-जोल बनाए रखना चाहिए।

धन लूटने के और भी तरीके कामसूत्र के वैशिक अधिकरण म तीसरे अध्याय म बतलाए गए हैं। यहा विस्तार से उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नही। सक्षेप मे, फिर से इतना दोहरा देना ही यथेष्ट होगा कि वेश्या नायिकाओ पर पूरा काबू रखे बिना वेश्या-वृत्ति समाप्त नही हो सकती। वेश्या-तन्त्र की आयोजनकर्त्री नायिका होती है, वेश्या नही।

रक्षागृह सरकारी हो अथवा गैर-सरकारी

अंग्रेजी राज म सरकारी मशीन हमारी सामाजिक समस्याओ को पूरी तरह सुलझाने की ओर ध्यान नही देती थी, इसलिए उस समय ताजे तौर पर जागी हुई हमारी राष्ट्रीय चेतना ने अनेक उदार, सवेदनशील एव कर्मठ महापुरुषो से

ऐसे काम करवाए जो कि कायदे से सरकारी द्वारा ही बडे पैमाने पर किए जा सकते थे। आर्यसमाज, सनातन धर्म, दक्षिणी सभा और कुछ जातीय संस्थाओं द्वारा अनाथालय एवं महिलाश्रम उस समय स्थापित किए गए थे। ये संस्थाएँ जनता के चन्दे से चला करती थी। कालांतर मे इस देव कार्य मे शैतान घुस बैठे, ऐसी संस्थाएँ अधिकतर गुप्त चकलेखाने मात्र हो रह गई। प्राइवेट संस्थाओं का इस प्रकार पतन हो जाना स्वाभाविक ही है। जो संस्थापक थे उनका उद्देश्य महान् था और जो अब संचालक हैं वे अधिकतर महज महानता की लकीर पीटते है। पैसा सेठो से मिलता है और इस प्रकार ये संस्थाएँ जल्द ही दूषित हो जाती हैं।

सरकारी रक्षागृहो मे थोडो-बहुत व्यभिचार-लीला हो जाना असंभव नही, फिर भी वहाँ अपेक्षाकृत अधिक संयम हो सकता है, क्योंकि दान अथवा चन्दे की रकम देने वाले वहाँ अपने रस का सौदा करने की गुंजाइश न पा सकेंगे। इन रक्षागृहो मे सुधारी जाने वाली लडकियों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए शिक्षाशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, चिकित्सकों, पत्र-सम्पादकों, कलाकार, शिक्षित एवं प्रौढ विचारवान् महिलाओं का सलाहकार-मण्डल भी स्थापित करना चाहिए। इन रक्षागृहो का संचालन मुख्य रूप से महिला अधिकारियो द्वारा ही किया जाना चाहिए। भेटें करते हुए मुझे बराबर यह अनुभव भी हुआ कि आज की नवयुवती वेश्याएँ दिन भर प्राय निकम्मी रहती है। अपनी चेतना मे वे पुरुषो के काम-प्रयोग का साधन-मात्र हैं और कुछ भी नहीं। पढना लिखना, चार गुन-ढंग सीखना, ये सब उनके लिए व्यर्थ की बाते हैं। पुरानी वेश्या राज-नीति, काव्य, साहित्य, शिकार, घुडसवारी इत्यादि अनेक हुनर सीखती थी। अब इन सब बातो से उसका कोई वास्ता नहीं रहा। इसलिए उनका खाली दिमाग शैतान का कारखाना बना रहता है।

कसबियो और कलाकार वेश्या-पुत्रियो को अलग अलग रखना चाहिए। दोनो से अलग-अलग ढंग और मेहनत के काम भी लेने चाहिए। कसबियो से शारीरिक श्रम अधिक कराना चाहिए, अन्यथा उनका काम-रोग न थमेगा। उनके साथ एक ओर जहाँ सख्ती हो वहा दूसरी ओर उन्हे अच्छे कामो के लिए प्रोत्साहन भी भरपूर मिलना चाहिए। सख्तियो से उन्हें परायी दावता का अनुभव न हो वरन् वे यह अनुभव करें कि ये सख्तियाँ उनके व्यक्तित्व के प्रति सम्मान और स्नेह-भाव के साथ-साथ उनके भले के लिए ही की जा रही हैं। सख्ती हो डांट

*करि सिंगार सेजहि चली
स्वकीया, परकीया और गणिका

स जयति सङ्कल्पभवो रतिमुख शतपत्र चुम्बन भ्रमर ।
यस्यानुरक्त ललनानयनान्त विलोकन वसति ॥

[प्रेममयी सुन्दर कामिनियो की मद-भरी कनखियो म बसने वाले, रति के मुखकमल को भँवर के समान सदा चूमने वाले सकल्पभव कामदेव की जय हो।]
—'कुट्टनीमतम्'

उपरोक्त वदना म कामदव को 'सकल्पभव' अर्थात दिमाग से पैदा होने वाला बतलाया गया है। काम की यह विशेषता कुटनियो, वेश्याओ और कुलटाओं की कहानियो के साथ जोडकर देखने पर हमारे सामने मानव सभ्यता का एक सीधा सच्चा नक्शा खिंच जाता है। विशेष रूप से विश्व-पुरुष के इस सकल्पभव काम ने विश्व नारी की सामाजिक स्थिति का सदा भूकप की डोलती धरती जैसा बना दिया। इस सकल्पभव काम ने अपने विभिन्न मानवीय नातो से अनुभव-सार के रूप मे हमे दो शब्द दे दिये—प्रेम और व्यभिचार।

प्रेम और व्यभिचार

प्रेम शब्द अपनी परिभाषा को लेकर स्त्री-पुरुष, प्राणीमात्र और परमेश्वर तक छाया है। इसकी व्याख्या करने का साहस सहसा नही हो रहा, फिर भी इतना तो अपने पोढे मन और आप्टे के सस्कृत कोष के आधार पर कह सकता हू कि प्रेम का अर्थ आनन्द है। वह आन द ऐसा है जिसे हम चमत्कार के साथ अनुभव करते है, आखे खुली-की खुली रह जाती है, मनुष्य की गति, मति, अहकार, सब स्तब्ध हो जाते हैं, केवल आन द ही चेतना मे व्याप्त होता है।

व्यभिचार का अर्थ है सही रास्ते से हटना। तर्कशास्त्र के अनुसार व्यभिचार मिथ्या हेतु है अर्थात व्यभिचार मे हेतु की उपस्थिति बिना साध्य के होती है। पर-स्त्री अथवा पर-पुरुष का भजन वाले अपने सही मार्ग स हटने के कारण ही व्यभिचारी कहलाते हैं।

सवाल यह आता है कि व्यभिचारी के काम हेतु म क्या वह शक्ति—राग-

त्मक वृत्ति—साध्य नही होती जिसे प्रेम कहा जाता है ? क्या प्रेम सकाम नही ? मुझे तो ऐसा लगता है कि कुछ नानो को याद करके स्त्री पुरुष जब एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं तब उनकी चित्तवृत्ति पर निश्चित रूप से काम की छाया होती है। नई जवानी में स्त्री-पुरुष जब एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त होते हैं, तब उसमे अपना पुरुषत्व और नारीत्व सार्थक करने की तडप होती है। नई भावना मे वे यह सहज अनुभव करते हैं कि दोनो एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। सत्य के स्पर्श की यह ताजगी बडे महत्व की होती है। उसके बासी होने से मनुष्य का चरित्र गिर जाता है। वे ही विवाहित स्त्री-पुरुष अन्य स्त्री-पुरुषो की ओर खिचत हैं जिनका जीवन अथवा काम जीवन स तुष्ट नही होता। पारस्परिक आकर्षण को वे एक-दूसरे से प्रेम हो जाना मानते हैं। उन्हे आनन्द मिलता है, भले ही वह घुटन-भरा हो। उदाहरण के लिए पिछले किसी अध्याय मे बखानी गई तमचा-काण्ड वाली कहानी ले। क्या पतित्यक्ता सेठानी को अपने बरेली वाल प्रेमी के प्रति अनुराग नही था ? क्या अपने प्रिय के स्मरण अथवा दर्शन-मात्र से उसे आनन्द नही मिलता होगा ? घुटन दूसरा सत्य है, उस या उसके दुष्परिणामो की तरफ से हमारा आखे मिची नही है फिर भी यहा हम आनन्द पक्ष का ही देखगे।

महाकवि आनन्दघन और महाकवि मोर की दो उक्तिया याद आती हैं—

जबतें निहारे घनआनन्द सुजान प्यारे।
तबतें अनोखी आगि लागि रही चाह की॥

और—हम तौरे इश्क से तो वाकिफ नहीं हैं, लेकिन
सीने में कोई जसे दिल को मला करे है।

मेरा विश्वास है कि जिस किसी के किसी से कभी नैन जुडे होगे, वह चाह की अनोखी आग लगन और सीने के अन्दर किसी के द्वारा दिल मल जाने की बात का समर्थन करेगा। चाह की आग और दिल की मलदल आम तौर पर सकाम होती है। दिल मिलते ही पत्थर पानी हो जाता है और ममता व्यापक रूप धारण करती है। परस्पर अनुरक्त स्त्री-पुरुष शारीरिक रूप से एक होने की सुविधा न पाकर भी अपनी चाहत मे तरह-तरह से एक महसूस करते हैं—यह हवा जो सारी दुनिया म व्याप्त है हर सांस म डोलता है, प्यार के आलम में मानो आशिक और माशूक के लिए ही एक दूसरे की सांसो का सदेशा लिये डोलती है। आकाश के चाँद-तारे प्रिय और प्रियतमा के आनन बन जात हैं। हम तरह-तरह स और अपनी चाहत मे तडप-तडपकर एक-दूसर को विभिन्न

चाहनाओ को अपनी बनाने की ललक निशान है। आप गौर करेंगे कि प्रेमी के शाकाहारी होने की बात अगर कही प्रेमिका के कानो तक पहुँच गई तो प्रेमिका को भी मासाहार से क्रमश अरुचि हो जायगी। प्रेमी को यदि अमुक रग की साडी पसन्द है तो प्रेमिका वही पहनेगी। अपनी तीव्र अनुराग मे दोना इतने एक रस हो जात हैं कि दोनो को एक-दूसरे म कोई भी बुराई नजर नही आती, जो प्रिय का प्यारा होता है वह प्रिया का भी प्यारा हो जाता है। वह गली, वह सडक, जहाँ प्रेमी और प्रेमिका रहत हैं, एक-दूसरे का बावली पवित्रता का आभास कराने लगती हैं।

उल्फत का जब मजा है कि दोनो हो बेकरार।
दोना तरफ हो आग बराबर लगी हुई॥

यह बराबर की आग—यह परमानुराग—उस स्थिति को भी पा लेता है जिसे हम दिव्य प्रेम कहते हैं। इस सीमा पर आकर प्रेम निष्काम हो जाता है। हम केवल चाहने के लिए ही चाहत है इसके अलावा प्रियतम या प्रियतमा से और कुछ नही चाहत। ऐसी स्थिति म हमारा अनुराग श्रद्धा का रूप लेकर स्थायी हो जाता है।

मगर बहुत हद तक सर्वसाधारण के दैनिक आचार मे यह महज कहने की बात ही होती है। हमने ऐसे अनक दखे है जो हफ्तो, महीना या कभी-कभी वरसा तक एक-दूसरे के प्रति ऐसा दिव्य प्रम-भाव बढाकर भी फिर क्रमश उसे छोड देते है। हमने यह भी दखा है कि कितनी तडप लेकर प्रेमी-प्रेमिका यदि लुकाचोरी दैहिक रूप म एक-दूसरे को प्राप्त कर लेत हैं तो फिर उनका प्रेम का नशा उतर जाता है। हमने यह भी देखा है कि वे पुरुष या स्त्रियाँ, जिन्होने कभी एक-दूसर तक ही अपनी जीवनाकाक्षा को सीमित कर लिया था, बार-बार अनक प्रिय अथवा प्रियाओ के पीछे वैसी ही आहे भरते हैं। आप इनमे स किसी से पूछिए कि भैया, चार दिन पहले तो तुम कहत थे कि मैं अमुक के बिना नही जी सकता और अब कहत हो कि मैं अमुक के बिना नही रह सकता—यह क्या माजरा है? तो वह चट-स बे-झिझक कहेगा कि हाँ, वह ता थी ही, मगर यह उससे भी महान् है। मुझे आश्चर्य हाता है कि कैसे उनकी तडप झूठी नही पडती। आश्चर्य भले ही हो, पर वस्तुस्थिति आम तौर पर यही है। प्रेम स्थायी भाव है, प्रेम में मरकर जीना आता है, यानी कि ठीक वही होता है जैसे पृथ्वी का आकर्षण छोडकर रॉकेट चन्द्रलोक पहुँच जाता है। मनुष्य की चेतना एकदम नई स्थिति पा लेती है। व्यभिचार की स्थिति मे अनुराग इस हद तक कभी नही

पहुँच सकता । क्योंकि उसमें भय की भावना ही निहित होती है इसलिए उस चलतू चीज़ को, जिसे लोग प्रेम कहते हैं, मैं काम वासना मानता हूँ। और यदि यह किसी को बुरा लगे तो मैं इसे लौकिक प्रेम मान सकता हूँ।

कुलटा और वेश्या में भेद

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इससे प्रेम करने वाली परिणीता स्त्रियाँ या एक के बाद अनेक से दिल लगाने वाली कुमारिकाएँ वेश्याएँ नहीं हैं, और क्या इनके प्रेमियों को हम वेश्यागामी नहीं कह सकते ? एक अंग्रेज़ विद्वान बाडला महोदय आज से लगभग एक सौ सत्रह वर्ष पूर्व यही लिख गए हैं कि स्त्री-पुरुष का अवैध काम भोग ही वेश्या-वृत्ति है। शायद यह बात किसी हद तक ठीक हो, परन्तु अपने शब्द-भण्डार को देखते हुए मुझे ऐसा लगता है कि वेश्या शब्द कुलटा अथवा पुश्चली स्त्री से भिन्न है। वेश्या अथवा गणिका का अर्थ है जनता की स्त्री। संस्कृत भाषा में वेश्या को पण्य-वधू भी कहा जाता है। पण्य शब्द का अर्थ है बेचन-खरीदने योग्य। वेश्या को पण्यांगना और पण्य-विलासिनी भी कहा जाता है। नायिका भेद में गणिका-लक्षण बतलाते हुए महाकवि मतिराम लिखते हैं—

धन दै जाके संग में, रमै पुरुष सब कोइ।
ग्रंथन को मति देखिकै, गणिका जानहु सोइ॥

इससे और वेश्या शब्दों का अर्थ अलग-अलग और स्पष्ट हो जाता है। अनेक पुरुषों के पीछे चलने वाली पुश्चली या कुलटा के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी देह को भाड़े पर उठाए। अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिए वह एक से अधिक पुरुषों का अंग-संग भले ही करे, किसी स्थिति में आर्थिक प्रयोजन से आगे चलकर वेश्या भले ही हो जाए, पर आरम्भ में हर कुलटा को वेश्या कहने का अधिकार हमें नहीं है।

जिन देशों में तलाक की प्रथा प्रचलित है वहाँ एक स्त्री एक या अनेक पतियों को तलाक देकर बार-बार अपना विवाह करती है। विधवाओं के पुनर्विवाह भी होते हैं। हमारे देश में बहुत-सी जातियों में विधवा-विवाह होते हैं, या पति में कोई दोष होने पर अथवा गहरी अनबन होने पर स्त्री दूसरे के घर बैठ जाती है, या माता-पिता के द्वारा बिठा दी जाती है। ऐसी स्त्रियों को वेश्या तो कहा ही नहीं जा सकता, आम तौर पर उन्हें कुलटा भी नहीं कहा जाता। महर्षि वात्स्यायन ने ऐसी घर-बिठउवा करने वाली स्त्रियों को 'पुनर्भू' नाम दिया है। इसलिए मानव-समाज में वेश्या की स्थिति कुलटा से अलग है। एक

बात यह भी मार्के की है कि सारी दुनिया म वेश्या को समाज ने सदियो तक सम्माननीय भी माना है। किसी कुलटा के प्रति कारणवश हम आदर करने लगते हैं, फिर भी हम उससे मन-ही-मन घृणा करते है, परन्तु वेश्या के साथ कभी ऐसा दुहरा मन नही होता। वेश्या पुरुष के कामाचार और कला एव वाणी विलास के लिए निर्मित एक विधिवत् साधन है। जिस प्रकार अपनी विवाहिता स्त्री के साथ सम्भोग करने के कारण कोई पुरुष पापी नही कहलाता, उसी प्रकार अब से पच्चीस-पचास वर्ष पहले तक वेश्या-सग के लिए भी उसे कोई दोष नही देता था। यह होते हुए भी, जैसा कि जाज रैले स्कॉट ने अपने 'वेश्यावृत्ति का इतिहास' नामक ग्रथ म लिखा है, "जो वेश्यावृत्ति का पोषण-सरक्षण करने के लिए अधिक जिम्मेदार हैं, जिनकी राते शराबखाना, क्लबो और नाइट क्लबो मे गुजरती हैं वे लोग भी अपनी घरेलू औरतो के साथ होने पर भो वेश्या-सबधी चर्चा चलाने म सकोच करते हैं, वे उन काफे रेस्तराओ तक जाने से बचते हैं जहाँ रूपजीवाओ के मिलने की सम्भावना होती है। सयोग से यदि कोई ऐसी मिल भी गई कि जिसके साथ शायद पिछली रात ही रग-रग म गुजारी हो तो वे चतुराई से उसे अनजाना अनदेखा ही कर जाएँगे। वेश्या नैतिकता की दृष्टि से सभ्य समाज से सदा बॉयकाट पाती है।'

'तिरिया-चरित्तर'

इतिहास का चक्र कहे, नियति का खेल, अपना सौभाग्य या दुर्भाग्य माने कि मानव-सभ्यता के विकास मे शुरू से ही एक लगर बँध गया। सामाजिक व्यवस्था अपनी नीव म ही अव्यवस्थित रह गई। पुरुष नारी का नाता प्राकृतिक विधान से तो बराबरी का था, लेकिन ऐतिहासिक कारणो से पुरुष के सामाजिक विधान से वह पुरुष की भार्या दासी, मोल ली हुई सम्पत्ति, उसके उत्तराधिकारियो की जननी मात्र ही रह गई। इस सनातन सघर्ष म एक ध्यान म रखने योग्य बात यह भी है कि स्त्री को पुरुष से सामाजिक समता पाने का वैधानिक अधिकार भी है। आदर्श के रूप मे अर्धनारीश्वर का प्रतीक हमारे सामने काफी पुराने समय से है। हमारी सभ्यता ने मातृतीर्थ को छोडकर नारी को सामाजिक समता देने का आडबर भी काफी ईमानदारी के साथ रचा है। हा जननी के रूप मे नारी के प्रति पुरुष की श्रद्धा सचमुच पूर्ण शुद्ध, अभिन्न और अनन्त है। यह होते हुए भी जननी के रूप म भी नारी की स्थिति अमम ही रहती है, यहा वह पुरुष के लिए अपना मानवी रूप छोडकर देवी बन जाती है पुरुष से ऊँचा आसन ग्रहण कर लेती है। इसलिए नारी के मातृपक्ष को थोडी देर के लिए ध्यान मे अलग रखकर

यदि हम अपनी नारी की प्राचीन सामाजिक स्थिति देखें तो मेरी ऊपर की बात किसी के लिए भी चिढ़ाने वाली वस्तु नहीं सिद्ध होगी। इस सन्तुलन ने पुरुष और नारी के नाते की अनेक उलझन भरी मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का जाल दे दिया। क्या अजब हैरत है कि योगी साधक, सन्तजनों के लिए नारी नरक का द्वार, घर में वह घरैतिन घरमालकिन होते हुए भी ढोल गँवार और शूद्र के साथ ताड़ना की अधिकारिणी है, बाजार में वह सर्ववल्लभा, जानेजहाँ होकर भी सामाजिक विधान के अनुसार नीच है, पातुरा है। चाहे 'कथा-सरित्सागर' लीजिए या किस्सा अलिफलैला हजार दास्ता उठाइए, हर तरफ तिरिया-चरित्तर के बड़े रोने रोये गए हैं।

यह त्रिया-चरित्र वाला सिद्धा त एक इतना बड़ा सामाजिक झूठ है कि यदि इस शब्द के साथ फैली हुई नारी-विरोधी भावना को जोरदार प्रचार से न मिटाया गया, तो आज के नये युग में स्त्री पुरुष में समता लाने की बात कहीं अधर में ही लटकी रह जाएगी। स्त्री हो अथवा पुरुष शहजोर की सत्ता में दबकर रहने वाला कमजोर निश्चित रूप से विद्रोह करेगा। स्त्री-जाति ने अनेक ने भी यही किया। परदेश जाने वाला पुरुष कामेच्छा जागने पर वेश्यागमन कर सकता है, दूसरा विवाह भी कर सकता है, परन्तु परदेशी की कामाकुला पत्नी यदि ऐसा करे तो पापिन हो जाती है। पाप शब्द जुड़ा, यानी अपने प्रति मान-हानि का बोध हुआ और फिर भी सहज प्रकृतिजन्य कामेच्छा मन में बनी रही तब मनोवैज्ञानिक रूप से स्त्री अपने मन के दो सिरों से बँध जाती है — उसे अपने असम्मान से चिढ़ भी होती है और अपनी कामेच्छा की सत्यता के प्रति आकर्षण भी। पाप को ढकने के लिए उसे षडयन्त्र रचने पड़ते हैं, पुरुष की तरह उसका मानस स्वस्थ गति नहीं कर पाता। कामचर्या करते हुए स्त्री-जाति पापिनी अथवा पुण्यशीला केवल गर्भ धारणा करने के कारण ही होती है। पुरुष सुख लेकर मुक्त हो जाता है, नारी काम-सुख से बँध जाती है। उसके गर्भ में सन्तान नहीं वरन् किसी पुरुष का उत्तराधिकारी पलता है और यदि वह सन्तान किसी की उत्तराधिकारी नहीं है तो लावारिस है, अवैधानिक है। पाप-पुण्य की जड़ यहीं से शुरू हो जाती है।

वेश्या की सन्तानें चूंकि अपने पिता से उत्तराधिकार नहीं पातीं, इसलिए उसे चाहने पर किसी का भी गर्भ धारण करने में संकोच नहीं होता। यह सच है कि वेश्या अथवा उसकी सन्तान का हम वह आदर नहीं देते जो अपने उत्तराधिकारियों और उनकी जननियों को देते हैं। परंतु स्त्री किसी भी व्यक्ति अथवा

भजने वाले नर-नारियो को व्यभिचारी अथवा कुलटा किस प्रकार कह सकेंगे ? ये तमाम शब्द ही निरर्थक हो जाएँगे। सती और असती यानी एक-पुरुष व्रती अथवा बहु-पुरुष-गामिनी मे मान-मर्यादा का भेद भी न रह जाएगा।

मैं जानता हूँ मेरी ये बाते बहुत से पाठकों के मन को धक्का देंगी, क्योंकि ऐसे विचार आने पर स्वयं मैंने भी अपने दिल मे धक्के महसूस किये हैं। एका-एक यह भी लगा है कि ऐसी निकम्मी मानव-सभ्यता को लेकर हम क्या करेंगे? इस नई सभ्यता को लाने के लिए हम क्या प्रयत्नशील हों ?

यथार्थ का यह रूप देखकर मुझे सहसा इस समय अपनी काया के कभी न कभी आने वाले अंतिम क्षण की याद हो आई। इस देह के न रहने पर मेरा या मेरे जीवतत्व का क्या होगा, या वा कैसी स्थिति मे रहेगा ? सवाल बडा घुटन-भरा है और फिलहाल इसका जवाब भी नही मिल सकता। मगर यह घुटन, यह ला-जवाबी मेरी पहली घुटन को समाप्त-सा करते हुए उसका जवाब भी सामने ला रही है। मुझे लगता है कि कल की नई विश्वव्यापी सामाजिक मानव चेतना आज से बहुत भिन्न होगी, यह यथार्थ है। मगर इसके साथ ही-साथ एक और यथार्थ भी है जिसे हम स्पिरिच्वलिज्म या आध्यात्मिक रहस्यवादी बकवास कह कर टाल दिया करते हैं। काम के क्षेत्र मे, चाहे वह पाप रूपी काम हो या पुण्य रूपी काम, यह स्पिरिच्वलिज्म का यथार्थ अधिकतर बडे-बडे बखेडे-जजाल खडे कर दिया करता है। सिर्फ उन चकलेखानो की बात छोड दीजिए जहा देह का व्यापार पैसा देते ही या सहज भाव से चल पडता है जैसे कि स्विच दबाते ही मशीन चल पडती है। बाकी हर प्रकार के काम सम्बन्धो मे एक-न-एक प्रकार का अपुनपौ का लगाव भी कुछ न कुछ तो हो ही जाता है। अपने फिल्म जीवन मे एक बात मेरे आजमाने मे आई। जिनसे किसी का एक बार लग लगाव हो जाता है वे स्त्रियाँ उस पुरानी गरमी के बहुत दूर चले जाने पर भी अनेक के साथ कुछ दिन, महीने या बरस वैसे ही बिताने के बाद भी अगर सामने आ जाती हैं तो पुराना लगाव कम-से कम एक क्षण के लिए तो तीव्र रूप से जाग ही पडता है। स्त्री खास तौर पर उस क्षण के लिए पुरुष पर अपना अधिकार मान लेती है। ऐसी ही भावना पुरुषो मे भी जागती है। फिर भी जहाँ तक मेरा अनुभव है स्त्री इस अधिकार भावना को अपनी प्राण शक्ति से पुरुष की अपेक्षा अधिक तीव्र उछाल देती है। पुरुष यह गति किसी स्त्री की देह प्राप्त करने से पूर्व दे पाता है। उस समय तो वह इस अधिकार गति में इतना प्राण वेग भरता है कि स्त्रियाँ उसके जादू से बध जाती हैं। मैंने यह भी अनुभव किया है कि जिन स्त्री-

पुरुषो का काम-सग समान सुख-संतोष की पटरी पर बैठ जाता है वे दोनो ही भले बहुचारी हो मगर अपना पारस्परिक आकर्षण कभी नही खो पाते। यही नही, बल्कि एक दूसरे के प्रति दोनो की माँग अधिकाधिक बढ जाती है। होते-होते वे एकाचारी हो जाते हैं। स्त्री के छोटे से-छोटे सुख-दुख पर पुरुष की नजर ऐसी सध जाती है कि चूक नहीं होती और स्त्री की मनोदशा भी ऐसी ही हो जाती है। मैंने देखा है कि ऐसा भाव बँध जाने पर स्त्री-पुरुष मे काम-सग की इच्छा प्राय बहुत कम हो जाती है, ऐसे प्रेमियो के लिए वह दिन त्योहार का-सा अनोखा लहरा-भरा होता है जब कि वे अग-सग करते हैं।

मैं इस अनुभव को झुठला नही सकता। प्राणो का वह पारस्परिक आकर्षण, जो काम-सुख से भी अधिक श्रेष्ठ-मान्य हो वह चाहे स्पिरिच्वलिज्म हो या और कुछ मगर यथार्थ अवश्य है। इसे व्यक्तिगत अनुभव कहकर भी टाला नही जा सकता। हमारे देश मे अब भी और अब से दस बीस वर्ष पहले यह आम रिवाज था कि माता-पिता अपनी सन्तानो के लिए पति अथवा पत्नी चुन देते थे। अंग्रेजी सभ्यता के आने से पहले किसी वर-कन्या के होश मे भी यह नहीं आता था कि वे एक-दूसरे के लिए अपनी-अपनी कल्पनानुसार योग्य हैं अथवा अयोग्य। आमतौर पर तो बरसो तक दो-चार बच्चो के माँ-बाप बन जाने तक भी पति-पत्नी एक दूसरे की सूरत भी ठीक तरह से नही देख पाते थे—दिन में घूघट और रात के अधेरे मे मिलन आम घरो का चलन था। मानवता के इतिहास मे नर-नारिया के ऐसे असख्य एकाचारी जोडे होगे। रसज्ञ और तीव्र सवेदनशील स्वस्थ तन वाले शिक्षित सस्कारी स्त्री-पुरुष अपने नैतिक सौन्दर्य मे जिस एकाचार का श्रेष्ठत्व दर्शन करते हैं वह प्राय औसत गँवार का सहज गुण होता है, ऐसा स्त्रियो मे तो विशेष रूप से होता है। इसलिए मैं यह मानने को तैयार नहीं कि नये युग मे हर प्रकार की परतन्त्रता हट जाने के बाद भी नर-नारी एकाचारी नही रहेंगे। वैसे भी एक बात सबके लिए आजमाने और अपने-आपसे पूछ देखने लायक है कि समाज मे बडी विविधता रहने पर भी एकाचारिता अधिक प्रचलित है या व्यभिचार? हम जब आपस मे जमाने का रोया करते हैं तो उस 'जमाने' शब्द के पीछे जितने बुरे चित्र होते हैं उतने ही क्या भले चित्र भी होते हैं?

एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है। अपनो सन्तान के लालन-पालन की जिम्मेदारी स्त्री-पुरुष को काम-जीवन के अतिरिक्त पारस्परिक सहयोग और अभेद्यता का एक नूतन यथार्थ भी प्रकट करती है। सन्तान दोनो का सम-सन्तोष समानन्द होती है। सन्तान स्त्री-पुरुष की ऐसी सृष्टि है जिसे दोनो में से कोई अकेला नहीं

रच सकता। इसलिए मेरी समझ मे तो स्त्री-पुरुष मे बड़े-छोटे या बराबरी आदि की बात ही नही उठनी चाहिए। जब एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही सम्भव नही, तब अलग-अलग लगकर भी वास्तव मे वे अलग कहाँ हैं? दोनो की इस प्राकृतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए भी मुझे यही लगता है कि आगामी मानव-सभ्यता में स्त्री-पुरुष के एकाचार सिद्धान्त की महिमा और बढेगी। दोनो की सन्तान जब पुरुष की निजी सम्पत्ति और सत्ता की उत्तराधिकारी मात्र ही न रहेगी, तब उनकी कामेच्छा मे जिम्मेदारी की भावना बहुत अधिक स्पष्ट होकर निखरेगी। इसलिए नि शंक होकर हमे अपने काम-विकारो का इलाज करना चाहिए।

* काम-विकारो का सामाजिक इलाज

हमारे काम-जीवन की विकृतियाँ मुख्य रूप से दो विभागों मे बाँटी जा सकती हैं। एक प्रकार की विकृतियाँ उस भारतीय समाज मे हैं जो अब भी दाढी-चोटी रखता है, मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारे मे जाता है, जाति-बिरादरियो और ऊँच-नीच मे विश्वास रखता है—सदियो की परम्पराओ में जडीभूत होकर भी नई दुनिया में रहने के कारण उससे भी अछूता नही है। इस समाज मे काम-जीवन को लेकर पाप-पुण्य की मान्यताएँ कुछ और हैं।

इनके अतिरिक्त एक ऐसा भारतीय समाज भी है, जो दाढी-चोटी के साम्प्रदायिक लगाव से मुक्त है, मन्दिर, मस्जिद, गिरजा आदि से उसका कोई नैतिक लगाव नही, अगर पैदाइशी लगाव से उसका हिन्दू नाम है तो वह हिन्दू है अथवा इसी प्रकार मुसलमान अथवा सिख, ईसाई आदि है। इस समाज मे किसी हिन्दू या सिख लडकी का पति मुसलमान या ईसाई बिना किसी मानसिक हलचल या बाधा के हो सकता है और मुसलमान लडकी भी इसी प्रकार हिन्दू-सिख को अपना पति वरण कर सकती है। ऐसे विवाहो मे माता-पिता स्नेही-बन्धु, सब हँसी-खुशी से शामिल होते हैं, लडकी वाला नि सकोच लडके वाले के यहाँ खाना खाता है, दान-दहेज रीति-रस्मो का भी कोई झमेला नही होता। यह भारतीय समाज अपेक्षाकृत बहुत छोटा है और प्राय बडे नगरो में ही है। इस समाज मे भी स्त्री-पुरुष के एकाचार का बडा मान है। जो एकाचार नही बरतते उनकी निन्दा होती है। हाँ, वे उन तमाम परेशानियो से मुक्त हैं जो ऐसी स्थिति मे पुरानी भारतीय मान्यताओ के समाज में पाप-पुण्य की गहरी विवेचना का कारण बन जाती हैं। मान लीजिए कि पुराने समाज मे किसी मुसलमान लडकी का किसी हिन्दू लडके से प्रेम हो जाए तो दोनो को अपने माता-पिताओ से आशीर्वाद के बजाय क्रोध-भरी गालियाँ मिलेंगी। दोनो का प्रेम पुण्य के बजाय घोर पाप होगा। ऐसा विवाह करने वाले युवक-युवती अनेक मानसिक उलझनो मे भी फँस सकते हैं। ये उलझनें हमारा समाज उन पर व्यर्थ ही लादता है। प्रेम की लुका-चोरी वाली स्थिति घातक है, बहुत-सा व्यभिचार तो इस लुका-चोरी की स्थिति से विद्रोह के रूप में फूटता है।

आम तौर पर हमारे पुराने घरों में लड़कियों की स्थिति लड़कों से बुरी होती है। पितृसत्तात्मक समाज में लड़के का जन्म लड़की की अपेक्षा अधिक प्रसन्नता का कारण होता है। मैंने बहुत से घरों में देखा है, प्यार में भी लड़कियों को छेड़कर यही कहते हैं कि तू कब मरेगी। आम तौर पर लड़कों का ज्यादा खयाल रखा जाता है। अपना यह सहज निरादर लड़की के स्वाभिमान को चोट पहुँचाता है। डॉक्टर मिस गौरी बनर्जी ने अपनी किताब 'सेक्स डेलिन्क्वट विमेन' में सच ही लिखा है कि घर में निरादर पाने वाली लड़कियां जब कामी जनों के चापलूसी-भरे फुसलावे सुनती हैं तो उन्हें यह समझ में आता है कि वह उनकी इज्जत कर रहा है। यह इज्जत का नशा ही उनमें काम-समर्पण करवाने का मुख्य कारण होता है।

मेरे खयाल में यदि सरकारी समाज कल्याण केन्द्र और सार्वजनिक संस्थाएँ मिलकर विश्व साहित्य से प्रेम के सुन्दर-सुन्दर व्याख्यात्मक वाक्य और छन्द चुनकर छोटी प्रचार पुस्तिकाएँ निकालें, स्त्री-पुरुष के दबाव या फुसलाव वाले क्षणिक काम जीवन से उत्पन्न होने वाली विषम समस्याओं के तथ्य और साथ-ही-साथ स्वस्थ प्रेमजन्य काम-जीवन के तथ्य यदि लड़के लड़कियों के सामने आएँगे तो निस्सन्देह युवक-समाज को बड़ा लाभ होगा। मैं यह तो नहीं मानता कि काम-सम्बन्धी तथ्यों और मनोवैज्ञानिक सूत्रों के अधिकाधिक प्रचार से नर-नारियों के रिश्ते में हर तरफ़ सतयुग ही-सतयुग झलकने लगेगा, फिर भी स्वस्थ काम-चेतना के प्रसार से आज की काम-विकृत दुनिया का नक्शा अवश्य बहुत बदल जाएगा। जन-जनार्दन करे ऐसा ही हो।

परिशिष्ट

'वारवधू विवेचन'
एव बाबू वच्चूसिह 'भक्त' का 'वेश्यास्तोत्र'

सन् १६२६ ई० मे साहित्य सदन, अमृतसर से 'वारवधू विवेचन' नामक एक अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। मुझे भाई उन्यशकर शास्त्री की कृपा से यह पुस्तक प्राप्त हुई। पुस्तक पर लेखक का नाम नही छपा है, या तो लेखक महोदय ही इस विषय की पुस्तक के साथ अपना नाम सम्बद्ध करने म सकोच कर गए होंगे अथवा कॉपीराइट खरीदने वाले प्रकाशक न अपने पैसा की तोल म लेखक क श्रम को नगण्य समझा होगा। जो हो, लगभग इकतीस-बत्तीस वष पूर्व काफ़ी हद तक सही दृष्टिकोण से इस विषय को देखने वाले लेखक की सराहना किये बगैर नही रह सकता। पुस्तक के प्रारम्भिक परिच्छेदा मे हिन्दू-मुस्लिम और ईसाइयों के धर्मानुसार स्वर्ग में अप्सराओ और हूरों के अस्तित्व पर विचार किया गया है। विभिन्न देशा के इतिहास मे वेश्याआ की अच्छी-बुरी स्थितिया के हवाले भी इस पुस्तक म दिये गए हैं। लेखक ने यद्यपि स्पष्ट रूप से तो यह कही भी नहीं लिखा कि वेश्यावृत्ति उन्मूलन आन्दोलन गलत है, परन्तु उसने विभिन्न देशो और कालो के सुधारवादी आन्दोलनो की नि सारता अवश्य दरशाई है। इस पुस्तक म भारतीय सुधारका द्वारा सन् १८६३ ई० में वाइसराय के पास भेजे गए एक प्रार्थना-पत्र का उल्लेख किया गया है। मद्रास के 'हिन्दू सोशल रिफ़ॉर्म एसोसिएशन' तथा दूसरे नगरा के कतिपय सुधारका ने वाइसराय का लिखा कि वेश्याएँ गृहस्थ जीवन को मिट्टी में मिलाती हैं तथा जन-समुदाय का चरित्र-नाश करती हैं। इसलिए हम लोगो ने यह निश्चय किया है कि ऐसे सार्वजनिक उत्सवा मे जहाँ वेश्याआ का नाच-गाना होगा हम सम्मिलित न होंगे। आप भी कृपया अपने सम्मान मे आयोजित होने वाले उत्सवा में इनका नाच-गाना बन्द करा दें। वाइसराय के शिमला-स्थित महल से २३ सितम्बर १८६३ ई० को इनका उत्तर भेजा गया। उसमे लिखा था " भारतवर्ष मे भ्रमण करते हुए हुजूर वाइसराय को ऐसे जल्सा मे शामिल होना पडा है जहाँ कि वेश्याआ का नृत्य भी प्रोग्राम म

शामिल था। वहाँ वेश्याओं का नाच हुजूर वाइसराय न देखा है। हुजूर वाइसराय को उस नाच में कोई ऐसी बात दृष्टिगोचर नहीं हुई जिससे कि सर्वसाधारण के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता हो। इस कारण हुजूर वाइसराय आपकी प्रार्थना स्वीकार करने मे असमर्थ हैं।"

वाइसराय के इस उत्तर स हमारे सुधारवादियो का बड़ी निराशा हुई। 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' तथा 'दि लाहौर प्योरिटी सर्वेण्ट' नामक पत्रो में सुधारवादिया के साथ पूरी सहानुभूति दिखलाई गई। अग्रेज सरकार ने उस पर कोई ध्यान ही न दिया। परन्तु जान पड़ता है कि लाहौर म्युनिसिपैलिटी उन दिनो सुधारवादियों के ही अधिकार मे थी। क्योंकि उन्हीं दिनो, वाइसराय का उत्तर प्रकाशित होने के बाद लाहौर की वेश्याएँ वहाँ की नगरपालिका के आदेश से एक मुहल्ले से हटाकर दूसरे मुहल्ले म बसायी गई थी।

मैं किसी भी प्रकार के सुधारवादियो की नीयत को कभी गलत नहीं मान सका। पर अब यह अनुभव अवश्य करता हूँ कि सुधारवाद की लहर किसी भी क्षेत्र मे पूरी तरह शक्तिशाली सिद्ध नही हुआ करती। सुधारा का नारा नयी चेतना के लिए किसी हद तक एक धरातल अवश्य प्रस्तुत कर देता है। गदर के बाद नयी चेतना के प्रकाश में यह स्वाभाविक ही था कि धनी-मानी वग म घुर तक समायी हुई विलासिता के खिलाफ जिहाद बोला जाए। स्वय भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखको ने रडी मडुआ से घिरे रहने वाले आभिजात्य कुलों के युवकों को उद्बुद्ध करने में कोई कसर न उठा रखी। उनके बाद भी साहित्य मे विलासिता की प्रतीक वेश्या का विरोध होता रहा। महात्मा गाँधी ने भी वेश्या वृत्ति के विरुद्ध आवाज उठाई किन्तु उनका दृष्टिकोण स्वाभाविक रूप स अन्य सुधारवादियो से भिन्न था। सुधारवादी जबकि वेश्याओ को समाज का शत्रु मानकर उन्हे नेस्तनाबूद करने पर तुले हुए थे तब गाँधीजी वेश्याओं को परिस्थितियो का शिकार मानकर स्वय उन्ही से आत्म-सुधार की माँग कर रहे थे। सुधारको ने अमृतसर में वेश्याओ के मुहल्ले मे पहरा देना आरम्भ किया ताकि वेश्यागामी वहाँ न पहुँच सकें। वेश्याएँ घबराहट मे अमृतसर छोड़कर भागीं। दो सप्ताह में लागो का पहरेदारी का जोश ठण्डा हो गया। वेश्याएँ फिर लौट आईं। गाधीजी ने वेश्याओ को परेशान करने की कोई स्कीम नही बनाई, बल्कि वे उनसे मिले। उक्त पुस्तक मे नैनीताल और काशी मे उनकी वेश्याओ से मिलने की बात भी लिखी है। गाधीजी की प्रेरणा से काशी मे एक 'तवायफ़-सभा' की स्थापना हुई। काशी की वयोवृद्धा प्रतिष्ठित गायिका हुस्नाबाई उसकी अध्यक्षा

निर्वाचित हुई। वारवधू विवेचन' पुस्तक मे हुस्नाबाई मे भाषण की अविकल नक्ल छपी है जिसम उन्होने वेश्याओ से आत्म सुधार करने और स्वतन्त्रता आन्दोलन मे भाग लेने की अपील की। अपने भाषण के अन्त मे उन्होंने इस सभा की स्थापना का श्रेय काशी की तत्कालीन सरनाम गायिका विद्याधरी बाई को दिया। सौभाग्य से विद्याधरी बाई अब तक जीवित है। मने उन्हे पत्र लिख-कर उक्त मीटिंग की पुरानी बातो पर अपनी स्मृति का प्रकाश डालने की प्रार्थना की। विद्याधरी जी अब काफी बूढी हैं। छिआसी-सत्तासी वर्ष की आयु मे हर बात याद रखना कठिन हो जाता है फिर भी उन्होंने उस सभा की कुछ बातों पर प्रकाश डाला। उनका पत्र यथावत् उद्धृत कर रहा हूँ

"महात्मा गाधी द्वारा जो हम लोगो ने मीटिंग की थी वह बहुत दिनो की बात है और मुझे अच्छी तरह से स्मरण नही है। लेकिन यह बात मुझे जरूर याद है कि महात्माजी ने उस मीटिंग मे वेश्यावृत्ति बन्द करने के लिए कहा था और लडके तथा लडकियो की शादी-ब्याह करने के लिए कहा था, जिसमें कि मैं सर्वप्रथम ही इसम सहमत हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन म महात्माजी मुझसे कहते थे कि आप अग्रेज गवनमेन्ट के विरुद्ध स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय गाना भारत के प्रत्येक रियासतों तथा नगरो मे जहाँ आपका सगीत प्रोग्राम हो वहाँ अवश्य गाया कीजिए। मैंने वही किया। निम्नलिखित पद मैं उस समय गाया करती थी। कोतवाल पुलिस, इन्सपेक्टर, इत्यादि की कडी निगाह रहत हुए भी मैंने किसी का एक न मानी। वह पद इस प्रकार है —

चुन-चुन के फूल ले लो अरमान रह न जाये,
ये हिन्द का बगीचा गुलजार रह न जाये।
ये वो चमन नहीं है लेने से हो उजाड,
उल्फत का जिसमे कुछ भी एहसान रह न जाये।
कर दो जबान बन्दी जेलो मे चाहे भर दो,
माता पै कोई होता कुर्बान रह न जाये।
छलो फरेब से तुम भारत का माल लूटो,
इसके लिये या कुछ भी सामान रह न जाये ॥१॥
भारत न रह सकेगा हरगिज गुलामखाना,
आजाद होगा होगा आया है वो जमाना।
खू खौलने लगा है अब हिन्दुस्तानियो का,
कर देंगे जालिमों के बन्द बस जुम ढाना।

कौमी तिरंगे झण्डे पर जा निसार उनकी,
हिन्दू, मसीह, मुस्लिम गाते हैं ये तराना।
परवाह अब किसे है इस जेल वो दमन की,
एक खेल हो रहा है फांसी पे झूल जाना।
भारत वतन हमारा भारत के हम हैं बच्चे,
माता के वास्ते है मंजूर सर कटाना ।।२।।

"ऐसे ही कई-एक पद थे, लेकिन वो इस समय स्मरण नहीं हैं।"

इस पत्र से तथा हुस्नाबाई के भाषण से वेश्याओं द्वारा राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने की अपील का आशय एकदम स्पष्ट हो जाता है। गांधीजी ने अपनी नीति-कुशलता से वेश्याओं को दुत्कारने या नीचा दिखाने के बजाय उन्हें उनके पेशे के अनुरूप ही आन्दोलन का प्रचार कार्य सौंप दिया। सहस्रों वर्षों की महिमा लिए हुए एक वर्ग को सहसा उखाड़कर नहीं फेंका जा सकता। यह बात मेरे मन में स्पष्ट हो उभरती है और इसीलिए सुधारवादियों की नीयत पर श्रद्धा रखते हुए भी मैं उनकी कार्य-प्रणाली का विश्वास नहीं रख पाता।

उदयशंकरजी शास्त्री की कृपा से मुझे बाबू शेरबहादुरसिंह वर्मा प्रसिद्ध नाम बाबू बच्चूसिंह 'भक्त' वैष्णव, मझाली निवासी द्वारा रचित खड्ग-विलास प्रेस बाँकीपुर द्वारा सन् १८६४ ई० में प्रकाशित 'वेश्या-स्तोत्र' का तीसरा संस्करण भी देखने को मिल गया। उक्त स्तोत्र के सम्बन्ध में पहले भी सुन चुका था। हास्य और व्यंग्य की अनुपम छटा इसमें छहरी है। स्वयं भारतेन्दु ने इस पुस्तिका की भूमिका लिखी हैं। जिस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में इष्टदेव को प्रणाम करने तथा मंगलाचरण लिखने का चलन था उसी प्रकार इस पुस्तक का आरम्भ भी हुआ है। बानगी देखिए

श्लोक

वस्त्राभरणसम्पन्ना, भावे न परिपूरितम्।
मूत्ररोग-फलदेहि वेश्यायाम नमोस्तुते ।।

छप्पै

जं जं जं विधुवदनि मैन मन मोद बढ़ावनि।
सिन्धु-सुता विख्यात सिन्धु-तनया मन भावनि ।।
नृत्य-गान में निपुन भाव बहु बिधि दरसावनि।
कोक कलानि प्रबीन रसिक उर रस उपजावनि ।।

ज चपल नैन पिक बैन ग्ररु, दिव्य बदनि चम्पक बरनि ।
धम-कर्म, सुख - लाज भय, तन मन-धन सबस हरनि ॥

इसके उपरान्त गद्यमय स्तोत्र आरम्भ होता है जो आज भी पढने मे मज़ा देता है । बडे चुभते शहद-भरी छुरी से व्यगो की छटा देखने को मिलती है । स्तोत्र के बाद अष्टोतरी माला लिखी गई है । इसमें भारतेन्दुकालीन प्राय सभी प्रसिद्ध वेश्याओ के नाम आ जाते हैं । खोजियो के लिए चूकि नामा का महत्त्व होता है, इसलिए मिल जाने पर उसे सँजोना उचित और आवश्यक भी है । बाबू बच्चूसिंह की सुप्रसिद्ध वेश्या-अष्टोत्तरी इस प्रकार है

दोहा

विनय सहित करि पाठ पुनि, करौं अनेक प्रनाम ।
तदनतर अब जपत हौं, अष्टोत्तर शत नाम ॥

चौपाई

सौक़ो, मैना, उमदा, मुन्ना,
उत्तम, जगमग, तारा, गुन्ना ।
चन्द्रकला, गुलबदन, जानकी
कंचन, बिब्बा और मानकी ॥१ ।
चवल, चन्दर, चम्पा, सुन्दर
हीरा, मानिक, पन्ना, मुन्दर ।
बिज्जली, बिग्गा, अरु प्यारी
छम्मी, जानी, जान दुलारी ॥२॥
जुहरा और मुश्तरी, कुन्दन
सदाबहार, बुलाकन, गुलशन ।
पचम और अमीला, गन्नो
नाजो और अलादेई बन्नो ॥३॥
मासूमन, मिरचाई, कल्लो
स्यामा, नोखी, भोलो, झल्लो ।
हुसेन बांदी, जीनत, रज्जो
गुल्ला, सोना, रूपा, फज्जो ॥४॥
सरस्वती, जमुना, मनतूरन
गगा, सरजू और ग़फूरन ।

रजनी बख्बन ग्रोर गनेसी
फुस्सो, नहीं ग्रोर महेसी ।।५।।
मूगा, मोतीजान, इमामन
महबूबन, सुखबदन, गुलामन।
लखीजान, नियामत, कमला
मादन, माधव, शब्बो विमला ।।६।।
हैदर, मिश्रीजान, नवाबन
गिल्ली, गुचादहन, गुलाबन।
विलायती, हुस्ना ग्रौ हूरन
नज्जो, रगबहार, जहूरन ।।७।।
राजकली, शिवकली, वजीरन
बेगम, दूनी ग्रोर ग्रमीरन।
बूटा, बन्दीजान, बशीरन
सददो, मददो ग्रोर नसीरन ।।८।।

दोहा

विद्याधरी, महम्मदी, उम्मेदा महताब।
कृपा करो ग्रब भक्त पें, मेरी प्रिये शिताब ।।

इति अष्टोत्तरी-माला

फल दोहा

जप माला छापा तिलक, दरसावत सब कोय।
या माला सो रहित जे, धन्य पुरुष हैं सोय ।।
प्रेम सहित नत प्रातइहि, पढे जो मन-चित लाइ।
इनके छल बल सो सदा, भक्त रहे बिलगाय ।।

कुछ प्रसिद्ध वेश्याएँ

'वारवधू विवेचन' मे कुछ प्रसिद्ध वेश्याओ के किस्से दिये गए हैं। लगभग सवा-डेढ सौ वर्ष पूर्व प्रयाग की गायिका रहिमनबाई और वहीं के एक अति प्रतिष्ठित कपूर खत्री साहूकार मोनीशाह की अद्भुत प्रेम-कहानी वर्णित है। मोनीशाहजी बडे सौभाग्यशाली थे। धन, मान, रूप और गुण इन चारो ही पदार्थों का विपुल वैभव उनके पास था। इसके अतिरिक्त कहा जाता है कि उन्हें दैवी कृपा से गान विद्या स्वय सिद्ध थी। वे अपने समय के गायनाचार्यों मे माने जाते थे। रहिमन

बाई उर्फ रहीम वाली भी गाने में सरनाम थी दोनों का मन एक-दूसरे में मिल गया और फिर तो यह हालत हुई कि एक के बिना दूसरे को कल नहीं पड़ती थी। होते-होते दोनों एक प्रकार से पति-पत्नी की भाँति ही रहने लगे। एक बार दोनों ने आपस में यह तय किया कि दोनों में से जिसका अन्तकाल पहले आ जाए, उसके सिरहाने बैठकर सब शोक और लोक-लाज छोड़कर दूसरा साथी संगीत-नाद सुनाए।

यह बात हुए भी पचास साल बीत गए। दोनों का भरपूर बुढ़ापा था कि मोतीशाह मरने को पड़े। बहुत इलाज हुआ पर वैद्य-हकीमों ने हार मान ली। बाबू शाह धरती पर उतार लिये गए। घर में कोहराम मच गया तभी रहिमन बाई उठी और तानपूरा लाकर परलोक की तैयारी में लगे अपने बेहोश प्रेमी के सिरहाने बैठ गई। लोगों से कहा शान्त रहें और फिर अलाप आरम्भ किया। ज्योंही स्वर पंचम पर पहुँचा कि बाबूसाहब की उँगलियों में थिरकन होने लगी, ऐसा लगा मानो तानपूरा छेड़ रहे हों। रहिमन का स्वर ज्यों-ज्यों रसमग्न होता गया, त्यों-त्यों बाबूसाहब के मुखमण्डल पर आनन्द की कान्ति बढ़ने लगी। उनमें फिर से प्राण लौट आये। अब चिकित्सकों ने सँभाल लिया। इसके बाद बाबू साहब छः बरस और जिये। रहिमन के अगाध शास्त्रीय ज्ञान एवं अलौकिक स्वर के सामने बड़े-बड़े कलावन्त नतमस्तक हो जाते थे।

चन्द्रभागा

उक्त पुस्तक में चन्द्रभागा नामक एक राजपूत वेश्या का जिक्र है। बाप बढ़ई थे। चन्द्रभागा बड़ी सुंदर थी। चौदह वर्ष की आयु में संयोगवश एक बड़ी रियासत के महाराज के सामने पड़ गई और उनके मन चढ़ गई। वे उसे मध्य-भारत में स्थित अपनी रियासत में ले गए। उसके दो अपूर्व गुणसम्पन्न पुत्र हुए। वहां रहकर चन्द्रभागा ने बड़े बड़े उस्तादों से गाना सीखा और अपने जमाने में बड़ा नाम पाया। होरी और धमार गाने में तो वह अद्वितीय थी। रागों के फन्दे और पेचों की बारीकियाँ भी उसे खूब आती थीं। किसी बात से महाराज से अनबन हो गई, भागकर लखनऊ चली आई। फिर महाराज ने बहुतेरा चाहा मगर वह लौटकर न गई।

इसी प्रसंग में लखनऊ में सुना गया एक किस्सा भी अंकित कर देना चाहता हूँ। एक बार मध्यभारत की एक बड़ी रियासत के महाराज लखनऊ के नखास मुहल्ले में रहनेवाली एक वेश्या के घर छिपकर आये। वहां उनका कुछ लोगों से लड़ाई-झगड़ा हो गया। इन्होंने गोली चला दी। एक आदमी मर गया।

भगदड पड गई। महाराज को अपनी स्थिति का होश आया। वे भागे और उस जमाने के एक बहुत बडे रईस की कोठी म शरण ली। तवायफ़ ने यह बतला दिया था कि यह हत्या महाराज के द्वारा हुई है। अग्रेज सरकार महाराज को गिरफ्तार करने पर कटिबद्ध हो गई, परन्तु महाराज को शरण देने वाले लखनऊ के वे रईस भी कुछ कम प्रभावशाली न थे। किसी को कानाकान खबर न हुई और महाराज रातोरात अपनी रियासत म पहुँचा दिये गए। महाराज ने रईस महोदय का बारह गाँवो की जागीर ग्वालियर में दी जो स्वराज्य के पहले तक उन्हीं के वशजो के पास रही।

के० एल० गाबा ने अपनी पुस्तक 'फेमस ट्रायल्स' मे भी ऐसी घटनाओ के सम्बन्ध म लिखा है।



---

*इस पुस्तक के दूसरे सस्करण मे मैंने 'वार वधू विवेचन' पुस्तक के गुमनाम लेखक का नाम एक जानकारी के आधार पर प्रकाशित किया था किंतु बाद मे स्व० कृष्णाचाय ने 'धर्मयुग' मे मेरी सूचना को गलत बतलाया और लिखा कि पुस्तक के लेखक श्री सुधाधर देव गोस्वामी थे, स्व० मोहन राकेश के पिता स्व० कमचन्द गुजलानी नहीं। बाद मे मुझे गोस्वामी जी से एक बार मथरा मे भेंट करने का अवसर भी मिला था। गोस्वामी जी ने बतलाया कि धमगुरु होने के कारण उन्होंने उक्त पुस्तक मे अपना नाम प्रकाशित नहीं किया था। उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि स्व० श्री गुजलानी उनके एक मित्र अवश्य थे किंतु 'वारवधू विवेचन' के लेखक नहीं। गोस्वामी जी के पास उस समय भी उपर्युक्त पुस्तक की कुछ प्रतियां शेष बची थीं।

ग्रन्थ-सूची

1 George Ryle Scott A History of Prostitution from Antiquity to the Present Day

2 M S Guttmacher Sex Offences

3 B Karpman The Sexual Offender and his Offences

4 Dr (Miss) Gauri R Banerji Sex Delinquent Women and their Rehabilitation

5 League of Nation's Commission of Enquiry into Traffic in Women & Children in the East

6 Ben L Reitman The Second Oldest Profession

7 M Woolston Prostitution in the United States

8 American Sociological Review (October, 1937)

9 T E James Prostitution and Law

10 G M Wall Prostitution in the Modern World

11 Altekar The Position of Women in Ancient India

12 S K Mukerjee Prostitution in India

13 Vice in Chicago

14 Herbert Stringer Moral Evil in London

15 J A O'brien Can We Crush Commercialised Wife

16 E C Trelawney, Ansell Trader in Women

17 S C Roy War and Immorality

18 Dyson Carter Sin and Science

19 E Thurston Castes and Tribes of Southern India

20 H C Chakladar Social Life in Ancient India —A Study in Vatsyayan's Kamsutra

२१ पण्डित माधवाचार्य कृत हिन्दी टीका वात्स्यायन कृत 'कामसूत्रम्' (२ भाग)

२२ तनसुखराम मन सुखराम त्रिपाठी रचित संस्कृत रसदीपिका टीका दामोदर गुप्त कृत 'कुट्टनीमतम्'